आधुनिक खड़ीबोली काव्यभाषा के विकास में प्रसाद का योगदान

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फिल्०
उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध प्रबन्ध

(2003—2004)

निर्देशक

प्रो0 सत्य प्रकाश मिश्र
अध्यक्ष हिन्दी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

शोध प्रबन्ध प्रस्तुतकर्त्ता

रचना आनन्द गौड़
शोध छात्रा हिन्दी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद
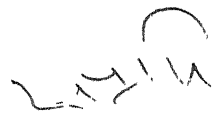
हिन्दी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

प्रमाणित किया जाता है कि श्रीमती रचना आनन्द गौड़ ने इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी0 फिल0 उपाधि के लिये, 'आधुनिक खड़ीबोली काव्यभाषा के विकास में प्रसाद का योगदान' विषय पर अपना शोध कार्य मेरे निर्देशन में पूरा किया है। इनका शोध कार्य सर्वथा मौलिक है। इसे परीक्षार्थ प्रस्तुत करने की अनुमति दी जाती है।

निर्देशक

प्रो0 सत्य प्रकाश मिश्र

अध्यक्ष : हिन्दी विभाग

हिन्दी विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

निवेदन

खड़ीबोली के बीज प्राचीनकाल से ही सिद्धों और नाथों की रचनाओं में मिलने लगते हैं किन्तु आधुनिक काल से पूर्व यह परम्परा मिश्रित रूप में ही मिलती है। इस प्रकार खड़ीबोली का इतिहास यद्यपि पुराना है, लेकिन उसके काव्यभाषा बनने और काव्यभाषा के रूप में पूर्ण स्वायत्तता प्राप्त करने का इतिहास अपेक्षाकृत आधुनिक है। आधुनिक काल भाषा और संवेदना दोनों ही दृष्टियों से परिवर्तन का काल है।बढ़ती हुई राष्ट्रीयता की भावना जहाँ एक ओर हिन्दी कविता को मध्यकालीन भक्ति और श्रृंगार से अलगाती है, वहीं उससे जुड़ी खड़ी बोली को काव्यभाषा के रूप में स्वीकृति मिलती है। आधुनिक काल से पूर्व गद्य की परम्परा नहीं के बराबर थी, साथ ही हमारा अधिकांश साहित्य ब्रजभाषा में मिलता है। इस प्रकार खड़ीबोली की प्रतिष्ठा और गद्य की विभिन्न विधाओं का विकास— ये दो महत्वपूर्ण बदलाव आधुनिक काल में दिखाई देते हैं। यह रोचक तथ्य है कि गद्यभाषा के रूप में खड़ीबोली की प्रतिष्ठा अत्यन्त सहज रूप में हो गई किंतु काव्यजगत में उसके प्रयोग का एक लम्बा इतिहास है। भारतेन्दु युग में जबकि गद्यभाषा के रूप में खड़ीबोली पूर्णतः प्रतिष्ठित हो गई थी, काव्य जगत में ब्रजभाषा का ही एकाधिकार रहा। भाषा का यह द्वैत भारतेन्दु के बाद खड़ीबोली काव्यान्दोलन को जन्म देता है और द्विवेदी युग में महावीर प्रसाद द्विवेदी के प्रयत्नों से काव्यभाषा के रूप में उसे स्वीकृति मिलती है। चूंकि आधुनिक काव्य का आरम्भ ब्रजभाषा से होता है, अतः आरम्भिक खड़ीबोली काव्य पर ब्रजभाषा का प्रभाव भी स्वाभाविक था। पं० श्रीधर पाठक से लेकर अयोध्यासिंह उपाध्याय

हरिऔध, मैथिलीशरण गुप्त, नाथूराम शंकर शर्मा, रायदेवी प्रसाद 'पूर्ण' और लोचन प्रसाद पाण्डेय आदि खड़ीबोली के छोटे-बड़े कवि रचनाकारों के साथ स्वयं महावीर प्रसाद द्विवेदी की आरम्भिक खड़ीबोली रचनाएँ ब्रजभाषा के प्रभाव से एकदम अछूती नहीं है। खड़ीबोली को ब्रजभाषा के संस्कार से मुक्त कर व्यवस्थित करने के प्रयास में द्विवेदी युग में जो खड़ीबोली आती है वह इतिवृत्तात्मकता का संस्कार लिये आती है और इस इतिवृत्तात्मकता से मुक्ति छायावाद की काव्यभाषा को जन्म देती है। काव्यभाषा के रूप में खड़ीबोली की इस विकास प्रक्रिया का विश्लेषण प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का एक पक्ष है।

आधुनिक खड़ीबोली काव्यभाषा का यह विकास क्रम प्रसाद के काव्य में सर्वाधिक स्पष्ट होता है। प्रसाद पहले ब्रजभाषा में लिखते थे, अतः उनकी आरम्भिक खड़ीबोली रचनाओं पर ब्रजभाषा का प्रभाव है। 'इन्दु' में समय समय पर प्रकाशित प्रसाद की ब्रजभाषा कविताएँ 'चित्राधार' में संकलित हुईं। ब्रजभाषा में लिखा गया उनका कथाकाव्य 'प्रेमपथिक' आठ वर्ष बाद खड़ीबोली में लिखा गया। 'काननकुसुम' की खड़ीबोली रचनाओं पर भी एक ओर ब्रजभाषा का प्रभाव है तो दूसरी ओर अधिकांश कविताओं की शैली इतिवृत्तात्मक है। इसी प्रकार 'झरना' की अनेक कविताएँ, जबकि छायावाद की प्रवृत्तियाँ सबसे पहले 'झरना' में दिखाई दीं, द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मकता से मुक्त नहीं है। 'झरना' के बाद 'आँसू', 'लहर' और 'कामायनी' कवि की तीन सर्वाधिक महत्वपूर्ण कृतियाँ छायावाद का प्रतिनिधित्व करती हैं। प्रसाद की रचनाओं के इस क्रमिक विकास का अध्ययन खड़ीबोली काव्यभाषा के संदर्भ में और भी प्रासंगिक हो जाता है। काव्यभाषा के रूप में खड़ीबोली की विकास प्रक्रिया के विश्लेषण के बाद इस विकास क्रम में प्रसाद-काव्य का अध्ययन

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का दूसरा पक्ष है जो निःसंदेह पूर्व पक्ष से अभिन्न रूप में सम्पृक्त है अथवा यों कहा जा सकता है जिसका विकास पूर्व पक्ष की पृष्ठभूमि में होता है।

विषय के व्यवस्थित अध्ययन के लिये उसे पाँच अध्यायों में बाँटा गया है। खड़ीबोली से पूर्व ब्रजभाषा की समृद्ध काव्य परम्परा थी। पूर्व मध्यकाल और उत्तर मध्यकाल में काव्यभाषा के पद पर एकाधिकार रखने वाली ब्रजभाषा को पदच्युत कर काव्यभाषा के रूप में खड़ीबोली की प्रतिष्ठा अनायास और अप्रत्याशित नहीं थी। इसके विकास के पीछे अनेक कारण थे। आधुनिक युग में बदलती हुई परिस्थितियाँ किस प्रकार खड़ीबोली के विकास में सहायक और ब्रजभाषा के ह्रास का कारण बनतीं हैं; बदली हुई उन परिस्थितियों का विवेचन प्रथम अध्याय के अन्तर्गत पृष्ठभूमि के रूप में किया गया है।

खड़ीबोली के प्रयोग की परम्परा यद्यपि प्राचीन है किंतु प्रस्तुत अध्ययन आधुनिक खड़ीबोली काव्यभाषा से सम्बन्धित है। भारतेन्दु युग में गद्यभाषा के रूप में खड़ीबोली की प्रतिष्ठा किंतु काव्य जगत में ब्रजभाषा का प्रयोग, फिर महावीर प्रसाद द्विवेदी का आगमन और खड़ीबोली को ब्रजभाषा तथा अन्य प्रान्तीय शब्दों के प्रभाव से मुक्त कर व्याकरणबद्ध करना, अन्ततः व्यवस्था के इस क्रम में द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मकता से मुक्ति का संकेत और छायावाद का आरम्भ— काव्यभाषा के रूप में खड़ीबोली के इस पूरे विकास को दूसरे अध्याय में समेटा गया है। चूंकि अध्ययन खड़ीबोली काव्यभाषा के विकास क्रम में प्रसाद पर केन्द्रित

है, अतः प्रसाद पूर्व खड़ीबोली काव्यभाषा का विवेचन समग्र रूप में द्वितीय अध्याय के अन्तर्गत किया गया है।

प्रसाद के पहले खड़ीबोली काव्य संग्रह 'काननकुसुम' में संकलित 'प्रथम प्रभात' कई अर्थों में द्विवेदीयुग की इतिवृत्तात्मक शैली से अलग नई काव्य क्षमता का संकेत देती है जिसका विकास आगे चलकर छायावाद में होता है। एक ओर मैथिलीशरण गुप्त और मुकुटधर पाण्डेय में छायावाद का पूर्वाभास मिलने लगता है, तो दूसरी ओर निराला की 'जुही की कली' और पंत के 'पल्लव' में यह नई काव्य क्षमता खड़ीबोली को नया स्वर देती है। द्विवेदीयुग की इतिवृत्तात्मकता से छायावाद की चित्रात्मकता और बिम्ब क्षमता का काव्यभाषिक विश्लेषण तृतीय अध्याय के अन्तर्गत किया गया है।

प्रसाद पहले कवि हैं जिनकी रचनाओं में छायावाद की प्रवृत्तियाँ दिखाई दीं। 'चित्राधार' से लेकर 'कामायनी' तक प्रसाद की काव्यभाषा का विकास आधुनिक खड़ीबोली काव्यभाषा के विकास क्रम को दर्शाता है। ब्रजभाषा से खड़ीबोली में लिखने का प्रयास और प्रयास की इस प्रक्रिया में उनकी आरम्भिक खड़ीबोली रचनाओं पर ब्रजभाषा का प्रभाव साथ ही द्विवेदीयुग की इतिवृत्तात्मक शैली का संस्कार स्पष्टतः देखा जा सकता है। आगे चलकर 'आँसू', 'लहर' और 'कामायनी' में छायावाद की काव्यभाषा का विकास दिखाई देता है। अध्याय-4 के अनुभाग 'क' के अन्तर्गत प्रसाद के ब्रजभाषा काव्य का अवलोकन करते हुए अनुभाग 'ख' के अन्तर्गत उनके खड़ीबोली काव्य के महत्वपूर्ण सोपानों के आधार पर प्रसाद की काव्यभाषा के विकास क्रम को दर्शाया गया है। प्रसाद की

काव्यभाषा का यह विवेचन काव्यभाषा के सैद्धान्तिक पक्ष की अपेक्षा व्यावहारिक धरातल पर अधिक है।

छायावाद के रूप में खड़ीबोली को अपना पूर्ण वैभव प्राप्त होता है। महाकाव्य के नूतन कलेवर में 'कामायनी' न केवल अपने समय की बल्कि हिन्दी काव्य जगत की महानतम् उपलब्धि के रूप में सामने आती है। 'आँसू' की सूक्ष्म प्रबन्ध कल्पना और 'लहर' की गीतसृष्टि खड़ीबोली काव्य में शिल्प के नये आयाम जोड़ती है। आधुनिक खड़ीबोली काव्यभाषा के विकास में प्रसाद के इस योगदान का मूल्यांकन अन्तिम अध्याय के अन्तर्गत समाहार रूप में किया गया है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के विषय चयन से लेकर, इसके अध्ययन की रूपरेखा और इसकी अध्ययन दृष्टि में स्वर्गीय प्रो0 रामस्वरूप चतुर्वेदी की भूमिका सर्वोपरि है। प्रो0 चतुर्वेदी की विशिष्ट अध्यापन शैली से मै छात्र जीवन से ही प्रभावित थी। विशेष अध्ययन के लिये प्रसाद का चयन उनके गम्भीर गुरु व्यक्तित्व से मेरी निकटता का कारण बना। फिर शोध छात्रा के रूप में उनके निर्देशन में मेरा नामाङ्कन और उनका यह कथन 'भाई, इस विषय पर शोध कर पाओगी' (स्पष्ट ही जहाँ जोर विषय पर अधिक था) मेरे लिये बड़ी चुनौती बनने के बावजूद यह शोध प्रबन्ध धीमी गति से लिखा गया। इस लम्बी अवधि में अपने कड़े अनुशासन में जिस धैर्य और स्नेह से उन्होंने मेरे शोध कार्य की देखरेख की, उसकी पुण्य और पवित्र स्मृति जीवन पर्यन्त मेरे साथ रहेगी।

प्रो0 चतुर्वेदी के निधन के बाद मेरे गुरु और इस शोध प्रबन्ध के निर्देशक श्रद्धेय प्रो0 सत्य प्रकाश का अवलम्ब और सम्बल यदि मुझे न मिलता, तो यह अधूरा शोध कार्य शायद पूरा न होता। प्रो0 चतुर्वेदी जैसी विद्वता, गुरुता और गम्भीरता मैने प्रो0 सत्य प्रकाश मिश्र में सदैव देखी। चतुर्वेदी जी के आकस्मिक निधन पर मुझे अपने निर्देशन में लेने की सहर्ष स्वीकृति प्रदान कर उन्होंने मेरे थकित उत्साह को जो नई स्फूर्ति और चेतना प्रदान की, साथ ही शोध कार्य में आने वाली अनेक समस्याओं का समाधान कर मुझे मेरे उस गन्तव्य तक पहुँचाया जिसकी मुझे वर्षो से प्रतीक्षा थी, मै उनके प्रति श्रद्धावनत हूँ।

गुरु को तो कबीर ने गोविन्द गोविन्द से भी ऊँचा स्थान दिया है। अतः गुरुजनों के बाद अपने पिता प्रो0 राजेन्द्र कुमार वर्मा के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन के निर्वाह से मै यों उऋण नहीं हो सकती कि उन्होंने तो न केवल शोध कार्य के दौरान बल्कि जीवन में अनेक बार विचलन की स्थिति से उबार कर अध्ययन अध्यापन की मेरी रुचि को जिस रूप मे विकसित किया, पिता के उस दायित्व निर्वाह में, अनुशासन और स्नेह में मैंने सदैव अनुशासन को ही ऊपर पाया, जिसके परिणाम से मिली प्रसन्नता के हम दोनों बराबर के प्रतिभागी हैं।

शोध कार्य की व्यस्तता में कई बार जाने अनजाने मातृत्व के दायित्व का समुचित निर्वाह नहीं कर सकी, अतः इसके समाप्त होने पर वल्लरी और वैभव का, तथा बच्चों की पढ़ाई लिखाई और अन्य तमाम जिम्मेदारियों से मुझे चिन्तामुक्त रखने के कारण अपने श्वसुर स्वामी परमानंद जी का स्मरण भी मेरे लिये सुखद है।

अंत में, हिन्दी साहित्य सम्मेलन के श्री द्वारकानाथ शुक्ल और श्री जगतनाथ पाण्डेय के प्रति मैं अपना विशेष आभार प्रकट करती हूँ, जिन्होंने विषय से सम्बन्धित अनेक महत्वपूर्ण पुस्तकें और पत्रिकाएँ उपलब्ध कराने में हमेशा मेरा साथ दिया। मेरे इस कार्य में मुझे हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद तथा हिन्दी विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद से भी विशेष सहयोग मिला, अतः इनके पुस्तकालयाध्यक्षों और अन्य कार्य कर्त्ताओं के प्रति, साथ ही टंकण सम्बन्धी संशोधनों में धैर्यपूर्वक मेरा साथ देने वाले मो0 खालिद के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए मेरा यह शोध प्रबन्ध प्रस्तुत है। शोध प्रबन्ध जैसा भी है, जिस रूप में प्रस्तुत है, मेरे लिये हर्ष और संतोष का विषय होने के साथ, अपनी कमियों और सीमाओं के साथ आगामी अध्ययन और जिज्ञासा का विषय भी। अध्ययन की यह जिज्ञासा शोध और लेखन के रूप में प्रतिफलित होगी, इसी कामना और विश्वास के साथ अपना यह निवेदन समाप्त करती हूँ।

रचना आनन्द गौड़

रचना आनन्द गौड़

अनुक्रम

अध्याय–1

अध्याय–2

अध्याय–1

आधुनिक युग में खड़ीबोली की संवर्धक शक्तियाँ और काव्यभाषा के रूप में उसकी स्वीकृति

आधुनिक युग में खड़ीबोली की संवर्धक शक्तियाँ और काव्यभाषा के रूप में उसकी स्वीकृति

आधुनिक काल: भाषा और संवदेना का बदलाव:

खड़ीबोली के बीज यद्यपि सिद्धों और नाथों की रचनाओं में आदिकाल से ही मिलने लगते है किन्तु आधुनिक काल से पूर्व तक खड़ीबोली की यह परम्परा मिश्रित रूप में ही मिलती है। आधुनिक काल भाषा और संवेदना दोनों ही दृष्टियों से परिवर्तन का काल है। बढ़ती हुई राष्ट्रीयता की भावना जहाँ एक ओर हिन्दी कविता को मध्यकालीन भक्ति और श्रृंगार से अलगाती है, वहीं उसमे जुडी खड़ीबोली को काव्य भाषा के रूप में स्वीकृति मिलती है।

गद्यभाषा के रूप में खड़ीबोली का विकास :

आधुनिक काल से पूर्व गद्य की परम्परा नहीं के बराबर थी, साथ ही हमारा अधिकांश साहित्य ब्रजभाषा में मिलता है। इस प्रकार खड़ीबोली की प्रतिष्ठा और गद्य की विभिन्न विधाओं का विकास—ये दो महत्वपूर्ण बदलाव आधुनिक काल में दिखाई देते हैं और ये दोनों एक दूसरे के पूरक भी हैं। हम देखते हैं कि आधुनिक काल में खड़ीबोली का आगमन गद्यभाषा के रूप में होता है। यह रोचक तथ्य है जबकि अधिकांश भाषाओं मे विकास का क्रम काव्य से गद्य की ओर गतिमान होता है, खड़ीबोली में विकास का यह क्रम उलट जाता है। आधुनिक हिन्दी काव्यभाषा के विकास क्रम में मैथिलीशरण गुप्त के योगदान की चर्चा के प्रसंग में डा0 नामवर सिंह ने खड़ीबोली हिन्दी के इस वैशिष्ट्य और अपवाद को ठीक ही पहचाना है, ''पहले काव्य और फिर गद्य। विकास का यह क्रम अधिकांश भाषाओं में मिलता है। नहीं मिलता तो खड़ीबोली हिन्दी में। खड़ीबोली हिन्दी के साहित्य

का आरम्भ ही गद्य से हुआ। इस मामले में वह अपनी संगोतिया उर्दू से भी भिन्न है।''[1]

पुनर्जागरण, वैचारिक जागृति और गद्य का विकासः अन्तर्सम्बन्ध -

इस विपरीत विकास क्रम में हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल जिसका आरम्भ भारतेन्दु के रचनाकाल के साथ माना जाता है, हिन्दी गद्य के विकास का काल भी है। भारतेन्दु से पूर्व रीतिकाल के सामन्तीय दरबारी परिवेश में चमत्कार, अतिशयोक्ति और श्रृंगारपरक साहित्य की ही प्रधानता रही, जनजीवन और जनचेतना से विमुख रहने के कारण गद्य का विकास प्रायः अवरुद्ध रहा। किन्तु उन्नीसवीं शताब्दी में पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति के सम्पर्क से जो पुनर्जागरण आया, उसका सीधा प्रभाव साहित्य पर पड़ा। राजा राममोहन राय, केशवचन्द्र सेन, दयानंद सरस्वती और स्वामी विवेकानन्द इस पुनर्जागरण के सूत्रधार बने और इस पुनर्जागरण से उत्पन्न वैचारिक जागृति का साहित्य में प्रतिफलन रीतिकालीन दरबारी श्रृंगारिकता से अलग आधुनिक सामाजिक चेतना के साथ हुआ। जनजीवन की इस अभिव्यक्ति के लिये गद्य अनिवार्य आवश्यकता बन गई और खड़ीबोली ने जो अपने ठठ रूप में देश के कई भागों में बोली जाती थी और उन्नीसवीं शती तक उत्तर भारत की शिष्ट भाषा हो चुकी थी, गद्य के क्षेत्र में सहज ढंग से प्रवेश किया।

खड़ी बोली के विकास मे फोर्ट विलियम कॉलेज की भूमिकाः

गद्य के क्षेत्र में खड़ीबोली की प्रतिष्ठा ने काव्यजगत में उसके प्रयोग की पीठिका तैयार की, यद्यपि उसकी स्वीकृति लम्बे अन्तराल के बाद, आधुनिकता का

---

[1] 'मैथिलीशरण गुप्त और आधुनिक हिन्दी काव्य भाषा का विकास'-आलोचना, अक्टूबर दिसम्बर ४६, पृ0-137, नामवर सिह।

एक चरण बीतने के साथ हुई। आधुनिक काल में खड़ी बोली के आरम्भिक प्रयोग के संबंध में डा0 रामस्वरूप चतुर्वेदी लिखते हैं, ''जिस समय रीतिकाल के अंतिम प्रसिद्व कवि पद्माकर ब्रजभाषा का परिष्कार ठेठ हिन्दी क्षेत्र में रहकर अपने कवित्त-सवैयों में कर रहे है, उसी समय सुदूर राजधानी कलकत्ते में हिन्दी गद्य के साथ नये प्रयोग चल रहे हैं। धर्मिक ग्रंथों के अनुवाद या तत्सम्बन्धी वृत्तान्तों के रूप में कुछ पुराना ब्रजभाषा या खडी बोली हिन्दी गद्य का रूप अभी तक मिलता था, पर व्यावहारिक उद्देश्यों के लिये नियोजित गद्य का सजग रूप में प्रयोग यहाँ से आरम्भ होता है।''[2] स्पष्ट ही ये नये प्रयोग 1800 ई0 में संस्थापित फोर्ट विलियम कॉलेज के प्रिसिंपल डा0 जॉन वौर्थविक गिलक्राइस्ट द्वारा हिन्दी/हिन्दुस्तानी गद्य में लिखवाई गई पुस्तकों के रूप में थे। इन पुस्तकों में लल्लू लाल की रचना 'प्रेमसागर' और सदलमिश्र की रचना 'चन्द्रावती' या 'नासिकेतोपाख्यान' विशेष महत्वपूर्ण हैं। संवत् 1860 अर्थात् सन् 1803 ई0 में लिखी गई इन दोनों ही रचनाओं की भूमिका में खड़ीबोली के आरम्भिक प्रयोग का संकेत क्रमशः यों मिलता है,

''श्रीयुत गुनगाहक गुनियन सुखदायक जान गिलकिरिस्त महाशय की आज्ञा से संवत् १८६० में लल्लूजी लाल कवि ब्राह्मण गुजराती सहस्र अवदीच आगरे वाले ने विसका सार ले यामिनी भाषा छोड़ दिल्ली आगरे की खड़ी बोली में कह नाम प्रेमसागर धरा।''[3]

---

[2] 'हिन्दी साहित्य और सवेदना का विकास'-पृ0-96, रामस्वरूप चतुर्वेदी'

[3] 'प्रेमसागर'; पृष्ठ-1, लल्लूजी लाल

'अब सं० १८६० में नासिकेतोपाख्यान को जिसमें चन्द्रावती की कथा कही है देववाणी से कोई-कोई समझ नहीं सकता। इसलिये खड़ीबोली में किया।'[4]

कहना न होगा कि इन दोनों ही रचनाओं में यद्यपि ब्रजभाषा के प्रयोग मिलते हैं किन्तु खड़ीबोली की आरम्भिक रचनाओं के रूप में इनका ऐतिहासिक महत्व निर्विवाद है।

फोर्ट विलियम कॉलेज से पृथक रूप में खड़ी बोली का विकास:

फोर्ट विलियम कॉलेज से पृथक इंशा अल्ला खाँ द्वारा 'रानी केतकी की कहानी' सन् 1800 के आस-पास लिखी गई। कहानी के आरम्भ में ही लेखक अपनी भाषा-नीति को स्पष्ट करता है, ''एक दिन बैठे-बैठे यह बात अपने ध्यान में चढ़ी कि कोई कहानी ~~कहानी~~ ऐसी कहिये कि जिसमें हिन्दवी छुट और किसी बोली का पुट न मिले .... बाहर की बोली और गंवारी कुछ उसके बीच में न हो .... हिन्दवीपन भी न निकले और भाखापन भी न हो।''[5] आचार्य शुक्ल ने इंशा द्वारा प्रयुक्त 'बाहर की बोली', 'गंवारी' और 'भाखापन' का अर्थ क्रमशः अरबी-फारसी-तुरकी, ब्रजभाषा-अवधी और संस्कृत किया है। कहा जा सकता है इंशा ने अपनी भाषा को इन सबसे मुक्त रखकर ठेठ हिन्दी लिखने का प्रयास किया है। यद्यपि इससे पूर्व रामप्रसाद निरंजनी कृत 'योगवासिष्ठ' और दौलतराम कृत' पद्मपुराण' का उल्लेख भी हिन्दी गद्य रचनाओं के रूप में आचार्य शुक्ल ने किया है किन्तु कहना न होगा ये दोनों ही ग्रंथ धार्मिक भावना से प्रेरित थे और इनकी भाषा भी धार्मिक विषयों के अनुकूल थी। 'रानी केतकी की कहानी' की मुहावरेदार भाषा धार्मिक विषयों से पृथक हास्य और मनोरंजक

---

[4] 'नासिकेतोपाख्यान', पृष्ठ-2, सदल मिश्र।

[5] 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', पृ०-285, रामचन्द्र शुक्ल

विषयों के अनुकूल है और जीवन के विभिन्न पक्षों से सम्बन्धित दृश्यचित्रों की अभिव्यक्ति में सफल है, "इस बात पर पानी डाल दो नहीं तो पछताओगी और अपना किया पाओगी। मुझसे कुछ न हो सकेगा। तुम्हारी जो कुछ अच्छी बात होती तो मेरे मुँह से जीते जी न निकलती, पर यह बात मेरे पेट नहीं पच सकती। तुम अभी अल्हड़ हो, तुमने अभी कुछ देखा नहीं। जो ऐसी बात पर सचमुच ढलाव देखूंगी तो तुम्हारे बाप से कहकर वह भभूत जो वह मुआ निगोड़ा भूत, मुंछदर का पूत अवधूत दे गया है, हाथ मुरकवाकर छिनवा लूंगी।"[6] इस प्रकार भारतेन्दु के समय में साहित्यिक गद्य के विकास से पूर्व तक आधुनिक काल में खड़ीबोली का जो रूप मिलता है, वह इन कतिपय फुटकर रचनाओं, इनके अतिरिक्त धर्मप्रचार ग्रंथों, पत्र-पत्रिकाओं और शिक्षा सम्बन्धी पुस्तकों में मिलता है जिनके माध्यम से खड़ीबोली पोषित और संवर्धित होती रही।

प्रचारात्मक काव्य :

(1) ईसाई धर्म प्रचारक-

प्रचारात्मक काव्य के अन्तर्गत खड़ीबोली का प्रचार और प्रसार ईसाई धर्म प्रचारकों द्वारा और आर्यसमाज के माध्यम से हुआ। चूंकि जनसामान्य के बीच अपने मत का प्रचार करना ईसाई धर्मप्रचारकों का प्रधान उद्देश्य था, अतः अपने मत के प्रचार के लिये उन्होंने जनभाषा को अपनाया जो अरबी, फारसी और उर्दू शब्दों से प्रायः मुक्त थी, और जिसमें संस्कृत शब्दों की प्रधानता थी। इनकी भाषा में यथास्थल ब्रजभाषा के शब्दों और क्रियाओं का प्रयोग होते हुए भी यह कहा जा सकता है कि ईसाई धर्म-प्रचारकों द्वारा विशुद्ध हिन्दी का व्यवहार किया गया है। इनके द्वारा प्रयुक्त खड़ीबोली का एक नमूना दृष्टव्य है,

---

[6] 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', पृष्ठ-286, रामचन्द्र शुक्ल

मेरी नौका अब टूटी जाती मुझे ऐसा आता डर।

लहर ऐसी प्रबल उठती डूब के मरता हूं उस पर।

प्रभु यीशु, अब लगाव किनारे पर।[7]

(2) आर्य समाज–

ईसाई धर्म प्रचारकों से अलग आर्य-समाज का प्रभाव पंजाब और पश्चिमोत्तर प्रदेशों में अधिक था, वहाँ उर्दू का प्रचार होने के कारण आरम्भ में आर्य-समाज का प्रचार भी उर्दू के माध्यम से अधिक हुआ किन्तु बाद में आर्यसमाजियों द्वारा खड़ीबोली को ही प्रचार भाषा के रूप में अपनाया गया। इनके द्वारा 'आर्य भाषा' में निकाले गये पत्रों में 'आर्यमित्र' (1878) प्रमुख है। संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान और मातृभाषा के रूप में गुजराती का संस्कार लिये स्वामी दयानन्द सरस्वती स्वयं 'आर्य भाषा' के हिमायती थे और 'सत्यार्थ प्रकाश' (सन् 1875) की रचना भी उन्होंने हिन्दी में की। वेदों के साथ कहीं-कहीं व्यंग्य और कटाक्ष स्वामीजी की गद्य शैली की प्रमुख विशेषता है जिसके आधार पर उन्होंने अपने मतानुसार वेदों का सत्य अर्थ लिखा। यद्यपि इनके गद्य में ब्रजभाषा के प्रयोग और पंडिताऊपन भी मिलता है किन्तु खड़ीबोली के संवर्धन में आर्य-समाज के योगदान को नकारा नहीं जा सकता।

(3) सनातन धर्मः श्रद्धारामफुल्लौरी का योगदान–

खड़ीबोली का प्रचार और प्रसार आर्यसमाजियों द्वारा प्रत्यक्ष रूप में भी हुआ और उसकी प्रतिक्रिया में सनातन धर्मियों द्वारा भी वह पोषित और संवर्धित हुई। मूर्तिपूजा और श्राद्ध आदि कर्मकाण्डों का आर्य समाजियों द्वारा जो विरोध हुआ, सनातन धर्मियों द्वारा उन्हें ही वेदों द्वारा प्रमाणित किया गया। खण्डन-मण्डन की इस

---

[7] 'ए कलेक्शन ऑफ हीम्स ऑफ डेली वरशिप', पृष्ठ-82, जॉन पारसन ओर जॉन क्रिश्चियन

प्रवृत्ति को लेकर खड़ी बोली में बहुत सी पुस्तकें प्रकाशित हुई। स्वामीजी के मत का अनेक स्थलों पर सैद्धान्तिक विरोध करने वाले सनातन धर्मियों में पण्डित श्रद्धाराम फुल्लौरी प्रमुख थे। ईसाई धर्म के बढ़ते प्रभाव को देखकर जिस प्रकार स्वामी दयानन्द सरस्वती ने सर्वत्र भ्रमण और अपने व्याख्यानों द्वारा वैदिक एकेश्वरवाद का प्रचार किया, पण्डित श्रद्धाराम फुल्लौरी ने उसी प्रकार कथाओं और व्याख्यानों द्वारा प्राचीन वर्णाश्रम धर्म का निरूपण किया। इन व्याख्यानों द्वारा देश के विभिन्न भागों में खड़ीबोली का प्रचार और प्रसार हुआ। श्रद्धाराम जी के व्याख्यानों का संग्रह 'उपदेश संग्रह' नाम से प्रकाशित हुआ। खड़ीबोली में उनके भजनों के प्रसिद्ध संग्रह 'सत्यधर्म मुक्तावली' से भाषा का एक नमूना उद्धृत है,

> चढ़ा वैशाख विचार पियारे किस पर आकड़ करता हूँ,
>
> मात पिता सुत होत पियारे जिनकी खातर मरता हूँ।
>
> अपने सुख का सब कोई गाहक किसको समझे घर का तूँ।
>
> सबको त्याग जाग कर श्रद्धा नाम सिमर ले हरि का तूँ।[8]

हिन्दी, उर्दू और पंजाबी में समान गति रखने वाले पण्डित श्रद्धाराम फुल्लौरी की मातृभाषा पंजाबी थी किन्तु उन्होंने अधिकांश खड़ीबोली में लिखा। 'सत्यामृतप्रवाह' सरल किन्तु प्रौढ़ भाषा में लिखा गया उनका सिद्धान्त ग्रंथ है। 'धर्मरक्षा', 'रमल कामधेनु', 'शतोपदेश' और 'भाग्यवती' खड़ीबोली में लिखी गई उनकी प्रमुख पुस्तकें हैं। खड़ीबोली का सुदूर पंजाब में प्रचार करने वालों में ब्रह्मसमाज के नवीनचन्द्र राय की भूमिका भी महत्वपूर्ण रही। वह हिन्दी भाषा के कट्टर समर्थक थे और उन्होंने पंजाब में घूम-घूम कर ब्रह्मसमाज के सिद्धान्तों का प्रचार किया।

---

[8] 'सत्यधर्म मुक्तावली', पृ0-47, श्रद्धाराम

धार्मिक पत्र पत्रिकाएँ :

स्वधर्मरक्षा के भाव से प्रेरित इन उपदेश व्याख्यानों और पुस्तकों के अतिरिक्त खड़ीबोली में अनेक पत्र भी प्रकाशित हुए। जबकि आर्यसमाजियों के पत्र आरम्भ में उर्दू में निकले किंतु सनातन धर्मियों के पत्र आरम्भ से ही खड़ीबोली में प्रकाशित हुए। आर्यसमाज के प्रचारकों द्वारा निकाले गये पत्रों में 'आर्यमित्र' प्रमुख था और सनातन धर्मियों द्वारा प्रकाशित खड़ीबोली के पत्रों में 'पीयूष प्रवाह', 'धर्मदिवाकर', 'निगामागम चन्द्रिका', 'सनातन धर्म पताका' और 'ब्राह्मण सर्वस्व' प्रमुख थे। पंजाब में हिन्दी का प्रचार करने वाले सनातन धर्म समर्थक पत्रों में 'मित्रविलास' प्रमुख था। पंजाब में हिन्दी का यह पहला पत्र था। यद्यपि इससे पूर्व बाबू नवीनचन्द्र द्वारा 'ज्ञानप्रदायिनी' पत्रिका निकाली गई किंतु उसमें उर्दू हिन्दी दोनों होती थी।इसके अतिरिक्त राजा राम मोहन राय द्वारा 'बंगदूत' (1829) नामक संवाद पत्र भी हिन्दी में निकाला गया जो अंग्रेज़ी, फारसी और बंगला में पहले से ही प्रकाशित होता था। यद्यपि ये सभी पत्र धार्मिक भावना से प्रेरित थे किंतु आधुनिक युग में खड़ीबोली के व्यापक प्रचार में इन पत्रों से सहयोग अवश्य मिला।

धार्मिक भावना से पृथक : हिन्दी का पहला पत्रः उदंत मार्तण्ड–

धार्मिक भावना से अलग हिन्दी का पहला पत्र 'उदंतमार्तण्ड' कलकत्ते से प्रकाशित हुआ। 1826 में प्रकाशित हिन्दी के इस प्रथम पत्र के लेख के निम्न अंश से स्पष्ट है कि मुद्रण यंत्रों की स्थापना के साथ कलकत्ते से बंगला और अंग्रेज़ी में अनेक पत्र निकलने लगे थे किंतु हिन्दी में प्रकाशित होने वाला यह प्रथम पत्र था,

"यह उदंतमार्त्तड अब पहिले हिन्दुस्तानियों के हित के हेत जो आज तक किसी ने नहीं चलाया, पर अंगरेजी ओ पारसी ओ बॅगले में जो समाचार का कागज छपता है उसका सुख उन बोलियों के जान्ने ओ पढ़नेवालों को ही होता है। इससे

समाचार हिन्दुस्तानी लोग देखकर आप पढ़ ओ समझ लेयँ ओ पराई अपेक्षा न करें ओ अपने भाषे की उपज न छोड़ें इसलिये .... श्रीमान् गवरनर जेनेरल वहादुर की आयस से ऐसे साहस में चित्त लगाय के एक प्रकार से यह नया ठाठ-ठाटा। जो कोई प्रशस्त लोग इस खबर के कागज के लेने की इच्छा करें तो अमड़ा तला की गली 37 अंक मार्त्तड-छापाघर में अपना नाम ओ ठिकाना भेजने ही से मतवारे के सतवारे यहाँ के रहने वाले घर बैठे ओ बाहर के रहने वाले डाक पर कागज पाया करेंगे।''[9]

कानपुर के पण्डित जुगल किशोर द्वारा निकाले गये इस साप्ताहिक पत्र में खड़ीबोली को 'मध्यदेशीय भाषा' कहा गया है। कहा जा सकता है कि सन् 1826 में 'उदंतमार्तण्ड' के माध्यम से 'मध्यदेशीय भाषा' में पत्रकारिता का जो आरम्भ हुआ, उसने 'बनारस अखबार' (1845) 'सुधाकर' (1850) 'बुद्धिप्रकाश' (1852) और 'प्रजा हितैषी' (1855) आदि पत्रों के द्वारा उसमें गद्य की परम्परा को बनाये रखा, परिणामत: सन् 1854 में हिन्दी के प्रथम दैनिक पत्र 'समाचार सुधावर्षण' का आरम्भ हुआ। इस प्रकार वह खड़ीबोली जो आधुनिक काल से पूर्व राजभाषा फारसी से अलग फलफूल रही थी, आधुनिक काल के आरम्भ तक इन पत्र पत्रिकाओं के माध्यम से देश के अनेक भागों में न केवल प्रचार और प्रसार पाती है वल्कि अपनी वह आधारभूमि भी बनाती है जिस पर आगे चलकर साहित्यिक पत्रकारिता का विकास होता है।

खड़ी बोली : कचहरियों की भाषा, शिक्षा सम्बन्धी पुस्तकें :

इन पत्रपत्रिकाओं से अलग कभी विरोध और कभी समर्थन के बीच कचहरियों की भाषा के रूप में, साथ ही शिक्षा सम्बन्धी पुस्तकों के रूप में भी

'हिन्दी साहित्य का इतिहास', पृष्ठ- 291, रामचन्द्र शुक्ल।

खड़ीबोली की जीवन्तता बनी रही। यह अलग बात है कि दोनों ही रूपों में इसके 'हिन्दुस्तानी' और 'हिन्दवी' रूप को लेकर संघर्ष बराबर रहा। शिक्षा सम्बन्धी पुस्तकों का खड़ीबोली में प्रकाशन जनता को अंग्रेज़ी ज्ञान विज्ञान की शिक्षा दन के उद्देश्य से हुआ। कलकत्ता बुक सोसाइटी, कमिटी ऑफ पब्लिक इन्स्ट्रक्शन, आगरा कॉलेज, दिल्ली कॉलेज, बरेली कॉलेज और आगरा नार्मल स्कूल की स्थापना इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये हुई। इन शिक्षा संस्थाओं की पाठ्टा पुस्तकें जनता की भाषा अर्थात् खड़ीबोली में लिखी गई। इसी के साथ इंगलैण्ड से आये अंग्रेज़ अफसरों को विभिन्न भाषाओं, कानूनों और विषयों की शिक्षा देने के विशुद्ध राजनैतिक उद्देश्य से स्थापित फोर्ट विलियम कॉलेज के प्रिसिंपल गिलक्राइस्ट द्वारा भी हिन्दी और हिन्दुस्तानी गद्य में अनेक पुस्तकें लिखवाई गईं। यद्यपि गिलक्राइस्ट अरबी फारसी मिश्रित हिन्दुस्तानी के समर्थक थे किंतु हिन्दी या हिन्दवी के जनसाधरण में अधिक प्रचलित होने के कारण हिन्दी पण्डित के रूप में लल्लूलाल की नियुक्ति इन्हीं के द्वारा की गई। लल्लूलाल के अतिरिक्त सदल मिश्र, गंगाप्रसाद शुक्ल, इन्द्रेश्वर, नरसिंह, ख्यालीराम, ब्रह्मसच्चिदानन्द, मधुसूदन तर्कालंकार, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, दीनबन्धु और शेषसागर आदि पण्डितों की नियुक्ति का उल्लेख भी मिलता है जिनकी रचनाओं ने खड़ीबोली के विकास में पर्याप्त योग दिया।[10]

भारतेन्दु पूर्व खड़ीबोली गद्य की परम्परा :

(1) राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द :

काव्यजगत में खड़ीबोली के प्रयोग को लेकर विवाद यदि ब्रजभाषा सापेक्ष्य था, तो गद्य के क्षेत्र में संस्कृत अथवा उर्दू-फारसी बहुल शब्दों के आधार पर उसके रूपनिर्माण को लेकर था। कविता के क्षेत्र मे जिस प्रकार महावीर प्रसाद

---

[10] 'हिन्दी का गद्य साहित्य'- पृष्ठ 18, रामचन्द्र तिवारी।

द्विवेदी उसे ब्रजभाषा से मुक्त करने का प्रयास करते हैं, गद्य के क्षेत्र में कुछ पहले भारतेन्दु संस्कृत अथवा उर्दू बहुल खड़ी हिन्दी की मध्य स्थिति को स्वीकार कर उसे सही रूप देने का प्रयास करते हैं। भारतेन्दु का जिस गद्य परम्परा मे सीधे टकराव होता है, वहाँ उसकी दो धाराएँ पृथक रूप से गतिमान होती दिखाई देती हैं- प्रथम के अन्तर्गत राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द (1823-95) अरबी फारसी और उर्दू बहुल खडी हिन्दी का समर्थन करते हैं और दूसरी के अन्तर्गत राजा लक्ष्मण सिंह (1826-1896) संस्कृत प्रधान खड़ीबोली के पक्षधर के रूप में सामने आते हैं। यों राजा शिवप्रसाद की आरम्भिक रचनाओं में चलती हुई सरल हिन्दी का व्यवहार मिलता है किंतु क्रमशः उनका झुकाव जिस हिन्दी की ओर बढ़ा, उसका एक नमूना द्रष्टव्य है,

"बाबर बेशक 'एशिया' के अच्छे बादशाहों में था। अच्छा क्या यह तो कोई अजीब बुजुर्ग हो गुजरा। सजा बड़ी देता था। पर बेसबब कभी किसी को नहीं सताता था। अपना सारा हाल अपने हाथ से एक तुर्की किताब में लिख गया है। लाइक देखने के हैं। वह लिखता है कि ऐसा सुख मैंने उम्र भर नहीं पाया जैसा कुछ दिन समरकन्द छोड़ने पर मिला।"[11]

(2) राजा लक्ष्मण सिंह :

राजा लक्ष्मण सिंह की भाषा अरबी फारसी शब्दों के साथ लोक प्रचलित विदेशी शब्दों (गवाह, आदलत, कलेक्टर आदि) से भी सर्वथा मुक्त थी और उसमे संस्कृत शब्दों का ही प्राधान्य था। उदाहरणार्थ, खड़ीबोली में उनके अनूदित ग्रंथ 'शकुन्तला' का कुछ अंश दृष्टव्य है,

"हे क्षेत्री यह मृग आश्रम का है। इसको मत मारो। देखो इसको मत मारो। इसके कोमल शरीर में जो बाण लगेगा सो मानो रुई के पुंज में आग

[11] 'इतिहास तिमिर नाशक' पार्ट 3, गवर्नमेंट छापाखाना इलाहाबाद, शिवप्रसाद।

लगेगी। कहां तुम्हारे बज्र वाण कहां इसके अल्प प्राण। हे राजा बाण को उतार लो। यह तो दुखियों की रक्षा के निमित्त है, निरपराधियो पर चलाने को नहीं है।''[12]

भारतेन्दु-हिन्दी की 'नईचाल' :

कहना न होगा खड़ीबोली के इन दोनों अतिवादों से अलग भारतेन्दु जनता की वाणी को पहचानते हैं और हिन्दी को 'नई चाल' में ढालते है। हिन्दी की यह 'नईचाल' एक ओर तद्भव और देशज शब्दों तथा मुहावरों, को स्वीकार कर उसे व्यावहारिक रूप देती है तो दूसरी ओर जनजीवन में घुले विदेशी शब्दों को अपनाकर उसे जीवन्तता प्रदान करती है। इस 'नईचाल' में खड़ीबोली जीवन की भाषा बनती है। यों लोकभाषा के रूप में उसकी जीवन्तता सदैव बनी रही किंतु आधुनिक काल में भारतेन्दु के आगमन के साथ लम्बे समय से जीवन से विच्छिन्न साहित्य को जीवन से जोड़ने का वह माध्यम बनी और जिसने उसे वह रचनात्मक उर्जा दी कि साहित्य जगत में वह ब्रजभाषा के समकक्ष खड़ी हो सकी।

साहित्यिक गद्य का विकास : (1) नाटक

पुनर्जागरण की वैचारिक चेतना के अनुकूल आधुनिक काल तक आते आते मध्युगीन भावनात्मक भक्ति आधुनिक वैचारिक शक्ति के रूप में परिणत होती है और इस वैचारिकता के लिये अवकाश की स्थिति गद्य में बनती है। विभिन्न गद्य विधाओं के रूप में खड़ीबोली का बहुमुखी विकास भारतेन्दु युग में स्पष्ट दिखाई देने लगता है। एक ओर अंग्रेज़ी के प्रभाव से निबन्ध, उपन्यास और पुस्तक समीक्षा का आरम्भ हुआ, वहीं लीला, रास, नौटकी, माच, ख्याल, भवाई, कीर्तन और अंकिया तथा ललित और दशावतार के रूप में अब तक प्रचलित लोक नाट्य

---

12 'शकुन्तला' पृष्ठ- 2, राजा लक्ष्मण सिह।

परम्परा को साहित्यिक संस्कार मिला। यद्यपि हिन्दी का पहला मौलिक नाटक गिरधरदास द्वारा रचित 'नहुष' (1859) माना जाता है किंतु हिन्दी नाटकों का भाग्योदय भारतेन्दु के साथ हुआ। भारतेन्दु ने स्वयं मौलिक और अनूदित कुल सत्रह नाटक लिखे। ये नाटक सामाजिक, राजनैतिक, पौराणिक और प्रेमपरक सभी प्रकार के हैं। भारतेन्दु के सहयोगियों में लाला श्री निवासदास ने 'रणधीर और प्रेममोहिनी', 'तप्ता संवरण' और 'संयोगिता स्वयम्बर', राधाकृष्णदास ने 'दु:खिनीबाला,' 'पद्मावती, 'धर्मालाप' और 'महाराणा प्रताप', किशोरीलाल गोस्वामी ने 'मयंकमञ्जरी' तथा रावकृष्ण देवशरण सिंह ने 'माधुरीरूपक' आदि नाटकों की रचना की। इन मौलिक नाटकों के अतिरिक्त संस्कृत, अंग्रेज़ी, और बंगला से भी अनेक नाटक अनूदित हुए।

2. उपन्यास, आलोचना :

उपन्यास रचना के विषय में कहा जा सकता है कि इसकी प्रेरणा प्रत्यक्षत: बंगला से और अप्रत्यक्षत: अंग्रेज़ी से प्राप्त हुई। लाला श्रीनिवासदास का 'परीक्षागुरु' (1882) जो अपनी भाषा में नई चाल की पुस्तक है, और हिन्दी का पहला मौलिक उपन्यास है, इसी समय लिखा गया। पं0 बालकृष्ण भट्ट कृत 'नूतन ब्रह्मचारी' और 'सौ अजान एक सुजान', ठाकुर जगमोहन सिंह का 'श्यामा स्वप्न' और राधाकृष्णदास कृत 'निस्सहाय हिन्दू' आदि उपन्यासों की रचना भी इसी समय हुई। इसके अतिरिक्त संस्कृत काव्यशास्त्र के आधार पर लिखे गये लक्षणग्रंथों के बाद आधुनिक ढंग की आलोचना का आरम्भ भी स्वयं भारतेन्दु के आलोचनात्मक लेख 'नाटक' (1883) के साथ हुआ। व्यावहारिक आलोचना के क्षेत्र में बालकृष्ण भट्ट ने लाला श्रीनिवासदास के नाटक 'संयोगिता स्वयम्बर' की 'सच्ची समालोचना' (1886) की। 'संयोगिता स्वयम्बर' की एक विस्तृत समालोचना पं0 बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' द्वारा भी प्रस्तुत की गई।

(3) निबंध :

भारतेन्दु युग में खड़ीबोली की रचनात्मक समृद्धि नाटक, उपन्यास और समीक्षा के अतिरिक्त निबंध रचना के क्षेत्र में भी दिखाई दी। प्रताप नारायण मिश्र और बालकृष्ण भट्ट के निबन्धों के माध्यम से हिन्दी में ललित निबन्धों की शुरूआत हुई। लाला श्रीनिवासदास, श्री राधाचरण गोस्वामी, श्री मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या, श्री काशीनाथ खत्री और श्री चन्द्रभूषण चातुर्वेद्य इस युग के प्रमुख निबंधकार है जिनके निबंधों के माध्यम से हिन्दी में इस गद्यविधा का पर्याप्त विकास हुआ।

साहित्यिक पत्र पत्रिकाएँ :

इस प्रकार पाठ्यपुस्तकों और धर्मप्रचार ग्रंथों में स्थान प्राप्त करने वाली खड़ीबोली अब साहित्यिक गद्य के क्षेत्र में भी प्रतिष्ठित हुई। एक ओर नाटक, उपन्यास, समीक्षा और निबंध रचना के क्षेत्र में अभूतपूर्व उन्नति हुई। दूसरी ओर साहित्यिक पत्रकारिता का उदय भी इसी समय हुआ। भारतेन्दु युगीन अधिकांश रचनाकार पत्रकार थे। स्वयं भारतेन्दु ने 'कविवचन सुधा' (1868) और 'हरिश्चन्द्र मैग्ज़ीन' (1873), बाद में 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' का सम्पादन किया। 'आनन्द कादम्बिनी' (1881), 'हिन्दी प्रदीप' (1877), 'ब्राह्मण' (1883), 'सदादर्श' (1874), 'बिहारबंधु' (1871) और 'भारतेन्दु' (1883) तत्कालीन साहित्यिक पत्रकारिता के महत्वपूर्ण सोपान हैं जिनका सम्पादन क्रमशः बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमधन,' पं0 बालकृष्ण भट्ट, पं0 प्रतापनारायण मिश्र, लाला श्रीनिवासदास, केशवराम भट्ट और गोस्वामी राधाचरण द्वारा किया गया।

भारतेन्दु युग में निकलने वाली इन प्रमुख साहित्यिक पत्रिकाओं के अतिरिक्त बाबू कार्तिक प्रसाद खत्री ने 'हिन्दी दीप्ति प्रकाश' नामक संवादपत्र और 'प्रेमविलासिनी' नामक पत्रिका भी इसी समय निकाली। 'भारत मित्र' का प्रकाशन

पं0 दुर्गा प्रसाद मिश्र, पं0 छोटूलाल मिश्र, पं0 सदानन्द मिश्र और बाबू जगन्नाथ प्रसाद खन्ना के उद्योग से हुआ जिसमें स्वयं भारतेन्दु के लेख भी छपते थ। स्वयं भारतेन्दु ने स्त्रीशिक्षा के लिये 'बालाबोधिनी' नामक पत्रिका निकाली। 'उचित वक्ता' और 'सारसुधानिधि' ये दो अन्य पत्र क्रमशः पं0 दुर्गाप्रसाद मिश्र और सदानन्द मिश्र द्वारा कलकत्ते से निकाले गये। राजारामपाल सिंह द्वारा इंगलैण्ड से 'हिन्दास्तान' नामक दैनिक पत्र निकाला गया जिसमें हिन्दी अंग्रेज़ी दोनों होती थी। बाबू रामकृष्ण वर्मा द्वारा संपादित 'भारतजीवन', बाबू तोताराम द्वारा सम्पादित 'भारतबन्धु', राधाचरण गोस्वामी द्वारा सम्पादित 'हिन्दूबांधव,' पं0 भीमसेन शर्मा द्वारा सम्पादित 'आर्यसिद्धान्त' और मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या द्वारा सम्पादित 'मोहनचन्द्रिका खड़ीबोली में प्रकाशित इस समय के अन्य प्रमुख पत्र थे।

गद्य के क्षेत्र में खड़ी बोली की प्रतिष्ठा : काव्य जगत में उसके प्रयोग की अनिवार्यता: (गद्य भाषा के रूप में ब्रज भाषा की असफलता)

इस प्रकार भारतेन्दु का आगमन साहित्य जगत में खड़ीबोली की प्रतिष्ठा का शुभ संकेत था। जबकि पुनर्जागरण की वैचारिकता और सामाजिक चेनता ने गद्य की आवश्यकता को अनिवार्य बना दिया था, ब्रजभाषा में गद्य के नाम पर 'अनगढ़ और लद्धड़ भाषा' वाली टीकाएँ ही मिलती हैं। 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता,' 'दा सौ बावन वैष्णवन की वार्ता', 'अष्टयाम', 'अगहन माहात्म्य' 'वैशाख माहात्म्य' और 'बैताल पचीसी' के रूप में जो थोड़ी बहुत गद्य की परम्परा मिलती है, आधुनिक काल तक आते-आते उसका सम्यक् विकास नहीं हो सका और गद्य भाषा क रूप में खड़ीबोली निर्बाध रूप से प्रतिष्ठित हुई। गद्य के क्षेत्र में खड़ीबोली की यह प्रतिष्ठा काव्य-जगत में उसके प्रयोग की अनिवार्यता का कारण बनी जिसने आगे चलकर खड़ीबोली काव्यान्दोलन को जन्म दिया और जिसका चरम उत्कर्ष आचार्य

महावीर प्रसाद द्विवेदी के नेतृत्व में गद्य और पद्य के लिये समान भाषा की इस स्वीकरोक्ति के रूप में दिखाई दिया कि "हिन्दी ही एक ऐसी भाषा है जिसके गद्य में एक प्रकार की और पद्य में दूसरे प्रकार की भाषा लिखी जाती है। सभ्य समाज की जो भाषा हो, उसी में गद्य पद्यात्मक साहित्य होना चाहिए।"[13]

खड़ीबोली युगीन भावों की अभिव्यक्ति में सफल:(ब्रजभाषा की असफलता)

महत्वपूर्ण है कि आधुनिक काल से पूर्व प्राय: सभी भाषाओं के साहित्य में प्रयोग और उसके प्रसार का बहुत बड़ा कारण धर्माश्रित था। ब्राह्मणों द्वारा संस्कृत, बौद्धों और जैन धर्मावलम्बियों द्वारा क्रमश: पालि और अपभ्रंश तथा वैष्णवों द्वारा अवधी और ब्रजभाषा का व्यापक प्रयोग इसी धार्मिक भावना पर आधारित था। भगवान कृष्ण की जन्मभूमि की भाषा का गौरव प्राप्त होने के कारण ही सुदूर बंगदेश और दक्षिण प्रांत में भी कृष्ण भक्त कवियों द्वारा ब्रजवाणी में काव्य रचना का प्रयास किया गया। किंतु आधुनिक काल में खड़ीबोली धार्मिक भावना से पृथक, देशप्रेम और देशभक्ति के भाव के साथ जुड़ी। आधुनिक युग में भक्ति और श्रृंगार की भावनाएँ, गौण पड़ती गईं और राष्ट्रीयता की भावना प्रधान होती गई, लम्बे समय में भक्ति और श्रृंगार से जुड़ी ब्रजभाषा उत्तरोत्तर विकसित होती राष्ट्रीय भावना के वहन में असमर्थ हुई। साथ ही भक्ति और आध्यात्मिकता का रूप क्रमश: कुण्ठित होता गया किंतु देश प्रेम और देशभक्ति का भाव आगे चलकर राष्ट्र प्रेम और सांस्कृतिक राष्ट्रीय चेतना के रूप में ~~चलकर राष्ट्र प्रेम और सांस्कृति राष्ट्रीय चेतना के रूप में~~ निखरता गया जिसकी सशक्त अभिव्यक्ति खड़ीबोली में सम्भव हुई। कहना न होगा भक्तिकाल से रीतिकाल और रीतिकाल से आधुनिक काल तक की यह परिवर्तन शील मानसिकता अपनी मूल प्रकृति में उससे जुड़ी ब्रजभाषा के उत्तरोत्तर क्षरण और खड़ीबोली के उत्तरोत्तर विकास का कारण बनी।

---

[13] 'कवि कर्त्तव्य', सरस्वती 1901, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी।

खड़ीबोली का प्रचार (ब्रजभाषा का संकुचित क्षेत्र) :

आधुनिक काल तक आते आते राष्ट्रीयता की देशव्यापी लहर ने राष्ट्रभाषा की आवश्यकता को जन्म दिया। ऐसे समय में जबकि पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से खड़ीबोली का सुदूर क्षेत्रीय विस्तार हो रहा था, वह कहीं अपने ठेठ रूप में और कहीं हिन्दुस्तानी रूप में बोली और समझी जाती थी, ब्रजभाषा का क्षेत्र मथुरा और उसके आस-पास तक ही सीमित था। साधारण जन से उसका सम्पर्क उत्तरमध्यकाल में ही टूट चुका था। इस प्रकार सुदूर क्षेत्रों के पाठकों के लिये ब्रजभाषा की दुर्बोधता ने उसकी सीमित सम्भावनाओं को भी समाप्त कर दिया अन्ततः वह खड़ीबोली जो आधुनिक काल से पूर्व दक्खिन और महाराष्ट्र के महानुभाव और बारकरी संतो, मध्यदेश के नाथपंथियों और कबीरपंथियों तथा पंजाब के सिक्ख गुरूओं से लेकर मुसलमानों और ईसाई धर्म प्रचारकों द्वारा जन सामान्य के मध्य अपने संदेश के प्रचारार्थ अपनाई गई थी और उन्नीसवीं शती के पूर्वार्द्ध में गद्यभाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो चुकी थी, उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध तक एक व्यापक आन्दोलन के बाद और महावीर प्रसाद द्विवेदी के आगमन के साथ काव्य जगत में भी स्वीकृत और प्रतिष्ठित होती है।

अध्याय–2

आधुनिक खड़ीबोली काव्यभाषाः प्रसाद-पूर्व परिदृश्य

यह रोचक तथ्य है कि नये विषयों और नये भावों की अभिव्यक्ति गद्य के क्षेत्र में खड़ीबोली के माध्यम से जितनी शीघ्रता और जितनी सफलता के साथ हुई, आधुनिकता के विकास की यह प्रक्रिया काव्यजगत में उतनी गति के साथ, साथ ही उतने प्रभावी ढंग से घटित नहीं हुई। यद्यपि भारतेन्दु मंडल के प्रायः सभी रचनाकार ब्रजभाषा के माध्यम से समाज सुधार और देशहित सम्बन्धी विविध विषयों को अभिव्यक्ति दे रहे थे किंतु परम्परा से भक्ति और श्रृंगार से अभिन्न रूप से जुड़ी ब्रजभाषा इस नये सामाजिक ढाँचे के साथ प्रभावकारी ढंग से जुड़ नहीं सकी।

यहाँ यह स्पष्ट कर देना उचित होगा कि आधुनिकता से तात्पर्य देशभक्ति और समाज सुधार सम्बन्धी उस नई चेतना से है जो नई शिक्षा और पाश्चात्य संस्कृति से टकराहट के फलस्वरूप उत्पन्न हुई थी और जो पूर्व भक्ति और श्रृंगार की भावना से कट चली थी। निश्चित रूप से आधुनिकता का सम्बन्ध देशभक्ति और उससे जुड़े लोकहित और समाज सुधार सम्बन्धी उन तमाम विषयों से है जो अब साहित्य का विषय बनने लगे थे और यह कहा जा सकता है कि यह नई संचेतना ही हिन्दी साहित्य में आधुनिकता की पर्याय बनी और आधुनिक काल के रूप में अभिहित हुई।

खड़ीबोली का लोकरूपः

इस प्रकार आधुनिक खड़ीबोली का अवतरण हिन्दी साहित्य में भक्ति और श्रृंगारिक काव्य से पृथक् युगीन संचेतना के अनुकूल देशभक्ति और समाज सुधार जैसे विविध आधुनिक भावों के साथ होता है। किन्तु यह भी सत्य है कि भारतेन्दु युग में जहाँ गद्य के क्षेत्र में खड़ीबोली में नाटक, उपन्याय, निबन्ध और आलोचना आदि विभिन्न विधाओं का विकास हो रहा था वहीं काव्य जगत में खड़ीबोली का प्रयोग लोक रूप में ही मिलता है। ग्रामगीत, लावनी, झूलने, बारहमासे और ख्याल

आदि श्रृंगारी और जातीय संगीत तथा स्वांग और भजन आदि इस युग में खड़ीबोली में लिखे गये। आचार्य शुक्ल के अनुसार ''मिरजापुर के तुकनगिरि गुसाई ने सधुक्कड़ी भाषा के ज्ञान का उपदेश देने के उद्देश्य से लावनी की लय चलाई''[1] रिसालगिरि और देवीसिंह उनके शिष्य द्वय के अखाड़े लावनी के इतिहास में विशेष महत्व रखते हैं। ब्रह्मज्ञान से पूर्ण रिसालगिरि का ढंग 'तुर्रा' कहलाया तथा प्रेम और भक्ति से पूर्ण देवीसिंह का ढंग 'कलंगी' कहलाया। नत्थासिंह 'तालिब', बाबा रामकरन गिरि, बाबा शम्भुपुरी, पं0 रामप्रसाद आदि तुर्रा गायक थे। कलंगी सम्प्रदाय में काशीगिरि बनारसी लावनीबाज के रूप में विशेष से प्रसिद्ध हुए। स्वयं भारतेन्दु ने उर्दू मिश्रित खड़ीबोली में कुछ लावनी और कजलियों की रचना की जिसका एक उदाहरण द्रष्टव्य है,

श्रीराधा माधव जुगल चरन, रस का अपने को मस्त बना,
पी प्रेम पियाला भर भर कर कुछ इसमें का भी देख मज़ा।
यह वह मै है जिसका पीने से और ध्यान छुट जाता है,
अपने में और दिलवर में फिर कुछ भेद नहीं दिखलाता है।
इसके सरूर से मस्त हरेक अपने को नजर बस आता है,
फिर और हवस रहती न जरा कुछ ऐसा मजा दिखाता है।[2]

ख्याल भी ब्रजभाषा, खड़ीबोली और उर्दू तीनों भाषाओं में होते थे किन्तु खड़ीबोली में विशेष रूप से लोकप्रिय हुए। ख्यालबाजी के क्षेत्र में पं0 हरिवंश, पं0 पन्नालाल और पं0 रूपकिशोर विशेष रूप से प्रसिद्ध हुए। यमुना में स्नान करती एक गौरवर्णा सुन्दरी के जूड़े में लगे 'बोर' अर्थात् शीशफूल में जड़े हुए नग को देखकर पं0

---

[1] 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' - पृ0-406, रामचन्द्र शुक्ल
[2] 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र'- पृ0-10, रामविलास शर्मा।

रूपकिशोर द्वारा खड़ीबोली में बनाये गये ख्याल की कुछ पंक्तियाँ उदाहरण रूप में द्रष्टव्य है,

> है सीस पै सीस फूल शोभित, सरूप आभा अखंड का है,
> मनो भुजंगों की भूमिका पै निवास श्री मार्तण्ड का है।
> सजा वो तैने विचित्र कि जैसी भूषित तू सुन्दरी है,
> खिला है यमुना में पीत पंकज कि जिसमें दिनकर की द्युति भरी है
> ये फूल तेरे ने आज उपमा गगन में गुरु की हरन करी है,
> कनक शिखर पर कि बासुकी ने उगल कै मस्तक पै मणिधरी है।[3]

इसके अतिरिक्त जनता का मनोरंजन ठुमरी ओर नौटंकी द्वारा किया जाता था, जिसकी भाषा भी खड़ीबोली होती थी। इनके विषय पौराणिक और धार्मिक आख्यानों से सम्बन्धित होते थे। भारतेन्दु ने जनता की रूचि परिष्कृत करने के उद्देश्य से जातीय संगीत के लिये सत् विषय चुनने का आग्रह किया और स्वयं भी इस क्षेत्र में 'फूलों का गुच्छा', 'वर्षा विनोद' और 'रस बरसात' आदि संग्रह लिखकर आदर्श उपस्थित किया। उनके नाटकों के पद्य भाग में भी प्रायः खड़ीबोली का प्रयोग मिलता है। 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' तथा 'अंधेर नगरी' में पुरोहित और पाचक की भाषा खड़ीबोली ही है। प्रतापनारायण मिश्र का 'संगीत शाकुन्तल' और 'भारत दुर्दशा', अम्बिकादत्त व्यास कृत 'नीति के दोहे' और 'कंसवध' राधाचरण गोस्वामी कृत 'भंगतरंग', तथा पं0 बदरीनारायण चौधरी .'प्रेमघन' कृत 'मंयक महिमा' 'आनन्द अरुणोदय' और 'भारत सौभाग्य' आदि रचनाओं में भी खड़ीबोली के पद्य मिलते हैं।

---

[3] 'आधुनिक हिन्दी का आदिकाल'-पृ0-186, श्रीनारायण चतुर्वेदी।

भारतेन्दु : काव्यभाषा सम्बन्धी दृष्टिकोण-

इस प्रकार काव्यजगत में खड़ीबोली यद्यपि विभिन्न लोक रूपों में संवर्धित होती रही किन्तु शिष्ट साहित्य में परम्परित और नवीन दोनों प्रकार के विषयों की अभिव्यक्ति का माध्यम ब्रजभाषा ही रही। स्वयं भारतेन्दु काव्यजगत में खड़ीबोली के प्रयोग को सहज रूप में स्वीकार नहीं कर सके। अपनी पुस्तक 'हिन्दी भाषा' में वे खड़ीबोली के विषय में लिखते हैं, "मेरा चित्त इससे सन्तुष्ट न हुआ और न जाने क्यों ब्रजभाषा से मुझे इसके लिखने में दुगना परिश्रम हुआ x x x x x x x मैंने इसका कारण सोचा तो मुझको सबसे बड़ा कारण यह जान पड़ा कि इसमें क्रिया इत्यादि में प्रायः दीर्घ मात्रा होती है"[4] किन्तु भारतेन्दु युग के उत्तरार्ध तक काव्य जगत में खड़ीबोली के प्रयोग को लेकर विचार उठने लगे। मुजफ्फरपुर के बाबू अध्योध्याप्रसाद खत्री ने खड़ीबोली के प्रबल समर्थक के रूप में उद्घोषणा की कि खड़ीबोली ही वास्तव में हिन्दी है। उन्होंने ब्रजभाषा की कड़े शब्दों में निन्दा करते हुए लिखा, "मैं भाषा अर्थात् ब्रजभाषा छंद को हिन्दी छंद नहीं मानता हूँ। खड़ीबोली के व्याकरण में ब्रजभाषा को जगह देना और ब्रजभाषा शब्दों को हिन्दी में पोइटिकल लाइसेंस समझना मेरी समझ में भूल है। चंद की हिन्दी को मैं पुरानी हिन्दी और आधुनिक को खड़ीबोली मानता हूँ।"[5] उन्होंने खड़ीबोली को ठेठ हिन्दी, पंडित स्टाइल, मुंशीस्टाइल, मौलवी स्टाइल और यूरेशियन स्टाइल इन पाँच शैलियों में वर्गीकृत किया और खड़ीबोली को ही 'खरी' अर्थात् शुद्ध माना।

---

[4] 'हिन्दी भाषा'-पृ0-2 भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

[5] 'खड़ीबोली का पद्य' दूसरा भाग, भूमिका पृष्ठ-1-अयोध्या प्रसाद खत्री

खड़ीबोली काव्यान्दोलनः

खड़ीबोली को ही हिन्दी कहना और ब्रजभाषा को हिन्दी की परिधि से बाहर रखना यद्यपि बाबू जी के खड़ीबोली के प्रति अतिशय प्रेम और ब्रजभाषा के प्रति उनके दुराग्रह को ही व्यजिंत करता है किन्तु कालान्तर में कविता में ब्रजभाषा अथवा खड़ीबोली के प्रयोग को लेकर जो आन्दोलन छिड़ा उसका परिणाम खड़ीबोली के पक्ष में रहा। यह रोचक विषय है कि खड़ीबोली के पक्षधर के रूप में जहाँ एक ओर श्रीधर पाठक ने ब्रजभाषा में काव्य रचना की वहीं ब्रजभाषा के समर्थक के रूप में बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने 'कजली कादम्बिनी' और 'आनन्द अरुणोदय', अम्बिकादत्त व्यास ने 'कंसबध' राणा प्रतापनारायण मिश्र ने 'संगीत शाकुन्तलम' की रचना खड़ीबोली में की। इस पूरे विवाद में पूर्ण निष्ठा के साथ ब्रजभाषा में आद्यन्त काव्य रचना करने वाला एकमात्र व्यक्तित्व जगन्नाथदास रत्नाकर का हैं। काव्यभाषा को लेकर चले इस लम्बे विवाद में खड़ीबोली का विरोधी स्वर मन्द पड़ता गया और शनैः शनैः भक्ति तथा श्रृंगार से भिन्न समयानुकूल विषयों की अभिव्यक्ति का वह उपयुक्त माध्यम बनने लगी।

एकांतवासी योगी :

भारतेन्दु के बाद सन् 1886 में गोल्डस्मिथ के हर्मिट के अनुवाद के रूप में 'एकांतवासी योगी' ने खड़ीबोली की काव्य सामर्थ्य को प्रमाणित किया और इसी के साथ अब तक फुटकल रूप में भंगिमा दिखाती खड़ीबोली ने अपनी सशक्त आगामी काव्य परम्परा की शुरुआत की। 'एकांतवासी योगी' जैसा कि काव्यग्रंथ के प्रथमपृष्ठ पर ही अंकित है 'एक प्रेम कहानी है जिसे हिन्दी और अंगरेज़ी रसिकों के आनंद के लिये पण्डित श्रीधर पाठक ने अंगरेज़ी से खड़ीहिन्दी के पद्य में उल्था

किया।'[6] वस्तुतः 'खड़ी हिन्दी पद्य' की पहली काव्य रचना के रूप में 'एकांतवासी योगी' का स्थान निर्विवाद है। यद्यपि इससे पूर्व 'लावनी' और 'ख्याल' के रूप में खड़ीबोली में कविताएँ मिलती हैं पर ब्रजभाषा के वर्चस्व के कारण काव्यजगत पर इनका विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। 'एकांतवासी योगी' एक ऐसे योगी की कथा है जो किसी के प्रेम में योगी होकर एकांतवास करता है,

यहाँ इसी जंगल में मेरा बना हुआ है दीन कुटीर

जहाँ सदा गृहरहित पथिक को रहे निवेदित दल, फल, नीर

यद्यपि थोड़ी ही सामग्री, नहीं प्रचुर भण्डार

अर्पित होय भक्ति श्रद्धायुत, यह मेरा परिचार[7]

अपने ठेठपन के बावजूद विकास के अत्यन्त प्रारम्भिक चरण में खड़ीबोली का ऐसा सफल प्रयोग काव्यभाषा के रूप में उसकी प्रतिष्ठा के लिये पर्याप्त था। एक उदाहरण द्रष्टव्य है,

टाइन नदी के रम्य तीर पर, भूमि मनोहर हरियाली
लटक रही, झुक रही, जहाँ द्रुमलता छुए जल से डाली
चिपटा हुआ उसी के तट से, उज्जवल एक विशाल
शोभित है एक महल बाग़ से आगे है एक ताल

उस समग्र वन, भवन, बाग का मेरा बाप ही स्वामी था
धर्मशील, सत्कर्मनिष्ठ वह जमींदार एक नामी था
बड़ा धनाठ्य, उदार, महाशय, दीन-दरिद्र-सहाय
कृषिकारों का प्रेमपात्र, सब विधि सद्गुण समुदाय[8]

---

[6] 'एकांतवासी योगी'-प्रथम पृष्ठ (छठा संस्करण) पं० श्रीधर पाठक

[7] 'एकांतवासी योगी'- पृष्ठ-2 (छठा संस्करण) पं० श्रीधर पाठक

[8] 'एकांतवासी योगी'- पृष्ठ-9 (छठा संस्करण) पं० श्रीधर पाठक

यहाँ 'बाप' और 'महाशय' जैसे चलताऊ और ठेठ प्रयोग एक ओर है तथा बाग, नामी आदि उर्दू से संस्कारित प्रयोगों के साथ तीर-द्रमुलता समग्र-सत्कर्मनिष्ठ, सद्गुण और समुदाय आदि विशुद्ध प्रयोग एक ओर। 'कहाँ जलै है वह आगी', 'वहाँ जो दीखै है तुझको, यह उज्जवल अधिक प्रकाश', और 'आज रात इससे परदेसी, चल कीजै विश्राम यहीं' के अन्तर्गत 'जलै', 'दीखै' और 'कीजै' जैसे कतिपय ब्रजभाषा प्रयोग, अथवा 'इकान्त' जैसे एक दो अशुद्ध प्रयोगों को छोड़कर सम्पूर्ण काव्यकथा में लावनी की लय पर सीधी और सरल खड़ीबोली का प्रयोग बहुत ही सधे रूप में मिलता है और शायद इसी लिये डा0 नामवर सिंह ने 'एकांतवासी योगी' की भाषा को 'जयद्रथवध' और 'भारत भारती' की भाषा की तुलना में कम गद्यवत् और सरल मानते हुए लिखा है कि इसमें "सभी शब्द तत्सम न भी हों तब भी इस कविता का पूरा ठाठ खड़ीबोली का ही है।"[9] कहना न होगा कि 'भारत भारती' के प्रकाशन से 25 वर्ष पूर्व ब्रजभाषा और खड़ीबोली के संक्रान्तिकाल में कविता में खड़ीबोली का यह प्रयोग विशेष ऐतिहासिक महत्व का है।

ब्रजभाषा के गहरे संस्कार लिये श्रीधर पाठक की लेखनी 'एकांतवासी योगी' के माध्यम से काव्यभाषा के रूप में खड़ीबोली का जो आधार ग्रहण करती है वह 'जगत सचाई सार' के रूप में उसमें अगली कड़ी जोड़ती है। आगे चलकर कतिपय स्फुट कविताएँ, 'श्रान्तपथिक', 'इज़ाबियला', 'स्वर्गीयवीणा', और 'वनाष्टक' के चार छंद उन्होंने खड़ीबोली मे लिखे और काव्य भाषा के रूप में खड़ीबोली के प्रयोग का समर्थन सर्वाधिक प्रखर स्वर में किया।

[9] 'मैथिलीशरण गुप्त और आधुनिक हिन्दी काव्यभाषा का विकास' आलोचना, अक्टूबर दिसम्बर 86, पृ0-139, 140 लेख, डा0 नामवर सिंह

स्वच्छन्तावादी काव्यधारा :

भारतेन्दु युग के उत्तरार्द्ध तक अथवा यह कहा जा सकता है कि भारतेन्दु के बाद श्रीधर पाठक द्वारा खड़ीबोली में विधिवत् काव्यरचना की जो शुरूआत हुई वह द्विवेदी युग में पूर्णतः प्रतिष्ठित हो गई। भारतेन्दु युग में नये विषयों को अपनाया गया लेकिन पुराने ढंग के कवित्त सवैयों में ही काव्य रचना होती रही। प्रकृति चित्रण भी रूढ़िबद्ध रूप में ही हुआ। श्रीधर पाठक पहले कवि हैं, जिन्होंने परम्परागत कवित्त सवैयों से अलग खड़ी बोली में नये प्रकार के छंद रचे। इनके प्रकृति चित्रण में भी रूढ़िबद्धता नहीं मिलती। आचार्य शुक्ल से लेकर अनेक नये आलोचक आधुनिक काव्य में स्वच्छन्दता का आभास सर्वप्रथम श्रीधर पाठक के काव्य में देखते हैं जो क्रमशः मुकुटधर पाण्डेय, लोचन प्रसाद पाण्डेय रूपनारायण पाण्डेय और रामनरेश त्रिपाठी के काव्य में भी प्रतिफलित होता है। स्वच्छन्दतावादी काव्यधारा के इन कवियों की लेखनी के संस्पर्श से खड़ीबोली में परम्परागत छंदो से अलग न केवल नये प्रकार के छंद रचे गये बल्कि इनके काव्य में स्वच्छन्द प्रकृति चित्रण ने खड़ीबोली की काव्यक्षमता को नया आयाम दिया।

पण्डित रामनरेश त्रिपाठी :

पं० रामनरेश त्रिपाठी द्विवेदी युग के ऐसे रचनाकार हैं जिन्होंने तत्सम शब्दों के संतुलित प्रयोग द्वारा खड़ीबोली के स्वाभाविक रूप की रक्षा की। ऐसे समय में जबकि द्विवेदी जी की प्रेरणा से खड़ीबोली को अन्य देशीय और प्रान्तीय शब्दों के मेल से बचाकर संस्कृत शब्दावली के आधार पर उसके रूप निर्माण का प्रयास किया जा रहा था और प्रयास की इस प्रक्रिया में द्विवेदी युगीन भाषा यन्त्रवत् हो गई थी, त्रिपाठी जी ने उसे सरस और भावप्रधान बनाया। देशभक्ति जैसे विषय को उन्होंने काल्पनिक आख्यानों के माध्यम से सुन्दर और आकर्षक रूप में प्रस्तुत किया,

अतः कहा जा सकता है कि स्वच्छन्तावाद की जो प्रवृत्ति श्रीधर पाठक के काव्य में दिखाई दी थी वह इनके काव्य में भी मिलती है। त्रिपाठी जी की विशेषता यह है कि स्वच्छन्दता के इस मार्ग पर चलते हुए भी भाषिक अनुशासन उनमें पूरा मिलता है। श्रीधर पाठक और उनके सहयोगी कवियों की भाषा से पृथक वह व्याकरणिक दोषों और ब्रजभाषा के प्रभाव से मुक्त है। भाषा की कसावट और सुबोधता इनके काव्य में सर्वत्र मिलती है क्योंकि 'काव्य भाषा में लाघव के लिये कुछ कारक चिन्हों और संयुक्त क्रियाओं के कुछ अंतिम अवयवो को छोड़ना भी (जैसे, 'कर रहा है' के स्थान पर 'कर रहा' या 'करते हुए' के स्थान पर 'करते') ये ठीक नहीं समझते थे।''[10] एक उदाहरण द्रष्टव्य है,

> शासक-दल असहाय प्रजा को घोर कष्ट देता है।
> रक्षक से भक्षक बनता है, सरबस हर लेता है।।
> अटल दीनता का चंगुल है, साथी कौन किधर है?
> हरदम सिर पर मौत खड़ी है, ओठों पर ईश्वर है।[11]

'स्वप्न', 'मिलन' और 'पथिक' छायावाद के ठीक पहले लिखे गये कवि के तीन ऐसे खण्डकाव्य हैं जिनमें आरम्भिक छायावाद की स्वच्छन्दता का संकेत मिलता है। छायावाद की भावुकता और कल्पनाशीलता के साथ जनजागरण और राष्ट्रीयता के भाव का सुन्दर संयोजन इन्हें विशिष्ट बनाता है। तत्सम शब्दावली का सहज प्रयोग 'मिलन' की निम्न पंक्तियों में द्रष्टव्य है,

> सुन प्रणयी के इन्द्रवदन में, मृदुल कौमुदी हास
> विकसित हुआ झुकाया उसने, शशि को शशि के पास।[12]

---

[10] 'हिन्दी साहित्य का इतिहास'-पृ0 426, रामचन्द्र शुक्ल

[11] 'पथिक' पृ0-45, रामनरेश त्रिपाठी

[12] 'मिलन' पृ0-13, रामनरेश त्रिपाठी

X X X X X X X X X

पंकज-माला सी, प्रणयी के मृदु गलबहियाँ डाल।

दृग-चकोर से देख चन्द्रमुख से बोली विह्वल बाल।[13]

कहना न होगा जहाँ लम्बे-लम्बे समस्त पद, सन्धियुक्त पदावली और दुर्बोध संस्कृत शब्दावली के कारण द्विवेदी युग के पहले खड़ीबोली महाकाव्य 'प्रियप्रवास' की भाषा निर्जीव और कृत्रिम प्रतीत होती है, वहीं उपर्युक्त उद्धरणों में तत्सम शब्दावली को खड़ीबोली की प्रकृति के अनुकूल ढाला गया है। भाषा का यह रूप 'प्रियप्रवास' की भाषा से अलग खड़ीबोली में एक नई स्फूर्ति और ताज़गी भरता है।

स्वच्छन्दतावादी काव्यधारा के अन्य कवियों में मुकुटधर पाण्डेय की 'काल की कुटिलता', 'संकेत सप्तक', 'सिंहोपालम्भ', 'एक शुभ समय', कैकेयी का पट्य' आदि कुछ विषय प्रधान कविताओं को छोड़कर अधिकांश उनकी सूक्ष्म अन्तवर्ती चेतना की अभिव्यक्ति हैं। लोचन प्रसाद पाण्डेय ने खड़ीबोली में बंगला और उड़िया काव्यों का अनुवाद किया। 'नीति कविता', 'मेवाड़गाथा', और 'पद्यपुष्पांजलि' शीर्षक स्वतंत्र ग्रंथों के अतिरिक्त उनकी फुटकल कविताओं में प्रकृति का आलम्बन रूप में चित्रण मिलता है। भाषा व्याकरण के बन्धन से मुक्त और स्वच्छन्द है, अत: अधिकांशत: अपरिष्कृत है। प्रारम्भिक खड़ीबोली रचनाओं में ब्रजभाषा के प्रयोग भी मिलते हैं। संस्कृत और हिन्दी के छंदों में खड़ी बोली का स्वच्छ रूप प्रस्तुत करने वाले पं0 रूपनारायण पाण्डेय की रचनाएँ 'पराग' शीर्षक संग्रह के अन्तर्गत संकलित हैं। 'दलित कुसुम', 'वन विहंगम', और 'आश्वासन' आदि रचनाएँ उनके सरस और भावुक हृदय की परिचायक हैं।

---

[13] 'मिलन' पृ0-16 रामनरेश त्रिपाठी

अनुशासन की धारा : पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी का नेतृत्व

स्वच्छन्दतावादी काव्यधारा के समानान्तर अनुशासन की धारा भी चलती है। यह अनुशासन मुख्यत: भाषा का अनुशासन है जिसका नेतृत्व आचार्य महावीर प्रसाद ने किया—वह कविता के संदर्भ में हो या गद्य के संदर्भ में। 'खड़ीहिन्दी' को ब्रज और अवधी के मेल से मुक्त करके उसे व्याकरणबद्ध कर व्यवस्थित करने का महत् कार्य द्विवेदीजी द्वारा ही सम्पन्न हुआ। यह सही है कि द्विवेदीजी की अनुशासनप्रियता और व्यवस्थाप्रिय चरित्र ने खड़ीबोली को व्याकरण का अनुशासन तो दिया लेकिन इस व्याकरणिक व्यवस्था में कविता की भाषा इतिवृत्तात्मक और गद्यवत् हो गई जिसकी ओर संकेत करते हुए आचार्य शुक्ल ने लिखा कि "व्याकरण के व्यतिक्रम और भाषा की अस्थिरता पर तो थोड़े ही दिनों में कोपदृष्टि पड़ी पर भाषा की रूपहानि की ओर उतना ध्यान नहीं दिया गया।"[14] आचार्य शुक्ल का यह कथन यद्यपि 'खड़ीहिन्दी' गद्य के संदर्भ में है किन्तु कविता की स्थिति भी इससे भिन्न नहीं थी। चूंकि साहित्य-जगत में द्विवेदी जी का आगमन ऐसे समय में हुआ जबकि 'खड़ीहिन्दी' की पहली व्यवस्थित काव्यरचना के रूप में 'एकांतवासी योगी' के प्रकाशन के बाद ब्रजभाषा से उसके संघर्ष की स्थिति यद्यपि समाप्त हो चली थी किन्तु श्रीधर पाठक और सहयोगी कवियों में खड़ी बोली का प्रयोग दोषरहित और ब्रजभाषा मुक्त नहीं था। ऐसे समय में सन् 1900 में 'सरस्वती' का प्रकाशन और 1903 में द्विवेदीजी द्वारा उसका सम्पादन कार्य सम्हालना वस्तुत: कविता के क्षेत्र में खड़ीबोली की पूर्ण प्रतिष्ठा की युगीन आवश्यकता थी। 'सरस्वती' के माध्यम से अपने युग के छोटे-बड़े सभी रचनाकारों की भाषा को परिमार्जित और व्यवस्थित कर उनके लिये प्रेरणास्त्रोत का कार्य करने वाले आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी यद्यपि

---

[14] 'हिन्दी साहित्य का इतिहास'- पृ0-334, रामचन्द्र शुक्ल

स्वयं कवि रचनाकार के रूप में विशेष महत्व नहीं रखते किन्तु खड़ीबोली के परिष्कार और परिमार्जन का कार्य करने वाला दूसरा नाम उनके समकक्ष नहीं है।

अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' : प्रथम महाकाव्य की रचना–

अनुशासन की इस धारा में 'हरिऔध', 'मैथिलीशरण गुप्त', 'नाथूराम शंकर शर्मा' और 'रामचरित उपाध्याय' प्रमुख हैं। अपने युग को अनुशासित करने वाले स्वयं द्विवेदीजी की रचनाएँ इस धारा से पृथक हों, ऐसा सम्भव नहीं है। इस प्रकार द्विवेदीजी का आगमन और सरस्वती का प्रकाशन खड़ीबोली काव्य-जगत के दो ऐसे ऐतिहासिक सत्य हैं जिन्होंने उसे कविता और गद्य के क्षेत्र में समान भाव से प्रतिष्ठित किया। खड़ीबोली के प्रति द्विवेदीजी की अनन्य निष्ठा का ही शुभ परिणाम था कि सन् 1914 में खड़ीबोली हिन्दी में पहला महाकाव्य 'प्रियप्रवास' प्रकाशित हुआ। स्वयं ब्रजभाषा और खड़ीबोली दोनो में काव्य रचना करने वाले अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने 'प्रियप्रवास' की भूमिका में यह स्वीकार किया कि "अब मुझे केवल इतना ही कहना है कि समय का प्रवाह खड़ीबोली के अनुकूल है, इस समय खड़ी बोली में कविता करने से अधिक उपकार की आशा है अतएव मैंने भी 'प्रियप्रवास' खड़ीबोली में ही लिखा है .... वास्तव बात यह है कि उसमें कांतता और मधुरता नहीं आई है, तो यह मेरी विद्या, बुद्धि और प्रतिभा का दोष है, खड़ीबोली का नहीं।"[15] काव्य जगत में खड़ीबोली की इस युगीन आवश्यकता को स्वीकार करने वाले 'हरिऔध' की भाषा की प्रमुख विशेषता यह है कि एक ओर उसमें संस्कृत प्रधान तत्सम शब्दावली का प्राधान्य है तो दूसरी ओर खड़ीबोली का ठेठ रूप भी देखा जा सकता है। भाषा की यह द्विरंगी छटा गद्य और कविता में समान रूप से दिखाई देती है। गद्य में 'बेनिस का बाँका' संस्कृत

---

[15] 'प्रियप्रवास', भूमिका-पं0 अयोध्यासिंह उपाध्याय

प्रधान खड़ीबोली में लिखा गया है तथा 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' और 'अधखिला फूल' ठेठ हिन्दी में। इसी प्रकार 'प्रियप्रवास' में यदि भाषा का पहला रूप मिलता है तो 'चोखे चौपदे' में भाषा का दूसरा रूप देखा जा सकता है। 'पद्यप्रसून' में भाषा के दोनो रूप एक साथ मिलते हैं। 'प्रियप्रवास' से एक उद्धरण द्रष्टव्य है,

रूपोद्यान-प्रफुल्लप्राय-कलिका राकेंदु-बिम्बानना।

तन्वंगी कलन्हासिनी सुरसिका क्रीड़ा-कलापुत्तली।।

शोभावारिधि की अमूल्य-मणि सी लावण्य लीलामयी।

श्री राधा-मृदुभाषिणी मृगदगी माधुर्यसन्मूर्ति थी।।[16]

कहना न होगा राधा का यह रूपचित्रण उसके सौन्दर्यबोध के स्थान पर संस्कृत शब्द भंडार पर उनके अधिकार और कौशल को ही अधिक व्यजिंत करता है। भाषा का यह रूप सर्वत्र नहीं है, अधिकांश में 'हिन्दी अपनी चाल पर चली चलती दिखाई पड़ती है।' 'मैं घमण्डों में भरा ऐंठा हुआ। एक दिन जब था मुंडेरे पर खड़ा' अथवा 'क्यों पले पीस कर किसी का तू? है बहुत पालिसी बुरी तेरी हम रहे चाहते पटाना ही, पेट तुझसे पटी नहीं मेरी', 'चोखे चौपदे' की यह मुहावरेदार बोलचाल की भाषा, संस्कृत प्रधान शब्दावली से विपरीत भाषा का बिल्कुल दूसरा नमूना प्रस्तुत करती है। संस्कृत वृत्तों में काव्य रचना का अधिकार रखने वाले 'हरिऔध' के संदर्भ में विशेष उल्लेखनीय है कि द्विवेदीजी से संसर्ग के पूर्व वे कविता में उर्दू पदों और बोलचाल की भाषा को ही उपयुक्त मानते थे और उसी ढंग पर खड़ीबोली में काव्यरचना करते थे।

[16] 'प्रियप्रवास', चतुर्थसर्ग-पृ0-36 (सप्तम संस्करण) पं0 अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

मैथिलीशरण गुप्त :

'हरिऔध' की भाँति मैथिलीशरण गुप्त की काव्ययात्रा भी ब्रजभाषा से आरम्भ होती है। गुप्तजी की ब्रजभाषा रचना को अस्वीकृत करते हुए महावीर प्रसाद द्विवेदी ने लिखा ''आपकी कविता पुरानी भाषा में लिखी गई है। सरस्वती में हम बोलचाल की भाषा में ही लिखी गई कविताएँ छापना पसन्द करते हैं।''[17] और इसके बाद द्विवेदीजी की प्रेरणा से खड़ीबोली में उनकी पहली कविता 'हेमन्त' और पहला खण्डकाव्य 'रंगमेंभंग' प्रकाशित हुआ। गुप्तजी की समग्र काव्यसाधना द्विवेदीजी के आदर्शो पर अवलम्बित है। उन्होंने आचार्य की भाषा सम्बन्धी मान्यताओं को ध्यान में रखते हुए छोटे-बड़े अनेक काव्यग्रंथों की रचना की। सीधी और सरल खड़ीबोली में लिखी गई गुप्तजी की कविताएँ द्विवेदी युगीन इतिवृत्तात्मक शैली का पूर्ण प्रतिनिधित्व करती हैं। उनकी आरम्भिक रचनाओं और 'भारतभारती' में यह प्रवृत्ति सबसे अधिक मिलती है। आगे चलकर बंगला भाषा के अध्ययन और बंगला काव्यग्रंथों के अनुवाद ने उनकी भाषा को सरस और कोमल बनाया और अन्ततः बाद की रचनाओं में (साकेत और यशोधरा) छायावादी लाक्षणिकता का संकेत भी मिलता है।

गुप्तजी द्वारा प्रस्तुत खड़ीबोली के विपुल रचना भण्डार में 'भारत भारती', 'साकेत' और 'यशोधरा' उनकी तीन सर्वाधिक महत्वपूर्ण कृतियाँ है। राष्ट्रकवि के रूप में प्रतिष्ठित मैथिलीशरण गुप्त 'भारत भारती' की भूमिका में लिखते हैं, ''बड़े खेद की बात है कि हम लोगों के लिये हिन्दी में अभी तक इस ढंग की कोई कविता पुस्तक नहीं लिखी गई जिसमें हमारी प्राचीन उन्नति और अर्वाचीन अवनति का वर्णन भी हो और भविष्य के लिये प्रोत्साहन भी, इस अभाव की पूर्ति के

---

[17] 'मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रंथ', पृ0 41- वरूआ, ऋषि कौशिक जैमिनी

लिये जहाँ तक मै जानता हूँ कोई यथोचित प्रयत्न नहीं किया गया।''[18] और इस उद्देश्य की पूर्ति 'भारत भारती' के माध्यम से हुई जिसे 'भारत भारती' की ही दो पंक्तियों में यों समझा जा सकता है, 'हम कौन थे, क्या हो गये हैं। और क्या होगें अभी,/आओ विचारे आज मिलकर ये समस्याएँ सभी।' गुप्तजी की समस्त राष्ट्रीय चिन्ता मानो इन पंक्तियों में सिमट जाती है।

गुप्तजी के अन्तिम दो बड़े काव्यों में 'यशोधरा' की रचना नाटकीय ढंग पर हुई है जिसमे बीच-बीच में गद्य भी है और भाव व्यंजना प्रधान गीत भी मिलते हैं। इसमें भगवान बुद्ध से सम्बन्धित पात्रों का परस्पर कथन है और उनके उदात्त भावों की सुन्दर व्यंजना भी मिलती है। 'साकेत' आचार्य द्विवेदी के 'कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता' शीर्षक लेख के रूप में प्रतिफलित हुआ है जिसमें रामकथा के अन्तर्गत उर्मिला को केन्द्रीय स्थान देते हुए कवि ने अन्तिम दो सर्गो में उसकी विरह वेदना और त्याग भावना का उदात्त रूप प्रस्तुत किया। उर्मिला के साथ ही कवि की संवेदना कैकेयी के प्रति भी है जहाँ वह उसके मातृत्व पक्ष को परम्परा से अलग नई सहानुभूति देता है।

'वैतालिक' के माध्यम से गुप्तजी ने खड़ीबोली में गीतकाव्य लेखन का प्रयास किया है तो 'तिलोत्तमा', 'चन्द्रहास' और 'अनघ' पद्यबद्ध रूपक के रूप में लिखे गये हैं। 'मंगलघट', 'झंकार' और 'स्वेदश संगीत' 'सरस्वती' में प्रकाशित कवि के मुक्तककाव्य का संकलन हैं और 'शकुन्तला', 'सरस्वती' के चित्र परिचय के रूप में प्रकाशित शकुन्तला विषयक उनकी तीन रचनाओं का संग्रह है।

अन्ततः यह कहा जा सकता है कि द्विवेदीजी की प्रेरणा से प्रबन्ध और मुक्तक, मौलिक और अनूदित अनेक काव्यरूपों को खड़ीबोली में प्रस्तुत कर गुप्तजी

---

[18] 'भारत भारती'-भूमिका-मैथिलीशरण गुप्त

ने उसका व्यवस्थित, परिमार्जित और परिष्कृत रूप प्रस्तुत किया। काव्यभाषा के रूप में खड़ीबोली के परिष्कार और परिमार्जन काल में उसके व्यवस्थित रूप को देखकर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं, "बाबू मैथिलीशरण गुप्त और ठाकुर गोपालशरण सिंह ऐसे कवियों की लेखनी से खड़ीबोली मँजते देखकर आशा का पूर्ण संचार होता है।"[19] खड़ीबोली काव्यजगत में मैथिलीशरण गुप्त के योगदान का ठीक-ठीक मूल्याकंन डा0 सत्येन्द्र के इन शब्दों के साथ समाप्त किया जा सकता है, "गुप्तजी ने भाषा को सबसे बड़ी देन यह दी कि उसका ठीक-ठीक रूप रख दिया, खड़ीबोली को उसके पैरों पर खड़ा कर दिया। उसकी अनिश्चिता दूर कर दी, उसमें व्यवस्था ला दी। .... उनके जयद्रथ ने ब्रजभाषा के मोह का वध कर दियाऔर 'भारत भारती' ने तो जैसे सुनिश्चित भारतीय भाषा का सतेज रूप ही खड़ा कर दिया।"[20]

पण्डित रामचरित उपाध्याय:

यह आचार्य द्विवेदी के वरद हस्त का प्रभाव था कि ब्रजभाषा से अपना काव्यजीवन आरम्भ करने वाले अनेक कवि खड़ीबोली के प्रतिष्ठित कवि बने। अनुशासन की धारा के अन्तर्गत ऐसे कवियों में अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' और मैथिलीशरण गुप्त, द्विवेदी युग के इन दो बड़े कवियों के अतिरिक्त पं0 रामचरित उपाध्याय और पं0 नाथूराम शंकर शर्मा प्रमुख हैं। पं0 रामचरित उपाध्याय ने एक ओर अमीर खुसरो की कहमुकरियों के ढंग पर 'पहेली' और रहीम के पदों के अनुकरण पर 'पूर्वस्मृति' की रचना की और दूसरी ओर भारतेन्दु युग में रचित लावनी और जातीय गीतों की परम्परा को भी अपनाया। सन् 1905 तक वे

---

[19] 'हिन्दी साहित्य का इतिहास'-पृ0-435, रामचन्द्र शुक्ल

[20] 'गुप्तजी की कला' पृ0-6-7 डा0 सत्येन्द्र

'विजयी वसन्त', 'श्रवण श्रृंगार', 'सुधाशतक', 'बरवा', 'चौपाई', आदि के रूप में ब्रजभाषा में काव्य रचना करते रहे। 'सरस्वती' के माध्यम से खड़ीबोली काव्य का प्रचार और प्रसार बढ़ने पर उन्होंने खड़ीबोली में 'पवनदूत' शीर्षक अपनी पहली रचना भेजी। उनके प्रसिद्ध काव्य 'रामचरित चिन्तामणि' के कुछ अंश भी 'सरस्वती' में प्रकाशित हुए। आचार्य द्विवेदी की प्रेरणा और 'सरस्वती' में उनकी रचनाओं का प्रकाशन उपाध्याय जी की भाषा को स्वतः अनुशासित करता है। उनकी रचनाओं में खड़ीबोली का प्रांजल रूप देखा जा सकता है, जहाँ अन्य भाषाओं के शब्दों का मिश्रण कम मिलता है। संस्कृत पर विशेष अधिकार रखने के कारण तत्सम शब्दावली का सायास आग्रह है और अप्रचलित प्रयोगों के कारण कहीं कहीं भाषा दुर्बोध हो गई है, यथा-

ब्रह्मचर्य का हो विनिद्र पालन करते थे।
हमें सुधा सी यह दाख है प्रिया,[21]
x x x x x x
वहीं द्विको की सहती तिरस्क्रिया।[22]
x x x x x x
धिक्कृति है मम देह को यदि जीवनधारण[23]

इसके विपरीत फुटकर रचनाओं की भाषा अपेक्षाकृत प्रवाहपूर्ण और परिनिष्ठित है, यथा-

मम वियोग से मूर्छित जो वह होगी पड़ी विकल अबला,
तेरा स्पर्श अमित सुखदायक उसे लगेगा बहुत भला।
नेत्र सफल तेरे भी होगें, इसमें शंका नही समीर,
बिखरे केश बदन पर देखे, कंचन सा अधखुला शरीर[24]

---

[21] 'रामचरित चिन्तामणि'- पृ0 28 पं0 राम चरित उपाध्याय
[22] 'रामचरित चिन्तामणि'- पृ0 31 पं0 राम चरित उपाध्याय
[23] 'रामचरित चिन्तामणि'- पृ0 34 पं0 राम चरित उपाध्याय
[24] 'सूक्ति मुक्तावली'- पृ0 72 पं0 राम चरित उपाध्याय

'रामचरित चिन्तामणि' के अतिरिक्त 'सूक्तिमुक्तावली', 'देवदूत', 'भारतभक्त', 'रामचरितचन्द्रिका' और 'राष्ट्रभारती' कवि के प्रमुख काव्यग्रंथ है।

पं0 नाथूराम शंकर शर्मा का समस्त खड़ीबोली काव्य विषय प्रधान है। आर्यसमाज का प्रभाव होने के कारण कवि शंकर की अधिकांश रचनाएँ समाज सुधार और धर्मसुधार की भावना से प्रेरित है भाषा संस्कृतनिष्ठ और तत्सम शब्दावली युक्त है। यथास्थल ब्रजभाषा के क्रियापदों का प्रयोग मिलता है किन्तु अरबी फारसी और उर्दू शब्दों का सर्वथा अभाव है। शंकर की खड़ीबोली रचनाओं में 'शंकरसरोज', 'अनुरागरत्न', 'गर्भरण्डारहस्य' और 'वायसविजय' उल्लेखनीय हैं।

ब्रजभाषा काव्यः

द्विवेदी युग के इन खड़ीबोली रचनाकारों के अतिरिक्त आलोच्य काल में ब्रजभाषा काव्य की एक धारा भी चलती रही। इस धारा के कवियों में जगन्नाथदास 'रत्नाकर', सत्यनारायण 'कविरत्न', रायदेवी प्रसाद 'पूर्ण', और लाला भगवानदीन प्रमुख हैं। यद्यपि इन सभी कवियों ने द्विवेदीयुग में ब्रजभाषा की काव्य परम्परा को जीवित रखा किन्तु इनमें से अधिकांश ने खड़ीबोली में भी काव्यरचना की। खड़ीबोली काव्यान्दोलन के चलते ब्रजभाषा काव्य का सशक्त समर्थन करने वाले 'रत्नाकर' युगीन काव्य प्रवाह के बीच ब्रजभाषा के अन्तिम समर्थ कवि के रूप मे दिखाई देते है। इन्होंने 'हरिश्चन्द्र', 'गंगावतरण', और 'उद्धवशतक' की रचना ब्रजभाषा में की और अंग्रेज़ी कवि पोप के 'ऐसे ऑन क्रिटिसिज़्म' का रोला छंदो में अनुवाद किया। उल्लेखनीय है कि 'रत्नाकर' ने दो कवित्त खड़ीबोली में भी लिखे जिसमें प्रथम छंद का उत्तर अंश इस रूप में है,

भारत प्रताप-भानु उच्च-उदयाचल से,

कुहरा कुबुद्धि का चिरस्थित हटाता है।

भावी भव्य सुभग सुखद सुमनावली का,

गंधी गंधवाहक सुगंध लिये आता है।[25]

द्विवेदीयुग की ब्रजभाषा काव्य-परम्परा के दूसरे महत्वपूर्ण कवि सत्यनारायण 'कविरत्न' हैं। परम्परा से अलग इनकी रचनाओं में ब्रजभाषा का व्यावहारिक रूप देखा जा सकता है। इन्होंने एक ओर संस्कृत काव्य ग्रंथों में 'उत्तररामचरित' और 'मालती माधव' का सवैया छंदों में अनुवाद किया तो दूसरी ओर अंग्रेजी कवि मकाले के अंग्रेजी खण्डकाव्य 'होरेश' को भी पद्यबद्ध रूप में अनूदित किया। इनकी अन्य रचनाओं में 'भ्रमरदूत' और 'प्रेमकली' विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

रायदेवीप्रसाद 'पूर्ण' और लाला भगवानदीन उक्त काव्य धारा के अन्य प्रमुख कवि हैं। कानपुर के रसिक समाज की पत्रिका 'रसिकवाटिका' में अनवरत रूप से ब्रजभाषा में काव्य रचना करने वाले देवी प्रसाद 'पूर्ण' की खड़ीबोली रचनाओं में 'अमल्तास', 'वसन्त वियोग', और 'नवीन संवत्सर का स्वागत' प्रमुख है। लाला भगवानदीन ने वीरों के चरित्र को लेकर ओजपूर्ण काव्यरचना की। 'वीरक्षत्राणी', 'वीरबालक', और 'वीरपंचरत्न', खड़ीबोली में लिखे गये इनके प्रमुख काव्यग्रंथ हैं। खड़ीबोली की फुटकल कविताओं का संग्रह 'नवीनबीन', या 'नदीमेदीन' में है। उर्दू छंदों तथा अरबी फारसी के शब्दों का प्रयोग इनकी खड़ीबोली की प्रमुख विशेषता है।

---

[25] 'हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास' पृ0 122, रामस्वरूप चतुर्वेदी

द्विवेदीयुग में उक्त कवियों द्वारा जहाँ ब्रजभाषा परम्परा को अपनाया गया वहीं गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही', जगदम्बाप्रसाद 'हितैषी', और अनूपशर्मा ने परम्परागत समस्यापूर्ति के माध्यम को अपनाया। भारतेन्दु युग में समस्यापूर्तियाँ अधिक़ांशत: ब्रजभाषा मे होती थी, अब उनकी भाषा पूर्णत: खड़ीबोली हो गई। यहीं बाबू बालमुकुन्द गुप्त का उल्लेख भी प्रासंगिक हो जाता है जिन्होंने टेसू के गीत जैसे लोक माध्यम को अपनाकर भारतेन्दुयुगीन काव्य परम्परा को बनाये रखा। दोनों युगों के संधिकाल में रचना करने वाले गुप्त जी का समस्त खड़ी बोली काव्य विषय प्रधान और नितान्त इतिवृत्तात्मक है, और यही कारण है कि आचार्य शुक्ल ने उन्हें आधुनिक युग के गद्यकारों में स्थान दिया है, कवियों में नहीं।

राष्ट्रीय चेतना:

देशभक्ति और कभी-कभी राजभक्ति का जो भाव भारतेन्दुयुगीन काव्य में मिलता है, उसकी परणति आगे चलकर द्विवेदीयुगीन राष्ट्रीयता और छायावाद की सांस्कृतिक राष्ट्रीय चेतना के रूप में सूक्ष्मतर होती चलती है। यह राष्ट्रीय चेतना द्विवेदी युग की प्रमुख काव्य प्रवृत्तियों के रूप में विकसित होती रही। द्विवेदी युग के अन्त तक जबकि छायावादी काव्य प्रवृत्तियाँ भी विकसित हो रहीं थीं, कुछ कवियों में यह राष्ट्रीय चेतना अधिक प्रखर स्वर में मुखरित होती है। ऐसे कवियों में माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', सुभद्राकुमारी चौहान, गोपालशरण सिंह, सियारामशरण गुप्त और सोहनलाल द्विवेदी प्रमुख हैं। युग के आरम्भ में परिष्कृत और परिमार्जित हुई खड़ीबोली युग के अन्य तक इन कवियों की राष्ट्रीय चेतना का ओजपूर्ण माध्यम बनती है, जो उसकी प्रकृति के अनुकूल भी था।

कविता का सामाजिक स्वरूप:

राष्ट्रीयता के साथ द्विवेदी युग में कविता के सामाजिक स्वरूप को महत्व मिला। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी का निर्देश था-"संयोगिनी और वियोगिनी पर कविता करना उचित नहीं[26]" वैयक्तिक भावनाओं और अनुभूतियों की अभिव्यक्ति कविता के इस ढाँचे में सम्भव नहीं थी। छायावाद की अन्तर्मुखी चेतना के लिये द्विवेदी युग की 'इतिवृत्तात्मकता' प्रतिकूल सिद्ध हुई। परिणामत: 1918 में 'झरना' के प्रकाशन के पूर्व ही द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मकता और गद्यात्मकता के विपरीत अनेक प्रयोग काव्यजगत में होने लगे। छायावाद के आरम्भिक कवि जयशंकर प्रसाद का कथा काव्य 'प्रेमपथिक' जो पहले ब्रजभाषा में लिखा गया था, 1914 में खड़ीबोली में रूपान्तरित हुआ। 'प्राय: लोग कहा करते हैं-'रात भयानक होती है- घोर कर्म्म भीमा रजनी के आश्रय में सब होते हैं।' 'प्रेमपथिक' की ऐसी अनेक पंक्तियाँ जहाँ अनावश्यक गद्यात्मकता से पूर्ण हैं, वहीं 'सुन्दर कुटिया वह कैसी है, रम्य कुटी में सरिता के, शान्त तपस्वी सी वल्लरियों के झुरमुट से घिरी हुई।' के अन्तर्गत 'कुटिया' जैसे जड़ तत्व की तपस्वी से उपमा नवीन है। कहा जा सकता है कि ब्रजभाषा से खड़ीबोली में रूपान्तरण का यह प्रयास परम्परा से नवीनता की ओर अग्रसर होते प्रसाद के असंदिग्ध काव्य विवेक का परिचायक है।

प्रसाद के पहले खड़ीबोली काव्य संग्रह 'काननकुसुम' में संकलित 'प्रथम प्रभात' में छायावादी काव्य प्रवृत्तियाँ सबसे पहले दिखाई दीं। पहले ब्रजभाषा में काव्य रचना करने वाले जयशंकर प्रसाद की फुटकल खड़ीबोली रचनाओं का यह पहला संग्रह था, अत: संग्रह की अधिकांश रचनाओं पर ब्रजभाषा का प्रभाव स्वाभाविक था, साथ ही पौराणिक और ऐतिहासिक कथानकों को आधार बनाकर

---

[26] 'द्विवेदी पत्रावली' पृष्ठ-113

लिखी गई आख्यानक कविताओं में द्विवेदीयुगीन काव्य-शैली को भी देखा जा सकता है। किंतु 1912 में प्रकाशित 'काननकुसुम' में संकलित 'प्रथमप्रभात' का विधान अपनी सघन अर्थयोजना के कारण द्विवेदीयुगीन काव्यशैली से अलग खड़ीबोली की नई काव्यक्षमता का संकेत देता है।

इसी प्रकार प्रसिद्ध छायावादी कवि निराला की 'जुहीकीकली' 1916 में लिखी गई। (उसका प्रकाशन 'मतवाला' में 1923 ई0 में होता है।) यद्यपि निराला में प्रसाद और पंत की अपेक्षा लाक्षणिकता कम मिलती है किंतु भावगत आधार पर द्विवेदीयुगीन मूल्यवादिता के विरूद्ध प्रणय का उन्मुक्त चित्र और व्याकरणिक अनुशासन के विपरीत 'मुक्तछंद' का नूतन शिल्प प्रयोग- दोनों ही दृष्टियों से अपने समय का अतिक्रमण करने वाली निराला की यह पहली ही रचना उनके .विद्रोही व्यक्तित्व का प्रतिनिधित्व करती है और छायावाद की आरम्भिक रचना होते हुए भी छायावाद की किसी भी प्रौढ़ कविता के समकक्ष रखी जा सकती है।

छायावाद की त्रयी में सुमित्रानन्दन पंत की आरम्भिक रचनाएँ 'पल्लव' और 'वीणा' में संकलित हुई। 'पल्लव' का प्रकाशन सन् 1926 में और 'वीणा' का प्रकाशन सन् 1927 में हुआ। 1918 और 1919 में लिखी गई क्रमशः 'मोह' और 'प्रथम रश्मि' शीर्षक उनकी कविताओं में छायावादी रहस्यवाद का आभास मिलने लगता है। 'पल्लव' की महत्वपूर्ण ऐतिहासिक भूमिका में पंत लिखते हैं,'उसके शब्द सस्वर होने चाहिये, जो बोलते हों। ....जो अपने भाव को अपनी ही ध्वनि में आँखों के सामने चित्रित कर सकें। ....भाव और भाषा का सामंजस्य, उनका स्वरैक्य ही चित्रराग है।'[27] स्पष्ट ही कविवर पंत का यह कथन द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मकता से अलग काव्यभाषा की चित्रात्मकता पर बल देता है। ज्ञातव्य है

कि इस महत्वपूर्ण भूमिका में उन्होंने युगानुकूल भावों की अभिव्यक्ति के लिये खड़ीबोली का समर्थन जोरदार शब्दों में किया था।

प्रसाद का, और छायावाद का, महत्वपूर्ण संग्रह 'झरना' सन् 1918 में प्रकाशित हुआ। संग्रह रूप में छायावाद की प्रवृत्तियाँ सबसे पहले 'झरना' में ही दिखाई देती है। 'झरना' का समर्पण यदि एक ओर प्रेमास्पद और परमतत्व के प्रति कवि की अद्वैत अनुभूति को नये ढंग की अभिव्यक्ति देता है, तो दूसरी ओर उसमें संकलित 'परिचय', 'झरना', 'स्वभाव', आदि अनेक कविताएँ छायावाद का आभास देती हैं। भावगत आधार पर छायावादी रहस्यवाद को 'झरना' की प्राय: सभी कविताओं में देखा जा सकता है।

इस प्रकार आधुनिक काव्य में, काव्यभाषा के रूप में खड़ीबोली का जो मानचित्र उभरता है, उस पर भारतेन्दु के बाद उसका काव्य प्रवाह गतिमान होता दिखाई देता है। महावीर प्रसाद द्विवेदी का आगमन खड़ीबोली की इस आधुनिक काव्यधारा को सुनिश्चित दिशा देता है। श्रीधरपाठक से लेकर अयोध्यासिंह उपाध्याय, मैथिलीशरण गुप्त और राम नरेश त्रिपाठी जैसे प्रतिष्ठित कवि खड़ीबोली को सुदृढ़ आधारभूमि प्रदान करते हैं और प्रबन्ध-मुक्तक, गीतिकाव्य-कथाकाव्य आदि विविध काव्यरूपों का विकास उसकी काव्य-क्षमता को प्रमाणित करता है। लेकिन इतना सब होते हुए भी यह कहा जा सकता है कि खड़ीबोली का यह समय उसके परिष्कार और परिमार्जन का था। व्यवस्थापक के रूप में आचार्य द्विवेदी ने खड़ीबोली को जो संस्कार दिया वह गद्य के क्षेत्र में तो सही था किंतु कविता में शब्दों और वाक्यों की इस व्यवस्था ने द्विवेदीयुगीन काव्यभाषा को इतिवृत्तात्मक बनाया। भाषा की 'अस्थिरता' के समय में उसे व्याकरण की व्यवस्था देना यद्यपि काव्यभाषा के रूप निर्माण की पहली शर्त थी किंतु इस प्रयास में भावों की स्वच्छन्द अभिव्यक्ति का

अवकाश कम रह गया। श्रीधर पाठक में स्वच्छन्द अभिव्यक्ति का जो रंग दिखाई दिया था, वह आगे साहित्यिक अनुशासन के दबाव में फीका पड़ता गया, अतः द्विवेदीयुग के अन्त तक इस अनुशासन से मुक्ति की आकाँक्षा के संकेत भी मिलने लगते हैं। एक ओर द्विवेदीयुग के कवियों में मैथिलीशरण गुप्त और मुकुटधर पाण्डेय में छायावाद के पूर्वाभास को देखा जा सकता है तो दूसरी ओर प्रसाद पंत और निराला में अभिव्यंजना की नूतन पद्धति के संकेत मिलने लगे थे और अन्ततः यह कहा जा सकता है कि द्विवेदीयुग के पूर्वार्द्ध में परिष्कृत और परिमार्जित होती खड़ीबोली द्विवेदी युग के उत्तरार्द्ध तक अभिव्यंजना की नूतन आकाँक्षा के साथ संवर्द्धित होने लगी थी।

अध्याय—3

आधुनिक खड़ीबोली काव्यभाषा और छायावाद

आधुनिक खड़ीबोली काव्यभाषा और छायावाद

छायावादी काव्य को लेकर उठे अनेक विभ्रमों और मत मतान्तरों के बावजूद हिन्दी का कोई भी संवदेनशील अध्येता इस तथ्य को नकार नहीं सकता कि 'छायावाद' रचनात्मक स्तर पर खड़ीबोली के संस्कार का काल था। द्विवेदीयुग में खड़ीबोली को व्याकरण का अनुशासन मिला और छायावाद में उसे रचनात्मक संस्कार। काव्यभाषा के रूप में 'छायावाद' में खड़ीबोली की रचनात्मक, प्रौढ़ता का सबसे प्रमुख और प्रभावी तत्व उसकी बिम्बधर्मिता है। विडम्बना यह है कि भावावेश की आकुल व्यञ्जना, लाक्षणिक वैचित्र्य, मूर्त प्रत्यक्षीकरण, भाषा की वक्रता, विरोध चमत्कार और कोमल पदविन्यास आदि तत्वों को छायावादी काव्यशैली की विशेषता के रूप में स्वीकारते हुए हिन्दी के सबसे सशक्त और समर्थ आलोचक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल चित्रात्मकता और बिम्बधर्मिता को जो छायावादी काव्यभाषा का सबसे प्रभावी तत्व है, उसे, योरोपीय 'प्रतीकवाद' (सिंबालिज्म) या 'चित्रभाषावाद' की संज्ञा देकर पाश्चात्य कलावाद की यथावत् अनुकृति के रूप में स्वीकार करते हैं। अपने विवेचन में जहाँ वे छायावाद के आरम्भ का संकेत श्री मैथिलीशरण गुप्त और मुकुटधर पाण्डेय में मानते हैं वहाँ वे छायावाद को अधिक मौलिक और रचनात्मक मानते हैं और उनके काव्य में मिलने वाले सुन्दर रहस्यात्मक संकेतो के प्रति भी उनका स्वर प्रायः प्रंशसात्मक रहा है। शेष आरम्भिक छायावादी काव्य में मिलने वाले रहस्यवाद को प्रेमकाव्य का पर्याय मानकर वे उसी में छायावाद की पूर्णता मानते हैं- "रीतिकाल की श्रृंगारी कविता की भरमार की तो इतनी निंदा की गई पर वही श्रृंगारी कविता—कभी रहस्य का पर्दा डालकर, कभी खुले मैदान—अपनी कुछ अदा बदलकर फिर प्रायः सारा काव्यक्षेत्र छेंककर चल रही

है।''[1] 'कामायनी', 'राम की शक्ति पूजा' और 'तुलसीदास' आदि रचनाओं का उल्लेख करते हुए आरम्भिक छायावाद के अन्तर्गत अर्थभूमि के संकोच की शिकायत उन्हें प्रायः रही है। लेकिन इतना होते हुए भी वह 'छायावाद' को द्विवेदीयुगीन कविता के गद्यवत्, रूखे, इतिवृत्तात्मक और अधिकतर वाह्यार्थनिरूपक स्वरूप की प्रतिक्रिया मानते हैं और इस प्रकार आरम्भिक छायावाद की पहचान वह काव्यभाषिक स्तर पर करते हैं, "अतः इस तृतीय उत्थान में जो प्रतिवर्तन हुआ और पीछे 'छायावाद' कहलाया वह उसी द्वितीय उत्थान की कविता के विरूद्ध कहा जा सकता है। उसका प्रधान लक्ष्य काव्यशैली की ओर था, वस्तुविधान की ओर नहीं। अर्थभूमि या वस्तुभूमि का तो उसके भीतर बहुत संकोच हो गया। समन्वित विशाल भावनाओं को लेकर चलने की ओर ध्यान न रहा।''[2]

छायावाद के संदर्भ में शुक्लजी के विवेचन से हटकर आलोच्य युग के पहले सशक्त कवि जयशंकर प्रसाद का मत उद्धृत करना भी प्रासंगिक हो जाता है। आधुनिक काल की दो प्रधान मूलभूत प्रवृत्तियों-यथार्थवाद और छायावाद का सूक्ष्म विश्लेषण प्रसाद ने अपने निबन्ध 'यथार्थवाद और छायावाद' में किया है। निबंध के आरम्भ में यथार्थवाद के सम्बन्ध में एक लम्बे विवेचन के बाद वे यथार्थवाद का मूलभाव वेदना को मानते हैं, और वेदना के आधार पर ही हिन्दी में स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति को वे 'छायावाद' की संज्ञा देते हैं अर्थात् वेदना की दो अलग-अलग प्रणालियाँ प्रसाद के अनुसार हिन्दी में 'यथार्थवाद' और 'छायावाद' का रूप लेती हैं। यहाँ स्पष्ट ही कवि-आलोचक छायावाद के विशिष्ट भाषिक विन्यास को रेखांकित करता है। उनके अनुसार छायावाद के अन्तर्गत किसी पौराणिक युग की घटना अथवा देश विदेश की सुन्दरी के वाह्य वर्णन से भिन्न आंतरिक भावों को प्रधानता

---

[1] 'हिन्दी साहित्य का इतिहास'- पृ0 444; रामचन्द्र शुक्ल

[2] 'हिन्दी साहित्य का इतिहास'- पृ0 439; रामचन्द्र शुक्ल

दी जाती है। इन सूक्ष्म आभ्यंतर भावों की अभिव्यक्ति के लिये जिस नवीन शैली और नये वाक्यविन्यास का प्रयोग हुआ, उस नये विधान के संदर्भ में प्रसाद लिखते हैं, ''आभ्यंतर सूक्ष्म भावों की प्रेरणा वाह्य स्थूल आकार में भी कुछ विचित्रता उत्पन्न करती है। सूक्ष्म आभ्यंतर भावों के व्यवहार में प्रचलित पदयोजना असफल रही। उनके लिये नवीन शैली, नया वाक्य विन्यास आवश्यक था। हिन्दी में नवीन शब्दों की भंगिमा स्पृहणीय आभ्यंतर वर्णन के लिये प्रयुक्त होने लगी। शब्द विन्यास में ऐसा पानी चढ़ा कि उसमें एक तड़प उत्पन्न करके सूक्ष्म अभिव्यक्ति का प्रयास किया गया।''[3] प्रसाद का उपर्युक्त वक्तव्य स्पष्ट ही अभिव्यक्ति की नई भंगिमा को संकेतित करता है किन्तु प्रसाद की दृष्टि कवि होने के कारण भाव और भाषा को विलग नहीं करती जबकि आलोचक के रूप में आचार्य शुक्ल की दृष्टि विश्लेषणात्मक अधिक हो उठती है। भाव और भाषा के स्तर पर 'छायावाद' का पृथक-पृथक विवेचन उनकी इस विश्लेषणपरक दृष्टि का ही संकेत है। यों आचार्य शुक्ल द्वारा छायावाद को 'वाह्यार्थनिरूपक स्वरूप की प्रतिक्रिया' मानना और प्रसाद द्वारा उक्त युग में कवि-कर्म को 'वाह्य उपाधि से हटकर आंतर हेतु' की ओर प्रेरित मानना कवि और आलोचक के विचारों में साम्य उपस्थित करता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि रीतिकालीन रूढ़ियों और बन्धनों से अलग जिस सामाजिक चेतना के साथ भारतेन्दुयुग में आधुनिक काव्यधारा विकसित हुई थी और द्विवेदीयुग में उस सामाजिकता के निर्वाह का जो आग्रह दिखाई दिया था, छायावाद पुनः उस आग्रह से भिन्न स्वच्छन्द वैयक्तिक अभिव्यक्ति का ही परिणाम था, कवि-कर्म जहाँ प्रसाद के शब्दों में वाह्य उपाधि से हटकर आंतरहेतु की ओर प्रेरित

---

[3] 'यथार्थवाद और छायावाद', 'प्रसादग्रंथावली' खण्ड-4, पृ0 525, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद

हुआ और जिसकी अभिव्यक्ति शुक्ल जी के शब्दों में द्विवेदीयुग के गद्यवत् रूखे और इतिवृत्तात्मक स्वरूप में सम्भव नहीं थी।

द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मकता के विरूद्ध 'छायावाद' के रूप में हुई प्रतिक्रिया अनायास नही थी।यह परम्परित रूप में विकसित होती हुई बंगला और अंग्रेजी काव्य के प्रभाव से निखरती है।आधुनिक खड़ीबोली काव्य के पुनरावलोकन से स्पष्ट होगा कि गद्य के क्षेत्र में सहज प्रतिष्ठित खड़ीबोली को सबसे पहले काव्यात्मक संस्कार देने वाले श्रीधर पाठक के काव्य में छायावाद की स्वच्छन्दता और छायावाद में मिलने वाले रहस्याभास के संकेत भी सबसे पहले मिलते हैं। भारतेन्दु युग और द्विवेदीयुग के संधिकाल में काव्यरचना करने वाले श्रीधर पाठक जहाँ भाषा ओर शिल्प के स्तर पर भारतेन्दु से अलग अपना स्वच्छन्द मार्ग निर्मित करते हैं, वहीं द्विवेदीयुग की व्याकरणिक रूढ़ियों में भी नहीं बँधते। लावनी की लय पर 'एकांतवासी योगी' और पुनः सधुक्कड़ी ढंग पर 'जगत सचाई सार' की रचना द्वारा स्वच्छन्द अभिव्यक्ति की जो प्रवृत्ति श्रीधर पाठक के काव्य में आरम्भ में दिखाई दी, वह आगे भी नये छंदविधान, नये पदविन्यास और नये वाक्यविन्यास को लेकर विकसित हुई। यद्यपि प्रचलित छंदों में खड़ीबोली को ढालने में वे सफल रहे हैं किन्तु छंदों और विषयों का वैविध्य उनके समस्त मौलिक और अनूदित खड़ीबोली काव्य में कवित्त और सवैया की कारा को तोड़कर स्वच्छन्द प्रवाह के रूप में गतिमान हुआ है। स्वच्छन्दता का यह आवेग उनके प्रकृति-चित्रण में भी दिखाई देता है,

> विजन वन-प्रांत था,
> प्रकृति-मुख शांत था,
> अटन का समय था
> रजनि का उदय था,

प्रसव के काल की लालिमा में ल्हिसा,
बाल शशि व्योम की ओर था आ रहा।
सद्य-उत्फुल्ल-अरविन्द-निभ नील सुविशाल
नभ-वक्ष पर जा रहा था चढ़ा;
दिव्य दिङ्नारि की गोद का लाल-सा।[4]

'सान्ध्य अटन' के अन्तर्गत प्रसव काल की लालिमा में लसे बाल शशि का यह गत्यात्मक चित्र कवि की मौलिक काव्यात्मक अभिव्यक्ति है जहाँ रीतिकालीन स्थूल उपमानों से अलग प्रकृति अपने नये रंग में दिखाई देती है। श्रृंगार करती प्रकृति का मनोरम चित्र कवि ने ब्रजभाषा में 'काशमीर सुषमा' के अन्तर्गत प्रस्तुत किया। उनके खड़ीबोली काव्य से एक उदाहरण प्रासंगिक होगा जहाँ स्वर्गीय बाला की वीणा की सुरीली गुञ्जार पर, उसके सुरताल पर, सारा ब्रह्माण्ड नाच रहा है,

कहीं पै स्वर्गीय कोई बाला,
सुमञ्जु वीणा बजा रही है!
सुरों के संगीत की सी कैसी,
सुरीली गुञ्जार आ रही है।
xx x x x x x
अलक्ष्य पर्दो से गत सुनाती
तरल तरानों से मन लुभाती
अनूठे अटपट स्वरों में स्वर्गिक,
सुधा की धारा बहा रही है।[5]

कहना न होगा ऐसे परोक्ष दिव्य संगीत के माध्यम से अज्ञात, अलौकिक, दिव्य सत्ता के प्रति जिज्ञासा की जो अनुभूति 'व्योमवीणा' के माध्यम से आरम्भिक खड़ीबोली काव्य में मुखरित हुई, वह आगे छायावाद में और भी व्यापकता के साथ स्पष्ट

---

[4] 'श्रीधरपाठक ग्रंथावली'-पृ0 504, सम्पादक डॉ0 पद्यधरपाठक।
[5] 'श्रीधरपाठक ग्रंथावली'-पृ0 305, सम्पादक डॉ0 पद्यधरपाठक।

हुई। इस सम्बन्ध सूत्र को स्पष्ट करते हुए महादेवी वर्मा लिखती है, ''कैसे छायावादी रचना की ओर अग्रसर हुई यह मैं नहीं कह सकती। हाँ कभी कभी मुझे लगता है कि मेरी भाषा को पं0 श्रीधर पाठक से संस्कार मिला। वे छायावाद के प्रवर्तक भी थे और नये छायावादी कवियों को प्रेरणा तथा प्रोत्साहन देने वाले भी।''[6]

छायावाद की स्वच्छन्द प्रवृत्ति श्रीधर पाठक के बाद रामनरेश त्रिपाठी के काव्य में दिखाई दी। द्विवेदीयुग में काव्य रचना करते हुए भी उनके तीनों खण्डकाव्य चूंकि छायावाद के ठीक पूर्व लिखे गये हैं, अतः छायावाद की कल्पना, भावुकता, सरसता इनमें सर्वत्र मिलती है। स्वयं कवि के शब्दों में 'पथिक मेरी दक्षिण यात्रा का स्मृतिचिह्न है और स्वप्न उत्तर यात्रा का।'[7] 'मिलन', 'पथिक' और 'स्वप्न' क्रमशः आनन्द-विजया, पथिक-पथिकप्रिया और वसन्त-सुमना के कल्पित आख्यान के माध्यम से स्वदेश प्रेम की कहानी है, जहाँ पात्रों के भावुक मन का चित्रण, प्रकृति के रम्य रूपों का सूक्ष्म निरीक्षण और अनेक स्थलों पर सृष्टि एवं जगत के सुन्दर रहस्यों मे रमता कवि मन छायावाद का पूर्वाभास देता है,

प्रातः काल समीर कहां से
उपवन में चुपचाप पहुंचकर
क्या संदेश सुना जाता है
घूम-घूम प्रत्येक द्वारा पर?
फूलों के आनन अचरज से
खुल पड़ते है जिसे श्रवण कर
थामे नहीं हँसी थमती है
मुँह मुँदते ही नहीं जन्म भर[8]

[6] श्रीधरपाठक ग्रंथावली'- सम्पादक डॉ0 पद्मधर पाठक।
[7] 'स्वप्न' (दूसरा संस्करण) भूमिका, पृ0-2, रामनरेश त्रिपाठी
[8] 'स्वप्न' (दूसरा संस्करण, हिन्दी मन्दिर प्रयाग) पृ0-21, रामनरेश त्रिपाठी

जीवन और जगत के सम्बन्ध में रहस्य और जिज्ञासा की यह सौन्दर्यानुभूति कवि के अन्तिम खंडकाव्य 'स्वप्न' के दूसरे सर्ग में सबसे अधिक मिलती है। छायावादी अमूर्त उपमानों का प्रयोग इनके काव्य में अनेक स्थलों पर दिखाई देता है,

उसी समय कमनीय एक स्वर्गीय किरन सी बामा।
कवि के स्वप्न-समान, विश्व के विस्मय सी अभिरामा
सिन्धु-गोद में लय से पहले तरंगिता सरिता सी
आकर चकित हुई तट पर प्रियतम दर्शन की प्यासी[9]

x x x x x x x x

तीर पहुँच कर देखी उसने
सलिल राशि गम्भीर।
सतत प्रवाहित पूर्व दिशा में
समय समान अधीर।।
ठीक दोपहर, व्योम मध्य रवि
प्रखर समुज्वल धूप।
सरित-मुकुर में देख रहे थे
दिननायक निज रूप।।[10]

कहना न होगा प्रथम उद्धरण में नारी के लिये 'स्वर्गीय किरन', 'कवि के स्वप्न' और 'विश्व के विस्मय' जैसे अमूर्त और सूक्ष्म उपमानों की योजना जहाँ छायावादी काव्य भंगिमा से युक्त है वहीं दूसरे के अन्तर्गत गम्भीर सलिल राशि का समय जैसे अमूर्त उपमान के समान प्रवाहित होना और सरिता के दर्पण मे सूर्य के आत्म विलोकन का चित्र मध्याह्न में बिखरी धूप के दृश्य को जिस संवेदनात्मक स्तर पर

[9] 'पथिक' (चौथा संस्करण) पृ0-2; रामनरेश त्रिपाठी।

[10] 'मिलन' (संशोधित पाँचवा संस्करण) पृ0 27 रामनरेश त्रिपाठी।

ग्राह्य बनाता है वह खड़ीबोली की उस चित्रात्मक क्षमता का संकेत है जिसका विकास आगे छायावाद में होता है।

इस प्रकार द्विवेदी युग में काव्य रचना करते हुए भी अपना स्वच्छन्द मार्ग जो रामनरेश त्रिपाठी ने निर्मित किया और जो पहले भी श्रीधर पाठक के काव्य में दिखाई दिया, वह आगे चलकर छायावाद के रूप में प्रतिफलित हुआ। किन्तु हम स्पष्ट देखते हैं कि छायावाद जहाँ स्वच्छन्दतावादी काव्यधारा का सहज विकास है, वहीं इसके संकेत अनुशासन की धारा में पूर्णतः अनुशासित मैथिलीशरण गुप्त के काव्य भी मिलने लगते हैं। आचार्य द्विवेदी के संरक्षण में काव्य रचना करने वाले मैथिलीशरण गुप्त का समस्त खड़ीबोली काव्य यद्यपि तद्‌युगीन काव्य प्रवृत्तियों और काव्य संस्कारों से युक्त है किन्तु उनकी बाद की कुछ रचनाओं (विशेषकर साकेत और यशोधरा) में मिलने वाली लाक्षणिकता और चित्रमयता को देखते हुए ही आचार्य शुक्ल ने इन्हे छायावाद के पुरस्कर्ताओं में विशेष महत्व देते हुए लिखा है, "खड़ी बोली की कविता जिस रूप में चल रही थी उससे संतुष्ट न रहकर द्वितीय उत्थान के समाप्त होने से कुछ पहले ही कई कवि खड़ीबोली काव्य को कल्पना का नया रूपरंग देने और उसे अधिक अंतर्भाव-व्यंजक बनाने में प्रवृत्त हुए जिनमें प्रधान थे सर्वश्री मैथिलीशरण गुप्त, मुकुटधर पाण्डेय और बदरीनाथ भट्ट।"[11] आचार्य शुक्ल ने खड़ीबोली काव्य में कल्पना के जिस नये रूपरंग का उल्लेख किया है, गुप्तजी के प्रगीत मुक्तकों में वह अधिक दिखाई देता है। उनके काव्यसंग्रह 'झंकार' से आचार्य शुक्ल द्वारा उद्धृत कुछ अंश द्रष्टव्य है,

> अच्छी आँख मिचौनी खेली!
> बार बार तुम छिपो और मैं खोजूँ तुम्हे अकेली।
> x x x x x x

---

[11] 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', पृ0-439, 440, रामचन्द्र शुक्ल

निकल रही है उर से आह
ताक रहे सब तेरी राह
चातक खड़ा चोंच खोले है, संपुट खोले सीप खड़ी।
मैं अपना घट लिये खड़ा हूँ, अपनी अपनी हमे पड़ी।[12]

द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मकता से भिन्न भाषा की इस लाक्षणिकता के संदर्भ में गुप्तजी की उपर्युक्त पंक्तियाँ विशेष महत्वपूर्ण हैं। 'आँख मिचौनी' के इस खेल में छायावादी रहस्यवाद की झंकार भी स्पष्ट है।

मैथिलीशरण गुप्त से अलग मुकुटधर पाण्डेय छायावाद पर अपनी आरम्भिक समीक्षा के कारण विशेष महत्वपूर्ण हैं। 'हिन्दी में छायावाद' शीर्षक अपनी ऐतिहासिक लेखमाला में वह लिखते हैं, "एक ओर कविता अपनी जन्म कुटीर से निकल कर बाहर पैर रखती है, दूसरी ओर उसे नियमों और रीतियों द्वारा चारों ओर से घेर रखने का यत्न आरम्भ हो जाता है। .... कविता के लिये एक रीति अथवा नियम आवश्यक है; पर यह नहीं कि वह साहित्य में हिमाचल सा अचल बना रहे, उसमें कोई परिवर्तन किया जा सके और न कोई नवीनता ही लायी जा सके।[13]" काव्य-स्वातन्त्र्य के इस महत्व को स्वीकार करने वाले मुकुटधर पाण्डेय के काव्य मे स्वच्छन्द अभिव्यक्ति का रंग मिलना स्वाभाविक था। द्विवेदीयुगीन उपदेशात्मक और विषय प्रधान विषयवस्तु से अलग अन्तर्मन की भावुकता और सरसता यद्यपि इनके काव्य में प्रसाद और पंत जैसी नहीं मिलती किन्तु 'पंथी', 'प्रेमबन्धन', 'आँसू', 'उद्गार', 'ओस की निर्वाण प्राप्ति', 'कृतज्ञ हृदय' और 'कुररी के प्रति,' जैसी अनेक कविताओं में छायावाद के अंकुर स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगते हैं। 'विश्वबोध', 'नमक की डली', 'रूप का जादू', 'क्षमा

---

[12] 'हिन्दी साहित्य का इतिहास'-पृ0 419, रामचन्द्र शुक्ल

[13] 'हिन्दी में छायावाद', 1. काव्य स्वातत्र्य, 'श्री शारदा' पत्रिका 1920, मुकुटधर पांडे

प्रार्थना', 'मर्दित मान' ओर 'अधीरा आँखे' जैसी रचनाओं की अव्यक्त सत्ता के प्रति जिज्ञासा और कौतूहल का भाव भी जाग्रत हुआ है,

अस्ताचल पर हँस कर थोड़ा
दिनकर ने अपना मुख मोड़ा
विहगों ने भी मुझ पर छोड़ा
व्यंग्य वचन का बाण।
विधु ने नभ से किया इशारा
अधोदृष्टि करके ध्रुव सारा।
तेरा विश्व-रूप-रस सारा
करता था नित पान।[14]

अभिव्यक्ति और कल्पना का, नया रंग निम्न पंक्तियों में भी द्रष्टव्य है,

मेरे जीवन की लघु तरणी,
आँखों के पानी में तर जा।
मेरे उर का छिपा खजाना,
अंहकार का भाव पुराना।
बना आज तू मुझे दिवाना,
तप्त स्वेद बूंदों में ढर जा।[15]

यहाँ 'जीवन की लघु तरणी' को आँखों के पानी में तर जाने का आमंत्रण देना और अहंकार के भाव का तप्त स्वेद बूँदों के रूप में ढर जाने का 'उद्‌गार' जितना सूक्ष्म और मौलिक है, उतना ही अर्थगर्भित 'पानी' शब्द का प्रयोग है। कहना न होगा शब्दों पर ऐसा पानी जो आगे चलकर छायावादी कवियों ने चढ़ाया, उसका स्पष्ट आभास द्विवेदी युग के उत्तरार्ध तक जिन कवियों में कवियों में दिखाई दिया, उनमें मुकुटधर पाण्डेय का स्थान सबसे ऊपर है।

---

[14] 'विश्व बोध'-सरस्वती, 1917, भाग-18, पृ0-326

[15] 'उद्‌गार'-सरस्वती 1918, भाग 19, खण्ड 1, पृ0-212

जयशंकर प्रसाद :

इस प्रकार छायावाद की स्वच्छन्दता और इसके रहस्याभास के संकेत बहुत पहले ही आधुनिक खड़ीबोली काव्य में मिलने लगते हैं, अतः भाव रूप में छायावाद को नये ढंग के उथले रहस्यवाद और भाषा के स्तर पर उसे बंगला और अंग्रेजी काव्य की नकल मानना अनुचित ही नहीं असंगत भी है। प्रसाद छायावाद के पहले कवि हैं, और उनके काव्य में खड़ीबोली के स्थूल इतिवृत्तात्मक स्वरूप से उसके सूक्ष्म रचनात्मक विकास की स्थितियाँ आकस्मिक नहीं क्रमिक रूप में विकसित होती हैं। प्रसाद की काव्य यात्रा का आरम्भ उस समय होता है, जब ब्रजभाषा और खड़ीबोली में काव्य रचना की धाराएँ लगभग समान रूप से प्रवाहित हो रहीं थीं। भाषिक द्वैत की इस संक्रान्ति रेखा पर खड़े प्रसाद को अपना मार्ग सुनिश्चित करना था। आरम्भ में ब्रजभाषा, फिर ब्रज का संस्कार लिये खड़ीबोली और फिर सीधी इतिवृत्तात्मक खड़ीबोली-विकास की इस प्रक्रिया से गुजरने के बाद ही कवि छायावाद की अपनी काव्यभाषा आविष्कृत करता है। भाषा निर्माण का यह आन्तरिक संघर्ष अपने सहयोगी कवियों के बीच प्रसाद में सबसे ज्यादा दिखाई देता है। इस आन्तरिक संघर्ष में जहाँ एक ओर परम्पराएँ उनका पीछा करती है, वहीं वह अपने आरम्भिक संकलन 'चित्राधार' के पराग खंड में ही छायावादी काव्य संवेदना के निकट दिखाई देते हैं। 'कल्पनासुख', 'मानस', 'प्रभातकुसुम', 'संध्यातारा', 'नीरवप्रेम', 'विस्मृतप्रेम' जैसे विषयों का संयोजन छायावाद का पूर्वाभास देता है। चार पाँच कविताओं को छोड़कर 'चित्राधार' के इस खंड की अधिकांश कविताएँ प्रकृति विषयक हैं जहाँ कवित्त, सवैया और समस्यापूर्ति की शैली से अलग कवि प्रकृति को चेतन सत्ता के रूप में सम्बोधित करता हुआ दिखाई देता है,

दिवाकर को कर संगम पाइ।

अहो तुम, फूल फिरो इतराई।।

अरे नहिं जानत फूल अजान।

यहै करिहैं तव मर्दन मान।।[16]

x x x x x x x x

संन्ध्या के गगन महँ सुन्दर वरन।

को हौ झलकत तुम अमल रतन ।।

तारा तुम तारा अति सुन्दर लखात।

तुम्हें देखिबे को नहिं आनँद समात।।[17]

'शारदीय शोभा' में प्रभात रजनी और चन्द्र कवि को सुन्दर लगाते हैं तो 'रसाल मञ्जरी' के अन्तर्गत 'ॠतुनायक' का दान उसे मुग्ध करता है। 'उद्यानलता' में लता से वार्तालाप करता हुआ कवि प्रश्न करता है,

सुमनावलि सों लदि मोद-भरी,

पतियां सुखलात नवीन हरी।।

भरि अंक अहौ तुम भेंटति को,

तरू के हिय दाह समेटति को।।

टक लाइ सबै दृग फूलन ते,

मकरंद-भरे अंसुवा-कन ते।।

तुम देखति हौ केहि आस-भरी।

नहिं बोलति हौ तरू पास खरी।।[18]

कौतूहल और जिज्ञासा का भाव 'चित्राधार' की इन प्रकृति विषयक कविताओं को परम्परागत प्रकृति चित्रण से अलग वैशिष्ट्य प्रदान करता है। यही वह तत्व है जिसके आधार पर आचार्य नंद दुलारे बाजपेयी ने कवि के 'उच्चतर रहस्य काव्य'

---

[16] 'प्रसाद ग्रंथावली'- खण्ड-1, पृ0 50, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद

[17] 'प्रसाद ग्रंथावली'- खण्ड-1, पृ0 59, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद

[18] 'प्रसाद ग्रंथावली'- खण्ड-1, पृ0 49, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद

का स्त्रोत इन कविताओं में देखा है जहाँ द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मक वर्णन शैली होते हुए भी कवि का हृदय पक्ष ही प्रधान रहा है।

'चित्राधार' की इन ब्रजभाषा कविताओं के बाद खड़ीबोली में प्रसाद की फुटकर कविताओं का संग्रह 'कानन कुसुम' और खंडकाव्य 'प्रेमपथिक' क्रमशः 1912 और 1914 में प्रकाशित हुआ। ब्रजभाषा से खड़ीबोली में रूपांतरित 'प्रेमपथिक' जहाँ अपने अतुकांत रूप में कवि की स्वच्छन्द अभिव्यक्ति का परिचय देता है वहीं अनेक स्थलों पर द्विवेदीयुगीन वर्णनात्मकता का प्रभाव भी देखा जा सकता है,

एक दिवस प्राची में जब अंधियारी बढ़ती जाती थी
सन्ध्या अपना फैलाती थी प्रभाव प्रकृति बिहारों में
मैं पहुँचा गिरितटी समीप, जहाँ निर्मल सरिता बहती थी[19]
x x x x x x x x
पति मेरे श्मशान-वासी होकर धरणी से चले गये
कुछ भी शेष नहीं था धरणी में इस नीरस जीवन में
केवल दुःख निराशामय था, अंधकारमय अंतर था[20]

'कानन कुसुम' की अधिकांश कविताएँ भी भाषा के इस रूप का अपवाद नहीं है किंतु कवि के इस पहले ही खड़ीबोली संकलन में संकलित 'प्रथमप्रभात' शीर्षक कविता अपने नूतन रचना विधान के कारण विशेष महत्वपूर्ण है जहाँ अर्थ के कई स्तरों को एक ही प्रकृति बिम्ब के माध्यम से उकेरा गया है। दुहरे तिहरे अर्थो की संश्लिष्ट अनुभूति की अभिव्यक्ति का यह नूतन रचना विधान प्रसाद के संग्रह 'झरना' में अधिक स्पष्ट होता है ओर आगे चलकर 'लहर' में और भी गहराता है। 'आँसू' में छायावादी काव्यभाषा का प्रौढ़ रूप दिखाई देता है। इस प्रकार

---

[19] 'प्रसाद ग्रंथावली'- खण्ड-1, पृ0 95, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद
[20] 'प्रसाद ग्रंथावली'- खण्ड-1, पृ0 99, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद

'चित्राधार' से 'आँसू' और आगे 'कामायनी' तक खड़ीबोली काव्य और आधुनिक काव्यभाषा की सभी भंगिमाएँ प्रसाद के काव्य में देखने को मिल जाती हैं। अन्ततः आधुनिक खड़ीबोली काव्यभाषा के विकास क्रम में छायावाद और छायावाद के विकास में प्रसाद की सही सही स्थिति को रमेशचन्द्र शाह के शब्दों में यों समझा जा सकता है, ''छायावाद हमारी काव्य संवेदना के इतिहास में एक महत्वपूर्ण मोड़ था .... रूढ़ि और स्थूल इतिवृत्त के विरूद्व सर्जनात्मक संघर्ष इसकी मूल प्रतिज्ञा थी। .... इस मोड़ को लाने में जयशंकर प्रसाद की प्रतिभा ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। उन्होंने एक ओर द्विवेदीयुग में अर्जित गद्यमूल्यों के अनुशासन को पूरी तरह अपनी काव्यभाषा में पचाया ओर उसमें वह—मात्रा में स्वल्प, किंतु गुण में बृहत्-खमीर पैदा किया जिसने भाषा में एक नई आन्तरिकता, आत्मीयता और काव्यमुक्ति सम्भव बनाई। प्रसाद ने परम्परागत छन्दों के बँधाव में कविता को नयी हरकतें सिखायी और भाव और आवेग को अपने अनुरूप लय गति में ढालने की कोशिश की।''[21]

सुमित्रानन्दन पंत :

छायावाद को प्रकृति काव्य का नाम रूप देने वाले कवियों में सुमित्रानन्दन पंत प्रमुख हैं। 'परिवर्तन' जैसी रचनाओं को अपवाद स्वरूप छोड़कर आरम्भिक रचनाओं में कवि की दृष्टि और कल्पना प्रकृति के रम्य और सुकुमार रूपों के चित्रण में ही अधिक रमी है। 1918 और 1919 में लिखी गई 'मोह' और 'प्रथमरश्मि' शीर्षक कविताएँ छायावाद की आरम्भिक रचनाओं में हैं। 'पल्लव' (1926), 'वीणा' (1927) और 'गुञ्जन' (1932) के अन्तर्गत कवि की अन्य छायावादी रचनाएँ संकलित हैं। अपने आरम्भिक छायावादी संग्रह 'पल्लव' की भूमिका

---

[21] 'छायावाद की प्रासंगिकता'-पृ0-89, रमेशचन्द्र शाह

में पंत लिखते हैं, ''मैंने अपनी रचनाओं में, कारणवश, जहाँ कहीं व्याकरण की लोहे की कड़ियाँ तोड़ी हैं, यहाँ कुछ उसके विषय में भी लिख देना उचित समझता हूँ। मुझे अर्थ के अनुसार ही शब्दों को स्त्रीलिंग पुँल्लिंग मानना अधिक उपयुक्त लगता है, जो शब्द केवल अकारान्त-इकारान्त के अनुसार ही पुँल्लिंग अथवा स्त्री-लिंग हो गये हैं, और जिनमें लिंग का अर्थ के साथ सामञ्जस्य नहीं मिलता, उन शब्दों का ठीक-ठीक चित्र ही आँखों के सामने नहीं उतरता, और कविता में उनका प्रयोग करते समय कल्पना कुण्ठित-सी हो जाती है।''[22] कविता में शब्द की अर्थगत चित्रात्मकता अथवा कल्पना की उन्मुक्तता के लिये अपने आरम्भिक संकलन में कवि का यह कथन उसकी स्वच्छन्द साहसिक अभिव्यक्ति की उद्घोषणा है। छायावादी काव्य भाषा के अन्तर्गत लिंग परिवर्तन के अतिरिक्त शब्द गढ़ने की या उसके मनमाने प्रयोग की यह प्रवृत्ति पंत के काव्य में अन्य रूपों में भी मिलती है। स्वयं कवि के शब्दों में अन्वेषण के स्थान पर अन्वेषन, भौंहों का भोंहों ओर मरूदाकाश के स्थान पर मरूताकाश ऐसे ही प्रयोग है,

आह भीषण-उद्गार!-

नित्य का यह अनित्य-नर्तन
विवर्तन जग, जग व्यावर्तन,
अचिर में चिर का अन्वेषन
विश्व का तत्वपूर्ण-दर्शन[23]

x x x x x x

करूण-भोंहों में था आकाश,
हास में शैशव का संसार,
तुम्हारी आँखों में कर वास
प्रेम ने पाया था आकार[24]

x x x x x

---

[22] 'पल्लव'- विज्ञापन, (प्रथमवृत्ति 1926, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग) श्री सुमित्रानन्दन पंत।
[23] 'पल्लव'- (परिवर्तन) पृ0-123 श्री सुमित्रानन्दन पंत।
[24] 'पल्लव'- (आँसू) पृ0-26 श्री सुमित्रानन्दन पंत।

आज पल्लवित हुई है डाल,
झुकेगा कल गुञ्जित-मधुमास,
मुग्ध होंगे मधु से मधु-बाल,
सुरभि से अस्थिर मरुताकाश[25]

कहना न होगा ऐसे प्रयोग कहीं तो सहज और स्वाभाविक हैं किन्तु अनेक स्थलों पर इनका प्रयोग भाषा का और कल्पना का क्रीड़ा विलास ही कहा जायगा। उदाहरण के लिये नई-नई कोपलों के लिये 'पल्लव-बाल' का प्रयोग जहाँ सहज और स्वाभाविक है, वहीं आँसू को 'नयनों के बाल' कहना अथवा 'उमड़ा हिम जल सस्मित-भोर' और 'पल्लवों का यह सजल प्रभात' के स्थान पर क्रमशः 'उमड़ी हिम-जल-सस्मित-भोर' ओर 'पल्लवों की यह सजल प्रभात' जैसे प्रयोग शब्द की अर्थगत चित्रात्मकता के नाम पर अंसगत ही प्रतीत होते हैं। यह अलग बात है कि पल्लव विज्ञापन के अन्तर्गत स्वयं कवि ने इन प्रयोगों के लिये अपने ढंग से तर्क दिये हैं और अपनी इस 'इडियोसिनक्रेसी' के लिये वह क्षमाप्रार्थी भी रहा है।

छायावादी कवियों में पंत का काव्य निरन्तर गतिशील रहा है। 'युगांत', 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' में जहाँ कवि का प्रगतिवादी स्वर मुखरित हुआ है, वहीं 'कला और बूढ़ा चाँद' की कविताएँ प्रयोगवाद और नई कविता के अधिक निकट हैं। गाँधी, मार्क्स ओर अरविन्द जैसे विचारकों से प्रभावित होने के कारण अनेक कविताओं में दार्शनिकता का रंग भी मिलता है। 'धनुएँ' शीर्षक कविता में 'धारोष्णप्रकाश', 'अनामय' 'जब' और 'सत्य का बोहित्थ' जैसी शब्दावली जहाँ कविता को दार्शनिक आधार देती है, वहीं ग्राम्या में 'निराओं', 'लावाओं', 'गोड़ो' जैसी क्रियाएँ और 'छाजन', 'मड़ई', 'गंजी', 'अरहर' जैसे संज्ञा शब्द ग्रामीण परिवेश

---

[25] 'पल्लव'- (पल्लव) पृ0 3, श्री सुमित्रानन्दन पंत।

के अनुकूल हैं। लेकिन भाषा की इस परिवर्तनशीलता के बावजूद छायावादी कवियों में अपने भाषा वैविध्य के लिये प्रसिद्ध निराला के विपरीत पंत कतिपय अपवादों को छोड़कर आद्यन्त शब्दावली बिम्बों और प्रतीको की योजना में छायावादी काव्यभाषा के अधिक निकट रहे हैं- कोमलता और सुकुमारता का संस्कार ही जहाँ अधिक है और इस रूप में यह कहना असंगत नहीं होगा कि आधुनिक खड़ीबोली काव्यभाषा को छायावाद की इस कोमलता और सुकुमारता का संस्कार देने वाले कवियों में पंत की भूमिका सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' :

छायावादी कवियों में पंत ने यदि खड़ीबोली को कोमलता और सुकुमारता का संस्कार दिया तो सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' न केवल छायावाद के बल्कि आधुनिक युग के उन कवियों में शीर्षस्थ हैं जिन्होनें काव्यभाषा के भिन्न-भिन्न रूपों से खड़ीबोली काव्य को समृद्ध किया। भाषा का यह वैविध्य निराला की पहली ही रचना 'जुही की कली' से लेकर मरणोपरांत प्रकाशित उनकी अन्तिम रचना 'सान्ध्य काकली' में सर्वत्र दिखाई देता है। भाव-संवदेना, शिल्प और भषिक-संरचना इन सभी स्तरों पर निराला का सर्जनशील व्यक्तित्व अपनी अनेकरूपता में एक साथ गतिशील रहा है। यद्यपि निराला में प्रसाद और पंत जैसी लाक्षणिकता नहीं मिलती किंतु 1916 में लिखी गई कवि की पहली ही रचना 'जुही की कली' द्विवेदीयुगीन व्याकरणिक अनुशासन के विपरीत खड़ीबोली में मुक्त छंद के प्रयोग की सम्भावनाओं को नया विश्वास देती है। कवि के पहले छायावादी काव्य संग्रह 'परिमल' में संकलित 'जुही की कली' जहाँ द्विवेदीयुगीन आदर्शवादिता के विपरीत प्रणय का उन्मुक्त चित्र प्रस्तुत करती है, वहीं 'भिक्षुक और 'विधवा' जैसी कविताएँ अपनी यथार्थता में आरम्भिक छायावाद की कल्पनाशीलता और भावुकता का

अतिक्रमण करती हैं। 'अधिवास' और 'पंचवटी प्रसंग' जैसी दर्शन प्रधान रचनाएँ, 'जागो फिर एक बार' जैसे जागरणगीत और प्रबोधन शैली में लिखी गई 'शिवाजी का पत्र' आदि कविताएँ विविध मनोभूमियों को आधार बनाकर रची गई है और छायावादके विकासकाल में ही भाषा और संवदेना दोनो ही स्तरों पर निराला के रचनात्मक कवि व्यक्तित्व की विविधता का परिचय देती हैं।

निराला के गतिशील और सर्जनात्मक व्यक्तितत्व को यद्यपि समय की सीमा में नही बाँधा जा सकता है किन्तु 'परिमल' के अतिरिक्त कवि की अन्य छायावादी रचनाओं में 'अनामिका', 'गीतिका' और 'तुलसीदास' की गणना की जा सकती है। 'अबे, सुनबे, गुलाब' की ठेठ व्यंगात्मक भंगिमा जो 1942 में सबसे पहले 'कुकुरमुत्ता' में दिखाई दी, उससे पूर्व निराला का प्रसिद्ध छायावादी संग्रह 'गीतिका' 1936 में प्रकाशित हुआ जिसकी भूमिका में निराला लिखते हैं, "मैं खड़ीबोली में जिस उच्चारण संगीत के भीतर से जीवन की प्रतिष्ठा का स्वप्न देखता आया हूँ, वह ब्रजभाषा में नहीं।"[26] कहना न होगा कि 'गीतिका' के इन गीतों द्वारा कवि ने अपने इस स्वप्न को साकार करने का प्रयास किया है। संगीतात्मकता को केन्द्र में रखकर रचे गये 'गीतिका' के गीत जहाँ खड़ीबोली में सांगीतिक सम्भावनाओं के द्वार खोलते हैं, वहीं इनके अन्तर्गत निराला ने काव्य तत्व को भी सुरक्षित रखा है। जैसा कि वह स्वयं लिखते हैं, "प्राचीन गवैयों की शब्दावली, संगीत की संगति की रक्षा के लिये, किसी तरह जोड़ दी जाती थी, इसलिये उसमें काव्य का एकांत अभाव रहता था।.................... मैंने अपनी शब्दावली को काव्य के स्वर से भी

[26] 'गीतिका' भूमिका; पृ0-18; निराला

मुखर करने की कोशिश की है।''[27] गीतिका के गीतों के सम्बन्ध में निराला की यह स्वीकारोक्ति उनकी प्रकृति को स्वत: स्पष्ट कर देती है।

निराला काव्य के अन्तर्गत तत्सम शब्दावली पर आधारित भाषिक सृजनात्मकता का सर्वाधिक रचनात्मक रूप 'राम की शक्ति पूजा' (अनामिका) और 'तुलसीदास' में उद्घाटित हुआ। 'शक्ति की मौलिक कल्पना'' का संदेश कवि ने 'राम की शक्ति पूजा' में दिया और देश की सांस्कृतिक अस्मिता का प्रश्न 'तुलसीदास' में उठाया। एक उदाहरण द्रष्टव्य है, संस्कृत की संस्कारनिष्ठ सामासिकता जहाँ खड़ीबोली में पूरी गरिमा और वैभव के साथ प्रकट हुई है,

तीक्ष्ण-शर-विधृत-क्षिप्र कर, वेग-प्रखर,

शतशेलसम्वरणशील, नील-नभ-गर्जित-स्वर,

प्रति-पल-परिवर्तित-व्यूह-भेद-कौशल समूह,

राक्षस-विरुद्ध-प्रत्यूह—क्रुद्ध-कपि-विषम-हूह,[28]

कहना न होगा कि हरिऔध और मैथिलीशरण गुप्त के समस्त प्रयोगों से नितान्त भिन्न रूप में संस्कृत की समस्त पदावली को यहाँ खड़ीबोली के अनुरूप ढाला गया है और जो अपनी ओजस्विता में अत्यन्त प्रभावशाली है।भाषिक आभिजात्य की यह रचनात्मकता 'तुलसीदास' में भी समान स्तर पर व्यक्त हुई है। 'अनामिका' में संकलित निराला की महत्वपूर्ण छायावादी रचना 'सरोजस्मृति' अपने दोहरे रचना विधान में इस दृष्टि से विशिष्ट है जहाँ यौवन की सुकुमार स्थितियों के अंकन में तत्सम शब्दावली की रचनात्मकता और सामाजिक जीवन की विसंगतियों के चित्रण

---

[27] 'गीतिका' भूमिका; पृ0-12; निराला

[28] 'अनामिका' (राम की शक्तिपूजा) पृ0-148, भारती भंडार, लीडरप्रेस, इलाहाबाद-सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला।

में ठेठ टकसाली भाषा का प्रयोग एक साथ हुआ है और जो शोकगीति के रूप मे खड़ीबोली में एक नई काव्य विधा की शुरूआत भी करती है।

इस प्रकार प्रसाद, पंत और निराला ने छायावाद की जिस त्रयी का निर्माण किया, उसका आधार वस्तुतः भाषा और शिल्प के स्तर पर विभिन्न अनेकरूपताओं के बावजूद वह लाक्षणिकता और चित्रात्मकता थी, जिसका प्रायः अभाव द्विवेदीयुग में दिखाई दिया और जो अपनी सघनता और जटिलता में पूर्ववर्ती लाक्षणिक प्रयोगों से विशिष्ट थी। छायावाद के चौथे स्तम्भ के रूप में 'महादेवी वर्मा' प्रमुख हैं जिनकी गणना आचार्य शुक्ल ने रहस्यवाद के भीतर की है, प्रसाद, पंत और निराला को वे 'प्रतीकपद्धति' या 'चित्रभाषाशैली' की दृष्टि से ही छायावाद मानते हैं। महादेवी पर अपने अति संक्षिप्त विवेचन में वे लिखते हैं, ''छायावादी कहे जाने वाले कवियों में महादेवीजी ही रहस्यवाद के भीतर रही हैं, उस अज्ञात प्रियतम के लिये वेदना ही इनके हृदय का भाव केन्द्र है जिससे अनेक प्रकार की भावनाएं छूट छूट कर झलक मारती है।''[29]

महादेवी वर्मा :

छायावादी कवियों में पंत और निराला का व्यक्तित्व जहाँ अपने अपने ढंग से अनेक रूपों में गतिशील रहा है, वहीं महादेवी की समस्त काव्य साधना छायावाद की सीमाओं में बँधी है। 'नीहार', 'रश्मि', 'नीरजा' और 'सान्ध्यगीत' से लेकर 'दीपशिखा' तक उनकी समस्त काव्यकृतियाँ छायावादी काव्यप्रवृत्तियों का ही पर्याय हैं। ब्रजभाषा में काव्यरचना के बाद खड़ीबोली में महादेवी का आगमन 1930 में उनके काव्यसंग्रह 'नीहार' के प्रकाशन के साथ हुआ। महादेवी के इस काव्यसंग्रह के सम्बन्ध में बच्चन सिंह लिखते हैं, ''नीहार के गीतों में भावुकता का प्रधान्य है,

---

[29] 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', पृ0 489, रामचन्द्र शुक्ल

अनुभूतियों में सघनता की कमी है और कल्पना अभी पंख फैलाना सीख रही है।''[30] कहना न होगा कि परवर्ती काव्य में महादेवी की अभिव्यक्ति प्रौढ़ से प्रौढ़तर हुई है। अज्ञात अव्यक्त सत्ता के प्रति वेदना ही उनके भावजगत का केन्द्र बिन्दु है और उनकी कविता का माध्यम सम्पूर्णतः गीत है। यही कारण है कि महादेवी की भाषा में वह वैविध्य नहीं मिलता जो पंत ओर निराला में दिखाई देता है। 'नीरजा' के गीतों में उनकी अनुभूति अपने सघनतम रूप में प्रकट हुई है। संयमित रूप में अप्रस्तुतों का चयन तथा रूप रंग और ध्वनि बिम्बों के सफल प्रयोग के कारण भाषा अपेक्षाकृत अधिक सूक्ष्म और सघन अनुभूति की अभिव्यक्ति में सफल रही है। 'धीरे-धीरे उतर क्षितिज से', 'विरह का जलजात जीवन', 'टूट गया वह दर्पण निर्मम' और 'रूपसि तेरा घन केश पाश' आदि महादेवी के अनेक श्रेष्ठ गीत 'नीरजा' के अन्तर्गत ही संकलित हैं।

छायावादी कवियों में छन्द, लय और तुक के आग्रह पर शब्द निर्माण की प्रवृत्ति महादेवी में नहीं मिलती। फारसी और ब्रजभाषा के गिने चुने प्रयोग उनके काव्य में ढूँढनें पर ही मिलेगें और इस रूप में यह कहना असंगत न होगा कि भाषिक अभिजात्य और भाषिक संस्कार की सजगता अपने वरिष्ठ कवियों की अपेक्षा महादेवी में सबसे अधिक है। 'सान्ध्यगीत' और 'दीपशिखा' के अनेक गीतो में दार्शनिकता का दबाव अधिक है, अतः काव्यात्मकता का प्रायः अभाव मिलता है। दार्शनिकता का बोझ जहाँ कम है, वहाँ अभिव्यक्ति अधिक सफल बन पड़ी है,

---

[30] 'आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास', पृ0 181-182, बच्चन सिंह

प्रिय! सान्ध्य गगन

मेरा जीवन!

x x x x x x x

साधों का आज सुनहलापन,

घिरता विषाद का तिमिर सघन,

सन्ध्या का नभ से मूक मिलन-

यह अश्रुमति हँसती चितवन।

लाता भर श्वासों का समीर,

जग से स्मृतियों का गन्ध धीर,

सुरभित हैं जीवन-मृत्यु-तीर

रोमों में पुलकित कैरव-वन!

x x x x x x

इच्छाओं के सोने से शर,

किरणों से द्रुत झीने सुन्दर,

सूने असीम नभ में चुभ कर-

बन बन आते नक्षत्र-सुमन-

घर आज चले सुख-दुःख विहग!

तम पोंछ रहा मेरा अग जग;

छिप आज चला वह चित्रित मग;

उतरो अब पलको में पाहुन![31]

सघन रूप में विषाद तिमिर का घिरना, स्मृतियों के गन्ध से भरे श्वाँसों के समीर द्वारा जीवन और मृत्यु के तट का सुरभित होना और इच्छाओं के सुवर्ण शर रूप किरणों का सूने असीम नभ में विलीन होकर नक्षत्र-सुमनों का प्रस्फुटित होना—कहना न होगा यह सम्पूर्ण चित्र सुख-दुख से परे (घर आज चले सुख दुख विहग) सन्ध्या काल की जिस सर्वान्तिक उदासी को अभिव्यक्ति देता है, वह अपनी कलात्मकता में

[31] 'यामा'-पृ0- 117, महादेवी वर्मा

बेजोड़ है और अपनी गहनता में महादेवी की अनुभूतियों की सच्चाई पर लगे प्रश्नचिह्न का प्रत्युत्तर भी।

इस प्रकार रीतिकालीन स्थूल सौन्दर्यबोध और द्विवेदीयुगीन स्थूल राष्ट्रीयता से अलग सूक्ष्म आभ्यन्तर भावों की सूक्ष्म अभिव्यक्ति ने खड़ीबोली को जो रचनात्मक संस्कार दिया, उसका आरम्भ और चरम विकास छायावाद मे ही दिखाई दिया, यह अलग बात है कि आगे प्रगतिवाद, प्रयोगवाद और नई कविता में भी भिन्न-भिन्न संदर्भो, बिम्बों और प्रतीकों के माध्यम से खड़ीबोली अपनी व्यञ्जकता में क्रमश: भाषिक प्रौढ़ता की ओर अग्रसर हुई। वस्तुत: छायावाद खड़ीबोली की इतिवृत्तात्मकता से उसकी व्यञ्जनात्मक क्षमता के विकास का वह महत्वपूर्ण मोड़ है जहाँ पहुँचकर खड़ीबोली अपनी कोमलता और सुकुमारता में न केवल ब्रजमाधुरी के समकक्ष खड़ी हुई बल्कि चित्रात्मकता और दृश्यमता के स्तर पर मध्यकालीन काव्यभाषा से अलग, सघन और जटिल अनुभूति की अभिव्यक्ति में बिम्ब धार्मिता के विकसित सोपान पर पहुँची। 'प्रथमप्रभात' की काव्यात्मक सघनता 'झरना' और 'पल्लव' के बिम्व प्रयोगों के माध्यम से विकसित होती हुई 'राम की शक्ति पूजा' और 'कामायनी' के रूप में अपने चरमोत्स्कर्ष को प्राप्त करती है। खड़ीबोली के पहले महाकाव्य 'प्रियप्रवास' की आधुनिकता से आगे महाकाव्य का सूक्ष्मतम रूप यदि 'कामायनी' में विकसित हुआ, तो प्रबन्ध का नितान्त मौलिक और नूतन विधान 'राम की शक्ति पूजा' और 'तुलसीदास' को अन्तर्गत रचा गया। 'नीहार', 'रश्मि', 'नीरजा', 'गीतिका' और 'अनामिका' के गीतों ने खड़ी बोली को गीत की मृदुता और मधुरमा प्रदान की और वह खड़ीबोली जिस पर भाव, ओज, लालित्य, प्रसाद और रसाभास के अभाव के आरोप लगाये गये, छायावादी कवियों की लेखनी के संस्पर्श से अपनी सम्पूर्ण सम्भावनाओं के साथ काव्योपयुक्त गरिमा को प्राप्त हुई ।

अध्याय—4

प्रसाद की काव्यभाषा का विकास: महत्वपूर्ण सोपान

(क) **प्रसाद का ब्रजभाषा काव्य**

छायावाद के यशस्वी कवि जयशंकर प्रसाद की काव्ययात्रा ब्रजभाषा से खड़ीबोली के परिष्कृत एवं काव्योचित रूप के अर्जन की यात्रा है। प्रसाद ने जिस समय काव्य क्षेत्र में पदार्पण किया उस समय एक ओर ब्रजभाषा की काव्य परम्परा का संस्कार विद्यमान था दूसरी ओर आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के प्रयत्नों से खड़ीबोली को कविता और गद्य की भाषा के रूप में समान रूप से प्रतिष्ठित करने का अभियान उत्तरोत्तर सघन एवं प्रभावी रूप धारण कर रहा था। ब्रजभाषा के पक्षधर भारतेन्दु के मार्ग का अनुगमन कर रहे थे। वे कविता के लिये ब्रजभाषा और गद्य के लिये खड़ीबोली की उपयुक्तता के समर्थक थे। काव्यभाषा के क्षेत्र में भाषा का यह द्वैत पर्याप्त समय तक चलता रहा। परन्तु काव्यभाषा की इस द्वैतमूलक विकास प्रक्रिया में अनेक कवियों ने धीरे-धीरे अपनी काव्य साधना खड़ीबोली की ओर उन्मुख की और ब्रजभाषा से उत्तरोत्तर मुक्त होते गये।

प्रसाद छायावाद के ऐसे ही रचनाकार हैं। वे अपनी काव्य साधना का आरम्भ ब्रजभाषा से करते हैं। इस समय उनकी कविता में भारतेन्दु के समान भक्ति और रीतिकालीन कविता का संस्कार परिलक्षित होता है। परन्तु वे परम्परित विषयों के साथ नवीन विषयों की ओर भी उन्मुख होते दिखाई पड़ते हैं। परम्परा के अनुपालन में प्रसाद ब्रजभाषा रचनाओं में कवित्त, सवैया और पद शैली को अपनाये रहते हैं। प्रसाद की काव्य साधना का ब्रजभाषा से खड़ीबोली में रूपान्तरण एक प्रकार से आधुनिक हिन्दी कविता के भाषिक रूपान्तरण को प्रमाणित करता है। प्रसाद ने 'प्रेम पथिक' (सन् 1909) ब्रजभाषा में रचा और प्राय: आठ वर्ष बाद उन्होंने उसका संशोधित एवं परिवर्धित रूप खड़ीबोली (1914) में प्रस्तुत किया। वस्तुत: 'प्रेमपाथिक' का यह रूपान्तरण समूची आधुनिक हिन्दी के काव्यभाषिक

रूपान्तरण का प्रतीक बिन्दु है और इस रूपान्तरण के समानान्तर ही कवि की संवेदना में महत्वपूर्ण बदलाव आता है।[1]

कवि का आदि छंद:

प्रसाद के ब्रजभाषा काव्य की विकास प्रक्रिया 'इन्दु' से सम्बद्ध है जिसमें प्रारम्भ में मुख्यत: उनकी ब्रजभाषा रचनाएँ प्रकाशित हुई जो बाद में 'चित्राधार' में संकलित हुई। लेकिन 'इन्दु' में प्रकाशित ब्रजभाषा रचनाओं के अतिरिक्त प्रसाद की कुछ स्फुट ब्रजभाषा रचनाएँ भी प्राप्त होती हैं। नौ वर्ष की अवस्था में प्रसाद ने चित्रकूट, नैमिषारण्य, मथुरा, ओमकारेश्वर, धाराक्षेत्र और उज्जैन की लम्बी यात्रा की। इसके बाद उन्होंने 'कलाधर' उपनाम से शिव की स्तुति में रचित एक सवैया अपने गुरु सोहनीलाल 'रसमय सिद्ध' को सुनाया। यह छंद प्रसाद का आदि छंद कहा जाता है,

> हारे सुरेश, रमेस, घनेस, गनेसहू शेष न पावत मारे
> पारे है कोटिक पातकी पुंज "कलाधर" ताहि छिनो लिखि तारे
> तारेन की गिनती सम नाहिं सुजेते तरे प्रभु पापी बिचारे
> चारे चले न बिंरचिहू के जो दयालु ह्वै शंकर नेकु निहारे।[2]

प्रसाद के इस छंद के रेखांकित शब्दों के पाठान्तर भी मिलते हैं।[3] इन पाठान्तरों में पूर्ववर्ती और परवर्ती का निश्चय कर पाना कठिन है परन्तु यह सम्भावना की जा सकती है कि इस छंद में पाठ परिवर्तन प्रसाद ने स्वयं किये होगें क्योंकि प्रसाद ने अपनी अधिकांश रचनाओं के परवर्ती संस्करणों में रचना को श्रेष्ठतर बनाने हेतु पाठ

---

[1] 'प्रसाद निराला अज्ञेय' पृ0-36, रामस्वरूप चतुर्वेदी।

[2] 'प्रसाद ग्रंथावली'-आदि छंद (प्रथम कविता, लेखनकाल ईसवीय सन् 1901, वयस 12 वर्ष)।

[3] 'प्रसाद का काव्य'-पृ0 22 पर उद्वृत इसी छद में शब्दों के क्रमश: पाठान्तर मिलते है-गनेसहुँ, बिच, सुबेते, विरचंहि और नेक-प्रेमशंकर।

परिवर्तन किये थे। प्रसाद की प्रारम्भिक कविताओं में उनका शिव स्तुति विषयक प्रस्तुत पद भी उद्धृत किया जाता है,

हे शिव धन्य तुम्हारी माया

जेहि बस भूलि भ्रमत हैं सब ही सुर अरु असुर निकाया।[4]

जीवन के प्रारम्भ में प्रसाद की शिवभक्ति का यह अंकुर आगे चलकर 'कामायनी' में शैव दर्शन के रूप में पल्लवित और पुष्पित हुआ।

अन्य आरम्भिक रचनाएँ:

प्रसाद की आरम्भिक तीन ब्रजभाषा कविताएँ भी प्रकाश में आई हैं जो उनके पुत्र श्री रत्नशंकर द्वारा सम्प1ादित 'प्रसाद ग्रंथावली' में संकलित हैं। प्रसाद की जो ब्रजभाषा रचनाएँ उपलब्ध हैं, सम्भवतः उनके अतिरिक्त भी प्रसाद ने अनेक स्फुट ब्रजभाषा रचनाएँ की होगीं। इस सम्बन्ध में श्री रत्नशंकर की टिप्पणी उद्धरणीय है,

''प्रारम्भतः ''कलाधर'' उपनाम से पूज्य पिताजी (श्री जयशंकर प्रसाद जी) कवितायें लिखा करते थे ऐसी प्रायः छोटी बड़ी चार सौ कृतियां थीं जिन्हें कुछ घरेलू कारणवश सन् 1906 में उन्होंने कारखाने की जलती भट्टी को अर्पित कर दिया। किंतु उन्हीं के पैतृक अधिष्ठान 'सुँघनी साहु' की गद्दी के पुराने कागदों में कारखाने का उस समय का मुद्रित विज्ञापन पत्र उपलब्ध हुआ जिसे 'प्रसाद की काव्यमयी हस्तलिपि' इतने दिनों से सँजोये रखने का सौभाग्य प्राप्त है। इस पावन ऋक्थ की प्रतिच्छवि और लिपिपाठ अगले पृष्ठों पर दिया जा रहा है। जहाँ

---

[4] 'प्रसाद का काव्य'-पृ0 23, प्रेमशंकर।

'कलाधर' छाप वाली ब्रजभाषा की कविताएँ प्राप्त है।''[5] प्रसाद की हस्तलिपि में प्राप्त ये तीन सवैया छंद यहाँ उद्वृत हैं,

आसन तेरे अमोल कपोल मनोरथ जो तेहि पै बिठलायो
नैन के आसव चारु गुलाबी छकाय के ही मतवाले बनायो
कुंतलदाम में फांसी के ताहि भले विधि ही पुनि नाच नचायो
बाहर जान न पावत रूप रहे अंग मै औ परै उफनायो

x x x x x x x x x x

कीन्हीं कठोरता जो हमते तऊ हाय की हूक हिये रहि जायगी
दीठि बचाय के फेरत जो रुख तौ हू कबौं मिलि जायगी
नीके बिचरि ले ये मनमाहि 'कलाधर' हू की कला घटि जायगी
प्रेमी के राह को छोड़िबे की सिल तेरी निसानी हिये धरि जायगी।

x x x x x x x x x x

तोरी के नेह को काचो तगा तुम कीन्हीं दगा यह नीक ना कीन्हीं
जो यह तेरे रही मनमांहि तो क्यों पहिले ही नहीं कहि दीन्हीं
नैन की हाला छकाय बेहाल कै फेरि ले कुन्तल में कसि दीन्हीं
बेबस कै के 'कलाधर' को दिल दागि के काहे प्रिये तजि दीन्हीं[6]

इन सवैयों में प्रसाद की प्रेम और सौन्दर्यजन्य अनुभूति व्यक्त हुई है जो घनानंद के सवैयों का स्मरण दिलाती है। इनमें प्रसाद की ब्रजभाषा अभिव्यक्ति के परम्परित उपादानों का वहन करती हुई दिखाई पड़ती है। कहीं-कहीं छंद की गति बाधित होती है पर कवि कथ्य को मुक्तक की शैली में सरलतापूर्वक व्यक्त करता हुआ प्रभावी बनाता है।

---

[5] 'प्रसाद ग्रंथावली'- पृ0 3, सम्पादक रत्नशंकर प्रसाद।

[6] 'प्रसाद ग्रंथावली'- पृ0 5, सम्पादक-रत्न शंकर प्रसाद।

प्रसाद अपने गुरु 'रसमय सिद्ध' के निर्देश पर कभी-कभी काव्य-गोष्ठियों में अपनी ब्रजभाषा रचनाएँ सुनाते थे। उनमें आशु कवित्व की क्षमता थी। प्रसाद कवि समाज में समस्यापूर्ति भी करते थे। एक बार एक समस्या पर विचार हो रहा था। प्रसाद ने 'अंखियाँ अब तो हरजाई भई' की समस्या की पूर्ति प्रस्तुत सवैया रचकर की,

भई ढीठ फिरै चल चंचल ह्वै यह रीति 'प्रसाद' चलाई नई।
नई देखि मनोहरता कतहूँ, थिरता इनमें नहिं पाई गई।
गई लाज स्वरूप सुधा छवि कै न तबों इनकी कुटिलाई गई।
गई खोजत और ही ठौर तुम्हें अंखियाँ अब तो हरजाई भई।।[7]

जिस समय प्रसाद ने काव्य रचना प्रारम्भ की उस समय 'भारतेन्दु' पत्रिका प्रकाशित होने लगी थी। प्रसाद का एक सवैया इसी पत्रिका में जुलाई सन् 1906 में प्रकाशित हुआ जो इस प्रकार है,

सावन आए वियोगिन को तन,
आली अनंग लगे अति तावन।
तावन हीय लगी अबला
तड़पै जब बिज्जु छटा छवि छावन।।[8]

'इन्दु' का योगदानः

लेकिन प्रसाद की काव्ययात्रा का व्यवस्थित एवं क्रमबद्ध रूप सन् 1909 से मिलता है। प्रसाद की प्रेरणा से उनके भांजे अम्बिका प्रसाद गुप्त ने 'इन्दु' पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ किया। प्रसाद की काव्य साधना के विकास में 'इन्दु' की

---

[7] 'प्रसाद का काव्य'- पृ0 47, प्रेमशंकर।
[8] 'प्रसाद का काव्य'- पृ0 47, प्रेमशंकर।

महत्वपूर्ण भूमिका रही है। 'इन्दु' के उद्देश्य को इसके पहले अंक, कला-1 की पहली किरण में प्रसाद ने इस सवैया द्वारा स्पष्ट किया है,

सज्जन चित्त चकोरन को, हुलसावन भावनपूरो अनिन्दु है
मोहन काव्य में प्रेमिन के हित, साँच सुधारस को बलिबिन्दु है
ज्ञान प्रकाश प्रसार हिए विच, ऐसो जो मूरखता तमबिन्दु है
काव्य महोदधि से प्रकट्यो इस रीति कला दुत पूरण इन्दु है।[9]

यहाँ प्रसाद ने 'रस रीति कला' कहकर ब्रजभाषा काव्य परम्परा की प्रकृति का समर्थन किया है, पर साथ ही नवीन तत्सम शब्दावली का भी प्रयोग किया है। इससे प्रसाद की स्वच्छन्दतावादी प्रकृति का संकेत मिलता है। इसी अंक में प्रसाद की 'शारदाष्टक' कविता प्रकाशित हुई जो संख्यावाचक अष्टक काव्य रूप में सरस्वती वंदना की परम्परा का निर्वाह करती है। 'इन्दु' की दूसरी किरण में ब्रज भाषा में लिखा गया प्रसाद का प्रेम पथिक प्रकाशित हुआ। 'प्रेम पथिक' एक आख्यानक कविता है जिसमें प्रसाद ने प्रेम को परिभाषित करते हुए उसके सार्वभौम स्वरूप का प्रतिपादन किया है। यहाँ प्रेम के श्रृंगारिक रूप की अपेक्षा उसके उदात्त एवं निर्मल स्वरूप का प्रतिपादन हुआ है। 'इन्दु' की तीसरी किरण में प्रसाद की प्रकृति विषयक 'शारदीय शोभा', 'प्रभात', 'रजनी', 'कमलनी', 'भ्रमर' और 'मानस' शीर्षक कविताएँ प्रकाशित हुई। इन कविताओं में प्रसाद की प्रकृति विषयक धारणा साकार होती हुई दिखाई पड़ती है। साथ ही खड़ीबोली की तत्सम एवं सामासिक शब्दावली के प्रयोग की प्रवृत्ति अभिव्यञ्जना को नया आयाम देती है। 'इन्दु' की चौथी किरण में प्रसाद की 'प्रेमराज्य' शीर्षक लम्बी कविता का एक खण्ड प्रकाशित हुआ जो स्वतंत्र रूप से प्रकाशित हो जाने के कारण आगे 'इन्दु' में प्रकाशित नहीं

---

[9] 'प्रसाद का काव्य'- पृ0 48, प्रेमशंकर।

हुआ। 'प्रेमराज्य' एक कथाकाव्य है जिसके पूर्वार्द्ध में टालीकोट के राजा सूर्य्यकेतु के यवनों से हुए युद्व का वर्णन है। 'प्रेमराज्य' के उत्तरार्द्ध में चन्द्रकेतु और ललिता के प्रेम का चित्रण हुआ है। वे दोनों अन्त में 'प्रेमराज्य' के स्वामी बनते हैं। 'इन्दु' की पाँचवी किरण में प्रसाद की 'कल्पना सुख' कविता प्रकाशित हुई। इस कविता में कल्पना जन्य सुख की व्याप्ति एवं कल्पना की शक्ति का चित्रण हुआ है। 'इन्दु' की छठी किरण में 'वनवासिनी बाला' प्रकाशित हुई जिसका आधार कालिदास का 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' है। 'वनवासिनी बाला' में प्रसाद के प्रकृति प्रेम और सौन्दयाकंन की क्षमता का परिचय मिलने लगता है। 'इन्दु' की आठवीं किरण में प्रसाद की 'रसालमंजरी' शीर्षक कविता प्रकाशित हुई। यह कविता भी प्रसाद के प्रकृति चित्रण की क्षमता की परिचायक है तथा यहाँ कवि प्रकृति में मानवीय संवेदना का आरोप करता है।

नवीं किरण के प्रकाशन के साथ 'इन्दु' पत्रिका नये वर्ष में प्रवेश करती है। इसमें विश्वामित्र के व्यक्तित्व का चित्रण करने वाली 'ब्रह्मर्षि' कविता प्रकाशित हुई जहाँ प्रसाद की भाषा परिष्कृत होती हुई दिखाई पड़ती है। 'इन्दु' की दसवीं किरण मे प्रसाद की 'अयोध्योद्धार' कविता प्रकाशित हुई जो कथात्मक है। इस कविता में प्रसाद ने कालिदास के 'रघुवंश' के एक कथाखण्ड का आधार लिया है। 'अयोध्योद्धार' में प्रसाद की प्रबन्ध सृजन की प्रतिभा का संकेत मिलता है। यहाँ कवि की कल्पना शक्ति और प्रियम्वदा-मालिनी-सुन्दरी आदि छंदों के प्रयोग की कला दिखाई पड़ती है। कहीं-कहीं कवि की राष्ट्रीय भावना भी प्रस्फुटित हुई है। 'इन्दु' के इसी अंक में प्रसाद ने एडवर्ड सप्तम के निधन पर शोक व्यक्त करते हुए 'शोकोच्छ्वास' शीर्षक एक कविता भी प्रकाशित की। इसी आशय से बाद में उन्होंने 'समाधि सुमन' कविता भी लिखी। 'इन्दु' की ग्यारहवीं किरण में प्रसाद की

'भारत' कविता के प्रकाशन के साथ उनकी राष्ट्रीय भावना का स्पष्ट बोध होता है। यहाँ प्रसाद भारतेन्दु युग से चली आती हुई राजभक्ति और राष्ट्रभक्ति के द्वैत का अनुगमन करते हैं जो उनके युग की राजनैतिक संचेतना को ध्वनित करती है। परन्तु कवि के अन्तस का उन्मेष उसकी राष्ट्रीय भावना में ही प्रभावी रूप से अभिव्यक्त हुआ है। 'इन्दु' की बारहवीं किरण में 'स्मृति' शीर्षक कविता प्रकाशित हुई जिसके अन्तर्गत ब्रज से लौटकर आये उद्धव द्वारा कृष्ण के समक्ष ब्रज बालाओं की विरह दशा वर्णित करने का प्रसंग वर्णित हुआ है। 'इन्दु' की इसी किरण में आम्र की प्रशस्ति में प्रसाद की 'रसाल' शीर्षक कविता भी प्रकाशित हुई। इस प्रकार इन्दु के प्रथम वर्ष की प्रायः सभी किरणों में प्रसाद की ब्रजभाषा रचनाएँ प्रकाशित होती रहीं।

कला 2 किरण 1 के प्रकाशन के साथ 'इन्दु' का द्वितीय वर्ष प्रारम्भ होता है। इसमें प्रसाद की शिव वन्दना तथा 'सन्ध्या तारा' कविता प्रकाशित हुई। 'सन्ध्यातारा' प्रसाद की सान्ध्य तारा के प्रति सम्बोधि कविता है। इसी किरण में 'चम्पू' के अतिरिक्त प्रसाद का 'कवि और कविता' लेख भी प्रकाशित हुआ जिसके सम्बन्ध में डा0 प्रेमशंकर लिखते हैं "प्रसाद के काव्य विकास की दृष्टि से यह लेख महत्वपूर्ण है। प्रसाद जी ने कवि के तीन गुण माने हैं-कल्पना शक्ति, सौन्दर्य की आलोचना और प्रकृति ज्ञान।....... इसमें संदेह नहीं कि कवि ने जिस महान उद्देश्य की उद्घोषणा इस लेख में की है, उसी के निर्वाह में वह प्रयत्नशील रहा।"[10] 'इन्दु' के इसी अंक में 'वर्षा में नदी कूल' शीर्षक कविता भी प्रकाशित हुई। इसके पश्चात 'इन्दु' की दूसरी किरण से प्रसाद की प्रकृति निष्ठा उत्तरोत्तर संवर्धित होती है। इसी किरण में प्रकाशित 'पावस', 'इन्दुधनुष', 'चित्र' और 'नीरद'

[10] 'प्रसाद का काव्य'- पृ0 64, प्रेमशंकर।

शीर्षक कविताएँ प्रसाद की प्रकृत्योन्मुखता का प्रमाण हैं। 'इन्दु' की तीसरी किरण में प्रकाशित 'विभो' और 'अष्टमूर्ति कविताओं में कवि की भक्ति भावना अभिव्यक्त हुई है। इसी परम्परा की 'शारदीय महापूजन' कविता 'इन्दु' की चौथी किरण में प्रकाशित हुई। चौथी किरण में प्रसाद की 'प्रभातिक कुसुम', 'शरतपूर्णिमा', 'काशी', 'विस्मृत प्रेम' शीर्षक कविताएँ भी मिलती हैं जिनमें प्रथम तीन प्रकृति विषयक हैं तथा 'विस्मृत प्रेम' के अन्तर्गत प्रसाद के जिज्ञासामूलक प्रेमदर्शन की अभिव्यक्ति हुई है। सातवीं किरण में प्रकाशित 'नीरव प्रेम' शीर्षक कविता के अन्तर्गत प्रसाद का प्रेमदर्शन विकसित होता है। 'इन्दु' की आगामी चार किरणें होलिकांक के रूप में प्रकाशित हुई। इसमें 'होली का गुलाब', 'विसर्जन' और 'चन्द्रोदय' शीर्षक कविताओं के अन्तर्गत क्रमशः होली के उल्लास, आत्मबोध और प्रकृति का चित्रण हुआ है। अन्ततः बारहवीं किरण में पौराणिक वृत्त पर आधारित कथात्मक कविता 'वभ्रुवाहन' प्रकाशित हुई।

तीसरी कला के साथ 'इन्दु' तीसरे वर्ष में प्रवेश करती है। इसकी प्रथम किरण में प्रसाद की 'भारतेन्दु-प्रकाश' शीर्षक कविता प्रकाशित हुई। यह कविता भारतेन्दु के प्रति श्रद्धाञ्जलि है। इसके बाद तीसरी किरण से 'इन्दु' में प्रसाद की खड़ीबोली कविताएँ प्रकाशित होने लगती हैं। परन्तु प्रसाद ब्रजभाषा को एकदम नहीं त्यागते, इसका प्रमाण उनकी 'वसन्त विनोद' नाम से प्राप्त दस ब्रजभाषा कविताएँ हैं जिनमें कवित्त छंद का प्रयोग हुआ है। ग्यारहवीं किरण में पुनः ब्रजभाषा के चार कवित्त प्रकाशित हुए।

'इन्दु' के चौथे वर्ष में प्रवेश करने के साथ प्रसाद ब्रजभाषा की ओर से क्रमशः विमुख होने लगते हैं। 'इन्दु' की कला चार की तीसरी किरण में 'वसन्तोत्सव' शीर्षक कविता ब्रजभाषा में मुद्रित हुई। इसके बाद 'इन्दु' की विविध

किरणों में प्रकाशित ब्रजभाषा कविताओं में 'विनोद बिन्दु', 'विदाई' और 'देहुचरण में प्रीति' उल्लेखनीय है। 'इन्दु' की तीसरी किरण में 'मकरन्दबिन्दु' शीर्षक से चार ब्रजभाषा कविताएँ मिलती हैं। पाँचवी किरण में ब्रजभाषा की चार कविताएँ प्रकाशित हुई। कला-5 की तीसरी किरण में 'मकरन्द बिन्दु' शीर्षक के अन्तर्गत ब्रजभाषा की तीन कविताएँ पुनः प्रकाश में आई। इसके पश्चात 'इन्दु' मुख्यतः खड़ीबोली की पत्रिका बन गई और उसमें ब्रजभाषा की कविताएँ प्रकाशित होना प्रायः बन्द हो गई। कहना न होगा ब्रजभाषा के 'कलाधर' अब खड़ीबोली के 'प्रसाद' हो गये।

चित्राधारः

इस प्रकार प्रसाद की काव्य यात्रा पर्याप्त समय तक ब्रजभाषा के माध्यम से विकसित होती रही। 'इन्दु' में समय-समय पर प्रकाशित प्रसाद की ब्रजभाषा रचनाएँ उनके काव्य संग्रह 'चित्राधार' में संकलित हुई। 'चित्राधार' के प्रथम संस्करण (सन् 1918) में बज्रभाषा और खड़ीबोली दोनों की कविताएँ संकलित हुई थीं लेकिन इसके द्वितीय संस्करण (सन् 1928) में केवल ब्रजभाषा की ही कविताएँ मिलतीं है।'चित्राधार' मे संकलित प्रसाद की ब्रजभाषा रचनाओं में एक वर्ग आख्यानक कविताओं का है जिसमें 'उर्वशी', 'वभ्रुवाहन', 'अयोध्या का उद्धार', 'वन-मिलन' और 'प्रेमराज्य' सम्मिलित हैं। दूसरे वर्ग में नाटक 'प्रायश्चित' और 'सज्जन' संकलित हैं। तीसरा वर्ग कथा प्रबन्धों का है जिसके अन्तर्गत 'ब्रह्मर्षि', 'पंचायत', 'प्रकृति सौन्दर्य', 'सरोज' और 'भक्ति' रचनाएँ आतीं हैं। चौथा वर्ग पराग का है जिसके अन्तर्गत 'अष्टमूर्ति, 'कल्पना-सुख', 'मानस', 'शारदीय शोभा', 'रसाल मञ्जरी', 'रसाल' 'वर्षा में नदी-कूल,' 'उद्यानलता', 'प्रभात-कुसुम', 'विनय', 'शारदीय महापूजन', 'विभो', 'विदाई', 'नीरद', 'शरद-पूर्णिमा', 'सन्ध्यातारा', 'चंद्रोदय', 'इन्द्र-धनुष', 'भारतेन्दु-प्रकाश', 'नीरव प्रेम', 'विस्मृत प्रेम' और 'विसर्जन' आदि

कविताएँ संकलित हैं। पाँचवे वर्ग 'मकरन्द बिन्दु' के अन्तर्गत कवित्त और पद संकलित हैं।

परम्परा और प्रयोगशीलता:

'इन्दु' में प्रकाशित प्रसाद के इस सम्पूर्ण ब्रजभाषा काव्य के अन्तर्गत यद्यपि वस्तुगत और शिल्पगत वैविध्य देखा जा सकता है किन्तु भक्ति, प्रेम और प्रकृति सम्बन्धी विषयों को ही प्रमुखता मिली है। उनकी भक्ति उत्तरोत्तर जिज्ञासा में रूपान्तरित होकर दर्शनोन्मुख होती गई तथा प्रेम और प्रकृति दोनो ही सौन्दर्य चेतना से अनुप्राणित होकर व्याप्ति पाते गये। प्रसाद की ब्रजभाषा रचनाओं में परम्परा के अनुपालन के साथ ही उनकी स्वच्छन्दतावादी प्रकृति के अंकुर भी मिलते हैं जिनमें भावगत सूक्ष्मता, शैलीगत नवीनता और गीतात्मकता प्रमुख है। प्रसाद को जो काव्य परम्परा मिली थी उसमें भारतेन्दु की काव्य साधना का आदर्श विद्यमान था। भारतेन्दु ने भक्ति और श्रृंगार की ब्रजभाषा काव्य परम्परा को अक्षुण्ण रखा पर साथ ही उसे देशकाल और राष्ट्रीय बोध से भी संपृक्त किया। 'भारतेन्दु प्रकाश' में उनके मार्ग-दर्शन का संकेत करते हुए वह लिखते हैं, 'बट पारहूँ मग माहिं हिन्दी को पथिक जावै कहाँ/ हरिचन्द्र ने दिन रात में इकलो प्रकाश कियो तहाँ।' प्रसाद ने अपनी ब्रजभाषा रचनाओं को लक्षण परम्परा के प्रभाव और रूढ़ियो से मुक्त रखा। रूढ़ श्रृंगार को प्रेम और सौन्दर्य का उदात्त स्वरूप प्रदान किया। प्रकृति की रमणीयता को मानवीय संवेदनाओं से संयुक्त किया तथा उसे उद्दीपन विभाव तक सीमित न रखकर जिज्ञासामय बनाया। छायावाद की प्राण चेतना, अनुभूति और कल्पनाशीलता की प्रवृत्तियाँ प्रसाद की ब्रजभाषा रचनाओं में स्पष्ट दिखाई पड़ती हैं। प्रसाद के ब्रजभाषा काव्य में शैली और छन्द प्रयोग के क्षेत्र में भी परम्परा निर्वाह के साथ प्रयोगशीलता परिलक्षित होती है। उन्होंने जहाँ परम्परित कवित्त सवैया आदि

छन्दों एवं पदशैली को अपनाया वहीं संस्कृत के प्रियम्वदा, सुन्दरी, मालिनी तथा बंगला के पयार और त्रिपदी जैसे छंदों का भी प्रयोग किया। इस प्रकार ब्रजभाषा काव्य परम्परा की श्रृंगारिकता, द्विवेदीयुग की इतिवृत्तात्मकता, छायावाद की नवोन्मुखता और युग संदर्भ के बीच प्रसाद ने अपने ब्रजभाषा काव्य की निजी पहचान बनाई।

ब्रजभाषा का तत्सम प्रधान रूप:

प्रसाद तक ब्रजभाषा की सुदीर्घ काव्य परम्परा में ब्रजभाषा के विविध प्रतिरूप विकसित हो चुके थे। उन्हें ब्रजभाषा की जो परम्परा मिली वह सूर जैसे कृष्ण भक्त कवियों की भाषा से भिन्न थी। उसमें रीतिकालीन कवियों की अंलकृति भी अपेक्षाकृत शिथिल थी। प्रसाद को ब्रजभाषा का जो संस्कार मिला वह परिनिष्ठित ब्रजभाषा का था जिसमें तत्समता एवं खड़ीबोली का मौन आग्रह विद्यमान है। आख्यानक कविताओं तथा 'पराग' शीर्षक के अन्तर्गत संग्रहीत कविताओं की भाषा में तत्समता की यह प्रवृत्ति पल्लवित हुई है। कुछ उदाहरण प्रासंगिक होगें,

> विमल विधुकला की कान्ति फैली भली है
> सुललित बहुतारा हीर-हीरावली है।
> सरवर-जलहूँ में चन्द्रमा मन्द डोलै
> वर परिमल पूरो पौन कीन्हे कलोलैं।।[11]
> x x x x x x x x
> मारि मलेच्छतम करि, अनूप बहु बीर काम को।
> सूर्य्यकेतु तक गये, सुखद निज अग्रधाम को।।
> विश्वम्भर के शांत अंक महँ आश्रय लीन्हों।
> आशुतोष तब आशु-शान्ति अभिनव तेहि दीन्हों।।[12]
> x x x x x x x x

[11] 'प्रसाद ग्रंथावली'- 'अयोध्या का उद्धार'-पृ0 9, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

[12] 'प्रसाद ग्रंथावली'- 'प्रेमराज्य'-पृ0 25, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

विलसत मधुर समीर प्रवास,
मानहुँ प्रभात को सीरो।
कलरव मधुर विहंग-संग,
परि मुदित करत चित धीरो।।[13]

प्रसाद की ब्रजभाषा में तत्सम शब्दावली के प्रयोग की प्रवृत्ति उनके समकालीन ब्रजभाषा कवियों की अपेक्षा अधिक मिलती है परन्तु 'मकरन्द बिंदु' के कवित्तों और पदों की भाषा में तत्समीकरण की यह प्रवृत्ति अपेक्षाकृत कम है, यद्यपि कुछ प्रयोग वहाँ भी द्रष्टव्य हैं,

अलक लुलित अलि अवली समान बनि,
हिय के रसाल सुधारस बरसाओ तो।।
प्रेम परिमल-परिपूरित दिगन्त करि,
किसलय अंगुली सों निकट बुलाओ तो।।
खिलैगो हृदय-बन नव राग रञ्जित ह्वै,
परसि 'प्रसाद' यों बसन्त बनि आओ तो।।
कोकिला कलित कण्ठ प्रीति राग गाओ आओ,
बेगि 'प्रान प्यारे नेक कण्ठ सों लगाओ तो।।[14]

प्रसाद की ब्रजभाषा की इस प्रवृत्ति पर विचार करते हुए डा0 रामस्वरूप चतुर्वेदी लिखते हैं ''इसे खड़ीबोली का ब्रजभाषाकरण कहा जा सकता है। यहाँ सामान्यतः तत्समाग्रही खड़ीबोली पर ब्रजभाषा का एक झीना आवरण चढ़ाया गया है।''[15] उन्होंने अपने मत को साक्ष्य में 'वभ्रुवाहन' चंपू के आरम्भिक अंश को उद्धृत किया है,

---

[13] 'प्रसाद ग्रंथावली'- 'शारदीय शोभा'-पृ0 42, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।
[14] 'प्रसाद ग्रंथावली'- 'मकरन्द बिन्दु'-पृ0 75, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।
[15] 'प्रसाद निराला अज्ञेय'-पृ0 38, रामस्वप चतुर्वेदी।

धवल मनोहर दृष्टि सुखदायक हिय अनुराग;
मनहुँ सुधा के बिंब में लपट्यो नलिन-पराग।
नव धन, सुंदर श्याम उर, मनहुँ हीरकाभास;
कालिंदी जल नील में कै अरविन्द विकास।[16]

इसकी भाषा का विश्लेषण करते हुए वे लिखते है, ''यहाँ चार पंक्तियों में कुल पाँच ब्रजभाषा प्रयोग हैं, जिनसे इस समूचे प्रसंग को ब्रजभाषा में ढाला गया है। यह एक प्रकार से आधुनिक काल के आरम्भ में हिन्दी काव्यभाषा के दोनों आधारो की सापेक्ष स्थिति का उदाहरण है।''[17] वस्तुत: काशी के परिवेश और संस्कृत ग्रंथो के अध्ययन ने प्रसाद की ब्रजभाषा को संस्कृत की तत्सम शब्दावली का आधार दिया जहाँ स्पष्ट ही ब्रजक्षेत्र के आसपास बोली जाने वाली भाषा में प्रयुक्त देशज शब्दों का प्राय: अभाव है। तत्समता प्रसाद की ब्रजभाषा और खड़ीबोली दोनों ही सामान्य प्रवृत्ति है। उपर्युक्त बात को उलट कर यह भी कहा जा सकता है कि प्रसाद की तत्सम शब्दावली बहुल ब्रजभाषा में खड़ीबोली का अंकुरण दिखाई पड़ता है जो उनकी काव्य रचना में उत्तरोत्तर प्रखर होता गया। प्रसाद की काव्यभाषा का एक रूप वह भी है जहाँ ब्रजभाषा से मुक्ति के बावजूद खड़ीबोली में ब्रजभाषा के छुटपुट प्रयोग मिल जाते हैं।

समग्रत: प्रसाद के ब्रजभाषा काव्य में वस्तु और शिल्प दोनो ही क्षेत्रों में परम्परा और प्रयोगशीलता को प्रश्रय मिला है। चूंकि इस काव्य में प्रसाद के आगामी काव्य विकास के अंकुर विद्यमान है, अत: प्रसाद के समग्र काव्य विकास में उनके ब्रजभाषा काव्य की ऐतिहासिक एवं स्त्रोतीय भूमिका है। यों प्रसाद की काव्य यात्रा के प्रस्थान बिंदु पर उनके ब्रजभाषा काव्य का यह अवलोकन जितना प्रासंगिक है, उतना ही महत्वपूर्ण भी।

---

[16] 'प्रसाद निराला अज्ञेय'-पृ0 38, रामस्वप चतुर्वेदी।
[17] 'प्रसाद निराला अज्ञेय'-पृ0 38, रामस्वप चतुर्वेदी।

(ख) प्रेम पथिक—भाषिक रूपान्तरण : एक पड़ाव

प्रसाद के रचना विकास का विवेचन करते समय आधुनिक हिन्दी कविता के विकास क्रम का संदर्भ स्वतः जुड़ जाता है। प्रसाद के पूर्व भारतेन्दु के काव्य में सर्वप्रथम लोकोन्मुखता के दर्शन होते हैं। उन्होंने कविता को लोकभूमि पर उतारा और उसके माध्यम से भक्ति और श्रृंगार की परम्परा के निर्वाह के साथ विविध सामाजिक समस्याओं को मानवीय स्तर प्रदान किया। उनके समय के रचनाकारों की काव्यभाषा के दो रूप मिलते हैं। एक में वे मध्यकालीन संवेदना का संवहन करने वाली ब्रजभाषा में भक्ति और श्रृंगार की रचनाएँ करते है और दूसरी ओर युगीन सामाजिक परिवर्तन की आकुलता, राजनीतिक हलचल और पुनर्जागरण की चेतना को अभिव्यक्त करने के लिये खड़ीबोली के माध्यम को अपनाते हैं।

भारतेन्दु के उपरांत द्विवेदीयुग में जब आधुनिकता का स्वर प्रखर होता है और मानव को महत्ता मिलती है तो इस विराट प्रयत्न को 'प्रियप्रवास' और 'साकेत' जैसी रचनाओं में खड़ीबोली के माध्यम से स्वीकृति मिलती है। प्रसाद के रचनाकर्म में भाषा के ये दोनों ही स्तर दिखाई पड़ते हैं। वे भारतेन्दु की तरह अपनी काव्ययात्रा ब्रजभाषा से प्रारम्भ करते है जिसमें भक्ति और रीतिकालीन संस्कार अवशिष्ट रूप में परिलक्षित होते हैं। अन्तर केवल इतना है कि प्रसाद ब्रजभाषा से काव्ययात्रा प्रारम्भ करके खड़ीबोली की ओर उन्मुख ही नहीं होते बल्कि उसके सशक्त कवि के रूप में प्रतिष्ठित होते हैं। उन्होंने अपनी लम्बी कविता 'प्रेमपथिक' ब्रजभाषा में रची और बाद में उसका परिवर्धित, संशोधित रूप खड़ीबोली में प्रस्तुत किया।

इस संदर्भ में प्रसाद के 'प्रेमपथिक' का उनके काव्यविकास में महत्वपूर्ण स्थान है। ब्रजभाषा में रचित प्रेमपथिक का कुछ अंश 'इन्दु' पत्रिका की कला-1,

में प्रकाशित हुआ था। उसी का 'परिवर्तित परिवर्धित तुकान्त विहीन रूप' खड़ीबोली में प्रकाश में आया। 'प्रेमपथिक' का सम्पूर्ण ब्रजभाषा रूप अनुपलब्ध है इसलिये इसके 'इन्दु' में प्रकाशित अंश को ही पूर्ण माना जाता है। 'इन्दु' में प्रकाशित 'प्रेमपथिक' में 134 पंक्तियाँ हैं और खड़ीबोली में प्रकाशित 'प्रेमपथिक' में 270 पंक्तियाँ। 'प्रेमपथिक' के खड़ीबोली रूप के सम्बन्ध में स्वयं प्रसाद का निवेदन है, ''इस छोटी सी पुस्तक के लिये किसी बड़ी भूमिका की आवश्यकता नहीं। केवल इतना कह देना अधिक न होगा कि यह काव्य ब्रजभाषा में आठ वर्ष पहले मैंनें लिखा था जिसका कुछ अंश तो इन्दु के प्रथम भाग में प्रकाशित भी हुआ था। यह उसी का परिवर्तित, परिवर्धित तुकांतविहीन रूप है।''[1] 'प्रेम पथिक' का यह 'तुकांतविहीन' रूप ब्रजभाषा में प्रायः तुकांत था। यहाँ प्रसाद ने दोहा और बरवै छंदों को अपनाया लेकिन इसके ब्रजभाषा रूप में ही कवि ने यथास्थल स्वतंत्रता लेनी प्रारम्भ कर दी थी जिसकी ओर संकेत करते हुए डा0 प्रेमशंकर लिखते हैं, ''इसके ब्रज-संस्करण में ही प्रसाद ने छंदों में थोड़ी-सी स्वच्छन्दता लेना आरम्भ कर दी थी। चारु, उद्गार, सविभार, धारि आदि में तुक पूर्णतया नहीं मिलते। आगे चलकर खड़ीबोली का रूप तो अतुकांत ही हो गया।''[2]

'प्रेम पथिक' के ब्रजभाषा रूप और खड़ीबोली रूप में छंद विधान का अन्तर होने के साथ एक अन्य महत्वपूर्ण अन्तर यह है कि 'प्रेमपथिक' के ब्रजभाषा रूप में कवि स्वयं कथा कहता है और इस प्रकार अन्य पुरुष में कथा कहकर वह परम्परा से जुड़ने की चेष्टा करता है। इसके खड़ीबोली रूप में कवि स्वयं को उस परम्परा से अलग करता है। यहाँ किशोर स्वयं उत्तम पुरुष में अपनी कथा तापसी को सुनाता है। 'प्रेमपथिक' के दोनों ही रूपों में प्रसाद अपनी प्रेम सम्बन्धी

---

[1] 'प्रसाद की रचनाओं में संस्करण परिवर्तनों का अध्ययन'-पृ0 34-35, डा0 अनूप कुमार।

[2] 'प्रसाद का काव्य'-पृ0-105, प्रेमशंकर।

मान्यताओं को मूर्त रूप प्रदान करते हैं। प्रेम विषयक उनकी मान्यताएँ समय के साथ बदलती हैं, इसका स्पष्ट संकेत प्रस्तुत काव्य के ब्रजभाषा रूप और खड़ीबोली रूप में मिलता है। दोनो ही रूपों में प्रेम के माध्यम से प्रसाद प्रेममार्ग की कठिन का वर्णन करते हैं। इसके ब्रजभाषा रूप में प्रेम कहता है,

प्रेम! चक्रवर्ती राजा के राज
हाय! दुहाई सुनी जात नहीं काज[3]।
x x x x x x
यह वह श्रमशाला है रहे जो सून
सून रहै पै कलरव नितप्रति दून[4]।

प्रेममार्ग की कठिनाइयों का वर्णन करने के बाद प्रेम स्वयं अपने मार्ग से पथिक को प्रत्यावर्तन के लिये प्रेरित करता है,

लखि सुकुमार तुम्हें हम शिक्षा देत।
फिरहु 'पथिक' यह मग अति दुःख निकेत।।[5]

इस प्रकार ब्रजभाषा के 'प्रेमपथिक' में प्रसाद की प्रेम विषयक कोई निश्चित धारणा लक्षित नहीं होती। खड़ीबोली में परिवर्तित 'प्रेम पथिक' की रचना में प्रसाद की धारणा लगभग स्पष्ट होती गई है। यहाँ प्रेम के वैयक्तिक रूप से ऊपर उठकर प्रसाद प्रियतम को सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त देखते हैं,

प्रियतम-मय यह विश्व निरखना फिर उसको है विरह कहाँ
फिर तो वही रहा मन में, नयनों मे प्रत्युत जग भर में[6]

इसीलिये प्रसाद मनुष्य को विश्वात्मा के प्रति आत्मसमर्पण का प्रबोधन देते हैं,

आत्म-समर्पण करो उसी विश्वात्मा को पुलकित होकर
प्रकृति मिला दो विश्व प्रेम में विश्व स्वयं ही ईश्वर है।[7]

---

[3] 'प्रसाद का काव्य'- पृ0-104, प्रेमशंकर
[4] 'प्रसाद का काव्य'- पृ0-105, प्रेमशंकर
[5] 'प्रसाद की रचनाओं में संस्करणगत परिवर्तनों का अध्ययन'- पृ0-39, डा0 अनूप कुमार।
[6] 'प्रसाद ग्रंथावली'- खण्ड-1, पृ0- 97, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।
[7] 'प्रसाद ग्रंथावली'- खण्ड-1, पृ0- 101, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

प्रेम के विराट रूप को प्रतिपादित करते हुए प्रसाद उसके शारीरिक रूप को अपर्याप्त मानते हैं और हृदय से हृदय के सम्मिलन को महत्व देते हैं। स्पष्ट है कि 'प्रेम पथिक' के खड़ीबोली रूप में प्रसाद का दृष्टिकोण अधिक व्यापक, सुखद और स्वस्थ है।

वस्तुतः 'प्रेम पथिक' का ब्रजभाषा से खड़ीबोली में रूपान्तरण प्रसाद की भाषिक प्रयोगशीलता को रेखांकित करता है। उसमे प्रेम तथा उसकी अभिव्यक्ति का संवेदनात्मक एवं भाषिक नवोन्मेष लक्षित होता है। 'प्रेमपथिक' के खड़ीबोली रूप में प्रसाद प्रेम को अपेक्षाकृत अधिक उदात्त भावभूमि पर प्रतिष्ठित करते हैं। प्रेम के इस उदात्तीकरण के अतिरिक्त खड़ीबोली में रूपान्तरित 'प्रेमपथिक' में एक महत्वपूर्ण बिन्दु यह है कि यहाँ प्रेम के लौकिक एवं अलौकिक रूपों अर्थात् प्रेम और भक्ति का अन्तर विलुप्त होता हुआ दिखाई पड़ता है, जिसकी ओर डा0 रामस्वरूप चतुर्वेदी ने संकेत किया है। इस अन्तर को स्पष्ट करने के लिये उन्होंने प्रस्तुत काव्य के दोनो रूपों की निम्न पंक्तियाँ उद्धृत की हैं,

> प्रेम? सिन्धु अथाह, थाह लहै न कोऊ वीर
> हा! मनोरथ तरल तुंग तंरग उठत गंभीर।।[8]
>
> –ब्रजभाषा रूप
>
> x x x x x x x x x
>
> इस पथ का उद्देश्य नहीं है श्रांत भवन में टिक रहना
> किंतु पहुँचना उस सीमा पर जिसके आगे राह नहीं।[9]
>
> –खड़ीबोली रूप

'प्रेमपथिक' के ब्रजभाषा और खड़ीबोली रूपों के अध्ययन से स्पष्ट है कि 'प्रेमपथिक' के ब्रजभाषा रूप में केवल प्रेम का वर्णन है परन्तु उसके खड़ीबोली रूप में प्रेम और आध्यात्म का अन्तर्भाव हुआ है। प्रेम के इस सूक्ष्म अन्तर का यह

---

[8] 'प्रसाद निराला अज्ञेय'- पृ0 38, रामस्वरूप चतुर्वेदी।

[9] 'प्रसाद निराला अज्ञेय'- पृ0 39, रामस्वरूप चतुर्वेदी।

महत्वपूर्ण बिन्दु वस्तुतः हिन्दी कविता की परिवर्तित संवेदना को भी लक्षित करता है।

'प्रेमपथिक' के खड़ीबोली रूप का आरम्भिक अंश इस प्रकार है,

सन्ध्या की, हेमाभ तपन की, किरणें जिसको छूती हैं
रञ्जित करती हैं देखो जिस नई चमेली को मुद से[10]

यहाँ सन्ध्याकालीन पीतवर्णी किरणों के लिये 'हेमाभ' (हेम जैसी आभा वाली) विशेषण का प्रयोग यह संकेतित करता है कि यह 'सन्ध्या' प्रातः कालीन है लेकिन उसके साथ ही कवि 'तपन' को जोड़कर सुबह की सक्रियता, क्रियाशीलता और चेतना को भी रूपायित करता है। इस प्रकार 'हेमाभ तपन' का प्रयोग प्रातः कालीन संन्ध्या के वर्ण और चेतना की सम्मिलित अभिव्यक्ति है। दूसरी पंक्ति में 'नई चमेली को मुद से' प्रयोग कुछ खटकता है। प्रातः कालीन किरणों के स्पर्श से चमेली मुदित होती है या फिर प्रातःकालीन किरणें चमेली में नई चेतना का संचार करती हैं, भाव की अभिव्यक्ति के लिये यह खटकता वाक्य कवि द्वारा खड़ीबोली के आरम्भिक प्रयोग की सूचना देता है।

x x x x x x x x x x x x x

कौन जानता हे उसे तम में जाकर छिपना होगा,
या फिर कोमल मधुकर उसको मीठी नींद सुला देगा?[11]

उपर्युक्त पंक्तियाँ सम्पूर्ण 'प्रेमपथिक' की कथावस्तु को प्रतीक रूप में व्यक्त करती हैं। काव्य के आरम्भ में ही कवि चमेली के प्रतीक द्वारा यह व्यक्त करता है कि मिलना और बिछुड़ना नियति का क्रम है। कई पंक्तियों में चमेली के सुखद जीवन के वर्णन का क्रम पुनः जिस पंक्ति से टूटता है, वह इस प्रकार है,

---

[10] 'प्रसाद ग्रंथावली'- खण्ड-1, पृ0- 87, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

[11] 'प्रसाद ग्रंथावली'- खण्ड-1, पृ0- 87, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

अहा, चमेली वही, बताओ कैसे सुख को पावेगी

तोड़ी जाकर निज डालों से, चिरंसगिनी कली कुल से-[12]

जीवन में सुख दु:ख का क्रम अज्ञात है, यह प्रतीकात्मक भाव आगे चलकर निम्न पंक्तियों में स्पष्ट होता है,

लीलामय की अद्‌भुत लीला किससे जानी जाती है

कौन उठा सकता है धुँधला-पट भविष्य का जीवन में[13]

यहाँ सुख दु:ख के अज्ञात क्रम को अधिक का पुष्ट करने के लिये कवि दूसरी पंक्ति को प्रश्न रूप में रखता है। भविष्य में क्या होगा, इसे कोई नहीं जानता, भाव को प्रश्नात्मक वाक्य के रूप में रख कर कवि जीवन में भविष्य की संदेहात्मक स्थिति को और भी गहराई के साथ व्यक्त करता है। 'प्रेमपथिक' में अनेक स्थलों पर ऐसे वाक्य न केवल भविष्य की अनिश्चतता के भाव को गहराई प्रदान करते है, बल्कि कथा को नाटकीय रोचकता भी प्रदान करते हैं,

कौन जाता है उसे तम में छिपना होगा,[14]
कौन बतावे कैसा होगा इसका फल इसको,[15]
कौन जानता है या, यों ही पड़ी रहेगी डाली में[16]
कौन उठा सकता है धुँधला पट भविष्य का जीवन में[17]
कौन बता सकता है उसमें तेल न जलने पावेगा[18]

---

[12] 'प्रसाद ग्रंथावली'- खण्ड-1, पृ0- 87, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।
[13] 'प्रसाद ग्रंथावली'- खण्ड-1, पृ0- 88, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।
[14] 'प्रसाद ग्रंथावली'- खण्ड-1, पृ0- 87, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।
[15] 'प्रसाद ग्रंथावली'- खण्ड-1, पृ0- 88, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।
[16] 'प्रसाद ग्रंथावली'- खण्ड-1, पृ0- 88, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।
[17] 'प्रसाद ग्रंथावली'- खण्ड-1, पृ0- 88, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।
[18] 'प्रसाद ग्रंथावली'- खण्ड-1, पृ0- 88, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

कहना न होगा 'सज्जन' और 'कल्याणी परिणय' जैसे नाटकों की रचना के बाद खड़ीबोली में 'प्रेमपथिक' का रूपान्तरण इस नाटकीय औत्सुक्य और जिज्ञासा के कारण अधिक सफल बन पड़ा है।

x x x x x x x x x x x x x

सुन्दर कुटिया वह कैसी है रम्यतटी में सरिता के
शांत तपस्वी-सी वल्लरियों के झुरमुट से घिरी हुई।[19]

कुटिया के शांतमय वातावरण की व्यञ्जना यहाँ उसकी तुलना 'तपस्वी सी' कहकर की गई है। कुटिया की तुलना तपस्विनी से न करके तपस्वी से करना दोष कहा जायगा। किन्तु कुटिया को 'तपस्वी सी' कह देने से स्त्रीलिंग का बोध होता है और इस प्रकार लय के प्रवाह में पुल्लिंग प्रयोग से स्त्रीत्व भाव की व्यञ्जना यहाँ हुई है। कुटिया का वर्णन करते हुए कवि आगे लिखता है,

द्रुमदल आच्छादित कुटीर है, जिस पर लतिका चढ़ी हुई
ईश दया-सी छाई है, उसमें सामग्री एक नहीं[20]

लतिका ईश्वर की दया की भाँति छाई है अर्थात लतिका भी सघन है और प्रभु की कृपा भी इतनी अधिक है कि 'अभाव का अभाव होकर आवश्यकता पूरी है।' यहाँ 'अभाव का अभाव' कहने से मानो अभाव का भाव और भी बढ़ जाता है। व्यञ्जना यह है कि अभाव होने पर भी ईश्वर की दया से अभाव नहीं होता।

x x x x x x x x x x x x x

हाँ प्रभात होते ही अपने पथ पर तुम लग जाओगे।
और दुःखिनी यहीं अकेली ज्यों की त्यों रह जावेगी।[21]

तापसी द्वारा पथिक को रोकने के क्रम में यहाँ प्रथम पंक्ति में 'लग जाओगे' प्रयोग जीवन की सक्रियता के साथ उसकी यंत्रवत् क्रियाशीलता को सम्मिलित रूप में व्यञ्जित करता है। द्वितीय पंक्ति में 'रह जावेगी' कहकर कवि

---

[19] 'प्रसाद ग्रंथावली'- खण्ड-1, पृ0- 88, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

[20] 'प्रसाद ग्रंथावली'- खण्ड-1, पृ0- 88, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

[21] 'प्रसाद ग्रंथावली'- खण्ड-1, पृ0- 89, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

तापसी के स्थिर जीवन को गहराई प्रदान करता है। 'लग जाना' और 'रह जाना' इन दो विपरीत भावों को व्यक्त करने वाली क्रियाओं के माध्यम से कवि नियति के क्रम को दर्शाता है। इसी क्रम में आगे रजनी के लिये क्रमशः 'भीमा' और 'श्यामा' विशेषणों के प्रयोग द्वारा रात्रि की दो विपरीत विशेषताओं की व्यञ्जना भी द्रष्टव्य है,

प्रायः लोग कहा करते हैं- "रात भयानक होती है-
घोर कर्म्म भीमा रजनी के आश्रय में सब होते हैं।
किन्तु नहीं; दुर्जन का मन उससे भी तममय होता है
जहाँ सरल के लिये अनेक अनष्टि विचारे जाते हैं।
जिसकी संकीर्णता निरख, अंधकार भी घबराता हो
उस खल-हृदय से कही अच्छी होती है श्यामा रजनी
जहाँ दुःखी, प्रेमी, निराश सब मीठी निद्रा में सोते[22]

रात्रि भंयकर इसलिये है क्योंकि अंधकार की ओट में अनेक दुष्कर्म होते है। लेकिन दूसरे ही क्षण कवि को अहसास होता है कि रात्रि से अधिक भंयकर दुर्जन का हृदय है जहाँ सरल हृदय वालों के लिये अनिष्ट का विचार किया जाता है और इस प्रकार 'दुर्जन के मन' से तुलना के क्रम में कवि को रात की कोमलता स्पष्ट होती है। रात्रि कोमल है क्योंकि अंधकार के आश्रय में दुःखी मन वाला भी मीठी नींद सोता है। इस प्रकार विपरीत भावों को व्यक्त करने के लिये विपरीत क्रियाओं और विशेषणों के प्रयोग द्वारा काव्य भाषा का सौन्दर्य यहाँ द्रष्टव्य है।

x x x x x x x x x x x x x

---

[22] 'प्रसाद ग्रंथावली'- खण्ड-1, पृ0- 89-90, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

परिमलवाही शांत समीरण विमल मधुर मकरन्द लिये
चला आ रहा नये पथिक की तरह कुटी की ओर अहो
होकर अब निश्चिन्त पथिक लो बैठ गया समतल थल पर
किन्तु पवन वह लगा उलझने, बार बार बल खाता था
जहाँ-जहाँ कलियों को पाता उन्हें हिलाता जाता था।[23]

मकरन्द युक्त पवन नये पथिक की तरह मन्दगति से कुटी की ओर चला आ रहा है। अगले ही क्षण पथिक और पवन की क्रियाएँ अलग अलग हो जाती है। पथिक तो निश्चिन्त बैठ जाता है किंतु पवन कलियों से उलझने लगता है। पवन का मन्द गति से प्रवाहित होना, उसके प्रवाह से कलियों का हिलना और पथिक का निश्चिन्त बैठना—इस पूरे दृश्यांकन में जो गत्यात्मकता और सजीवता है, वह 'आँसू' और 'कामायनी' की सफल बिम्ब योजना का मानो आरम्भिक संकेत है। पथिक का निश्चिन्त बैठना और पवन का कलियों से उलझना इन दो विपरीत क्रियाओं के माध्यम से कवि पथिक द्वारा सुखद वातावरण में विश्राम करने का सजीव दृश्य उपस्थित करता है।

x x x x x x x x x x x x x

"शुभे! अतीत कथाएँ यद्यपि कष्ट हृदय को देती हैं
तो भी वज्र-हृदय कर अपना, उसको तुम्हें सुनाता हूँ
किन्तु समझना इसे कहानी इस पर कुछ न ध्यान देना
कष्ट न देना अपने मन को" -कहा पथिक ने गद्‌गद् हो-[24]

'शुभे', 'अतीत', 'कथाएँ', 'कष्ट', 'हृदय' और 'वज्र' आदि तत्सम शब्दों के बीच 'कहानी' शब्द का प्रयोग यहाँ कुछ खटकता है किन्तु इससे काव्यात्मक लय

[23] 'प्रसाद ग्रंथावली'- खण्ड-1, पृ0- 90, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।
[24] 'प्रसाद ग्रंथावली'- खण्ड-1, पृ0- 90, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

में कहीं भी बाधा नहीं पड़ती। यहाँ यह स्पष्ट कर देना भी उचित होगा कि तुकांतविहीन होते हुए भी 'प्रेमपथिक' में कवि कविता की लय को सुरक्षित रख सका है। यथास्थल विराम-चिह्नों और अर्धविराम-चिह्नों का प्रयोग कविता की स्वाभाविक लय को बनाये रखता है। जैसे काव्य के प्रवाह में 'इस पर कुछ न ध्यान देना' यदि अटपटा लगता है तो आगे 'कष्ट न देना अपने मन को' और 'कहा पथिक ने गद्‌गद् हो' इन दो वाक्यों की योजना द्वारा कवि कविता की लय तो बनाये ही रहता है, उसमें कथात्मक प्रभाव भी उत्पन्न करता है।

x x x x x x x x x x x x

हम दोनों भी नित्य परस्पर मिलकर खेला करते थे
नदी-कूल में, कुसुम-कुञ्ज में, ऊषा और सन्ध्या में भी
खिली चाँदनी में खिलते थे एक डाल में युगल कुसुम
चकई-चकवे से हम दोनो, रात व्यतीत अलग करते[25]

पथिक द्वारा अतीत के स्मरण के क्रम में उद्वृत अंश की प्रथम पंक्ति नितान्त वर्णनात्मक है लेकिन आगे की पंक्तियों में पथिक प्रकृति से आत्मीयता स्थापित कर अपने प्रेम को गहराई प्रदान करता है। पुतली और पथिक का दिनभर साथ रहना यदि एक ही डाल में विकसित युगल कुसुम की भाँति है तो रात में दोनों का अलग हो जाना चकवा चकई के प्रेम के समकक्ष है। इस प्रकार प्रेम की प्रगाढ़ता और निश्छलता को अभिव्यक्ति देने के लिये कवि रात में चकवा चकई की भाँति उन दोनों के अलग होने का उल्लेख करता है। काव्य रचना के आरम्भिक दौर में इतिवृत्तात्मकता के साथ कवि के काल्पनिक उन्मेष की झलक 'प्रेमपथिक' में इस प्रकार अनेक स्थलों पर देखी जा सकती है।

x x x x x x x x x x x x

---

[25] 'प्रसाद ग्रंथावली'- खण्ड-1, पृ0- 91, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

मैं भी पुलकित होकर दौड़ा जा पहुँचा चाचा के पास,

पूछा उनसे-'यह सब क्या है, क्या कुछ मुझे बताओगे?'

उनका मुख गम्भीर हुआ, पर एक लगा हँस कर कहने

बच्चा! यह फलदान जा रहा है चाचा की पुतली का[26]

पुतली का फलदान जाना प्रेमिका से पथिक के अलगाव का संकेत देता है। चूँकि पुतली का विवाह और पथिक के जीवन की हलचल दोनो ही बातें आपस में गहरा सम्बन्ध रखती हैं इसीलिये प्रसाद विवाह के आयोजन और पथिक के भग्न हृदय का अंकन प्राय: साथ-साथ करते हैं। जैसे-एक ओर शहनाई की आवाज है और दूसरी ओर पथिक के हृदय की झंकार। इसी प्रकार एक ओर घर के भरे हुए आँगन का कोलाहल है और दूसरी ओर पथिक द्वारा भव्य आयोजन को चुपचाप देखना। विवाह और हृदय की हलचल की जो प्रक्रिया फलदान से आरम्भ होती है उसकी समाप्ति फल के तरु से विलग होने से होती है-'भग्न-हृदय उस गृह से बिछुड़ा, जैसे टूटा फल तरु से!' और इसी के साथ पथिक मात्र पथिक न रहकर प्रेम पथ का पथिक हो जाता है,

सब अपने कामों में लगते, मैं अपने पथ पर चलता।

बह जाता था उषा-काल में दक्षिण मलयज सुखकारी

किसी वृक्ष के नीचे रहता प्रेम-पथिक थक कर सोया।[27]

पथिक के 'प्रेमपथिक' होने के बाद की इस स्थिति में प्रेमजन्य निराशा की अपेक्षा निराशा के बाद की निश्चिन्तता का बोध अधिक है। सब कुछ यथावत है, नियति का क्रम चलता रहता है और पथिक थक कर सो जाता है किन्तु तभी 'पी

---

[26] 'प्रसाद ग्रंथावली'- खण्ड-1, पृ0- 93, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

[27] 'प्रसाद ग्रंथावली'- खण्ड-1, पृ0- 95, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

कहाँ?' की मनोहर बोली पुनः इस निश्चिन्तता को तोड़ती है। चातक का अपने प्रिय से मिलन पथिक की विरहजन्य वेदना को कुरेदता है। यह 'विरह वन्हि' आँसुओं के बह जाने के बाद ही शांत होती है और अन्ततः,

> आशा तरुवर दूर दिखाई देता था—जिसकी छाया
> देती थी संतोष हृदय को उस मरुभूमि-निराशा में।[28]

इन दो पंक्तियों में ही प्रसाद के उस जीवन दर्शन का आभास होने लगता है जो आगे चलकर अन्ततः 'कामायनी' में परिपुष्ट होता है। जहाँ 'कामायनी' में कवि दुःख को ईश्वर का रहस्यमय वरदान कहता है वहीं 'प्रेमपथिक' में कवि उद्घोषित करता है कि, 'प्रेम प्रभु का स्वरूप है जहाँ कि सबको समता है।' 'कामायनी' में श्रृद्धा मनु को समझाती है कि ईश्वर के दिये हुए दुःख को सहर्ष स्वीकार करो। 'प्रेमपथिक' में चन्द्रबिम्ब से देवदूत सदृश निकला उज्जवल व्यक्ति प्रेमी पथिक को सम्पूर्ण विश्व में प्रिय को देखने का उपदेश देता है और जब प्रेमी पथिक सम्पूर्ण विश्व को 'प्रियतममय' देखता है तब 'कहाँ रहा तब द्वेष किसी से क्योंकि विश्व ही प्रियतम है;' और 'हो जब ऐसा वियोग तो संयोग वहीं हो जाता है।/यह संज्ञाएँ उड़ जाती हैं, सत्य सत्व रह जाता है।' यह 'सत्व' सुख दुःख और संयोग वियोग से परे है। यही वह तत्व है जिसे आगे चलकर 'कामायनी' में कवि आनन्द के रूप में स्वीकारता है। इस प्रकार यह कहना असंगत न होगा कि 'प्रेमपथिक' कवि के जीवन दर्शन के विकास का प्रथम सोपान है। वस्तुतः 'प्रेमपथिक' के प्रेमदर्शन में कवि का जीवन दर्शन निहित है।

'प्रेमपथिक' का प्रेमी पथिक जब तक प्रेम के व्यापक रूप को ग्रहण नहीं करता, दुखी रहता है लेकिन प्रेम यज्ञ में स्वार्थ और कामना को हवन कर

---

[28] 'प्रसाद ग्रंथावली'- खण्ड-1, पृ0- 95, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

देने पर व्यक्ति का अस्तित्व मिट जाता है और 'प्रेम सुधाकर' ही रह जाता है। प्रेम की इस नई व्याख्या के बाद एक नई चेतना और नये उत्साह के सजीव अंकन के लिये कवि उषा को माध्यम बनाता है। प्रेमी पथिक का मोह भंग होने के बाद आलस को साथ लिये रजनी का बीतना, वन विहंग के कलरव से निद्रा का टूटना और रविकर पाकर उषा का उठ खड़ा होना पहले की सारी मलिनता को मिटा देता है। यह मलिनता भीतर और बाहर दोनों की है लेकिन मलिनता मिटाने के इस क्रम में कवि उषा की तुलना प्रेयसी से करता है,

> रवि-कर पाकर उषा उठ खड़ी हुई अहो
> जैसे प्रिय कर का अवलम्बन किये प्रेयसी उठती है,[29]

यहाँ उषा की तुलना प्रेयसी से करना उषा काल की चेतना को उभारने की अपेक्षा उसकी अलसता को अधिक उकेरता है। इस प्रकार प्रेयसी से उषा की तुलना प्रसंगानुकूल न होने के कारण दृश्य की सजीवता में बाधक है।

प्रेमीपथिक का अतीत सुनने के बाद तापसी द्वारा पथिक को पहचानना स्वयं को उसके समक्ष प्रेमिका के रूप में प्रकट करना और अंत में पथिक द्वारा तापसी के रूप में अपनी प्रेमिका को पहचानना—यह सारी प्रक्रिया दयानिधि की लीला है जो पथिक के लिये आश्चर्य का विषय बनती है। पथिक द्वारा इस आश्चर्य की व्यञ्जना अनेक प्रश्नों के माध्यम से होती है,

> यह कैसा है वेश? तुम्हारा वह सब वैभव कहाँ गया?
> कहाँ स्निग्ध सौन्दर्य तुम्हारा? वह लावण्य कहाँ हैं अब?
> वे सब अलस कटाक्ष कहाँ है? वे घुँघराले बाल कहाँ?[30]

प्रश्नों द्वारा आश्चर्य की व्यञ्जना का क्रम एक भिन्न प्रकार के प्रश्न से टूटता है, 'वह उन्मादक रूप, शिशिर के बूँद-सदृश क्या ढुलक गया?' इस भिन्न प्रकार के

---

[29] 'प्रसाद ग्रंथावली'- खण्ड-1, पृ0- 97, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।
[30] 'प्रसाद ग्रंथावली'- खण्ड-1, पृ0- 97,98, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

प्रश्न में आश्चर्य की व्यञ्जना कम और तापसी के रूप में अपनी प्रेमिका के होने का बोध अधिक है जो आगे की पंक्ति में पूर्ण आश्वासन में बदल जाता है, 'नहीं नहीं-हाँ वही चमेली हो तुम, मेरी पुतली हो।' प्रश्नों द्वारा इस प्रकार भाव को गहराई प्रदान करना प्रसाद की काव्यभाषा की अपनी विशेषता है जो कथात्मक काव्य होने के कारण 'प्रेमपथिक' में अनेक स्थलों पर दिखाई देती है।

तापसी के रूप में पथिक अपनी प्रेयसी को पहचानता है और इसके बाद प्रेयसी द्वारा अपने अतीत की व्यथा सुनाने का क्रम चलता है। वैवाहिक जीवन की विसंगतियों को दर्शाने के बाद अन्ततः वह कहती है,

> तब से आकर यहीं बिताती हूँ जीवन दुःखमय अपना,
> खग-मृग सहचर हुए, यही झोपड़ी हुई मन्दिर अपना,
> जीवन-स्रोत बहा ले आया मुझको ऐसे स्थल पर
> इसे कहानी समझो अथवा स्वप्न कहो निज पुतली का[31]

कथा का यह मोड़ प्रेम को अधिक गरिमामय बनाता है। दीर्घ अन्तराल के बाद दोनों का मिलन संवेदनात्मक स्तर पर उनके प्रेम को अधिक गरिमा प्रदान करता है। पुतली के जीवन की व्यथा की कथा के ठीक बाद की पंक्ति है, 'फिर तो चारों दृग आँसू चौधारे लगे बहाने।' दोनों के नेत्रों से आँसू नहीं बह रहे हैं बल्कि चार दृग आँसुओं की चार धाराएँ बहा रहे हैं। 'चारों' और 'चौधारे' शब्दों का प्रयोग यहाँ अनुभूति के स्तर पर दोनों को एक करने की दृष्टि से किया गया है। दोनों शब्दों का साम्य यद्यपि स्वयं में सटीक है लेकिन तत्सम शब्दावली के मध्य

---

[31] 'प्रसाद ग्रंथावली'- खण्ड-1, पृ0- 99, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

'चौधारें' का प्रयोग काव्य सौन्दर्य की दृष्टि से उपयुक्त नहीं लगता।

x x x x x x x x x x x x

बीत रही थी रजनी भी, प्रति पत्तों से बूँदे हिम की

ढुलक रही थीं, वे सब दोनों के आँसू के साथ वहाँ[32]

दोहरी अर्थ छवियों द्वारा काव्यभाषा का सौन्दर्य यहाँ द्रष्टव्य है। 'प्रति पत्तों से बूंदे हिम की ढुलक रहीं थी, वे सब दोनों के आँसू के साथ वहाँ-' बाद की पंक्ति से जुड़ी पूरी पंक्ति यह अभिव्यञ्जित करती है कि आसुँओं के साथ ढुलकती हुई हिम की बूंदों के रूप में मानो प्रकृति भी आँसू बहा रही थी। इसी के साथ 'प्रति पत्तों से बूँदे हिम की ढुलक रहीं थी, वे सब दोनों के आँसू के साथ वहाँ, इस पूरी पंक्ति के साथ 'बीत रही थी रजनी भी'- यह पूर्व पंक्ति जुड़कर एक भिन्न प्रकार का अर्थ देती है। यद्यपि यह पंक्ति स्वयं में रात के बीतने और एक नई सुबह होने का संकेत देती है किन्तु 'बीत रही थी रजनी भी'- प्रतिपत्तों से बूँदे हिम की ढुलक रहीं थी-वे सब दोनों के आँसू के साथ वहाँ-इन तीनों पंक्तियों की क्रमशः संगति यह व्यञ्जित करती है कि रात बीतने के साथ हिम की बूँदे और दोनों के आँसू भी ढुलक रहे थे। रात बीतने और भोर होने के साथ हिम की बूदों का ढुलकना तो स्वाभाविक है लेकिन साथ ही दोनों के आँसुओं के ढुलक जाने का उल्लेख करके कवि उन दोनों के जीवन की नई सुबह का संकेत भी देता है।

x x x x x x x x x x x x x

---

[32] 'प्रसाद ग्रंथावली'- खण्ड-1, पृ0- 100, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

जीवन के पथ में सुख-दुख दोनों समता को पाते हैं,
जिसे देखकर सुखी आज सब लोग सराहा करते हैं
कौन कहेगा—वही मानसिक कितना कष्ट उठाता है,
अथवा, चिर दरिद्र को भी संतोष सुखी करता कितना

. . ..

चिर दुखी की सुख की आशा उसे असीम हर्ष देती
सुखी नित्य डरता रहता है ध्यान भविष्यत् का करके[33]

अन्ततः रात बीतने के साथ प्रेमी पथिक द्वारा पुतली को इस प्रकार समझाना सारे विषाद को समाप्त कर देता है—सुखदुख की परिभाषाएँ बदल जाती है और जीवन का सारा सौन्दर्य मानो इन परिभाषाओं में सिमट जाता है। बीती बातों को भूलकर दोनों प्रेम को विस्तार देते हैं। प्रेम को विस्तार देने से उन्हें क्षणिक वियोग का भय नहीं रहता। उनका सम्मिलन अक्षय होता है और अंत में,

लगी बनाने सोने का संसार तपन की पीत विभा
स्थिर हो लगे देखने दोनों के दृग-तारा,—अरुणोदय[34]

समग्रतः 'प्रेमपथिक' का मूल्यांकन करते समय यह बात विशेष रूप से ध्यान में रखनी होगी कि इसकी रचना कवि आठ वर्ष पूर्व ब्रजभाषा में कर चुका था। किसी भी कृति का अन्य, भले ही समक्षेत्रीय भाषा में रूपान्तरण कवि द्वारा अतिरिक्त सजगता और विवेकपूर्ण दृष्टि की अपेक्षा रखता है और यदि इस दृष्टि से

---

[33] 'प्रसाद ग्रंथावली'- खण्ड-1, पृ0- 100, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।
[34] 'प्रसाद ग्रंथावली'- खण्ड-1, पृ0- 102, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

देखा जाय तो इसमें संदेह नहीं कि 'प्रेमपथिक' अपने नये रूप में भाषा और संवेदना दोनों ही स्तरों पर अधिक प्रौढ़ काव्यकृति है। ब्रजभाषा से खड़ीबोली में रूपान्तरण प्रेम के मध्यकालीन रूप को एक आधुनिक छवि दे देता है, जिस वस्तु से लेखक विविध माध्यमों में विविध स्तरों पर जूझता रहा है। इस गहन रचना उपक्रम के संदर्भ में 'प्रेमपथिक' जैसे पहला महत्वपूर्ण कदम हो। इस प्रकार अपनी दोहरी रचना प्रक्रिया के कारण 'प्रेमपथिक' प्रसाद की काव्य यात्रा का वह महत्वपूर्ण पड़ाव है, जहाँ से प्रसाद की खड़ीबोली काव्ययात्रा प्रारम्भ होती है।

→
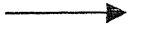
कानन कुसुम : प्रथम खड़ीबोली काव्यसंग्रह

प्रसाद ने ब्रजभाषा से खड़ीबोली के काव्यक्षेत्र में पदार्पण किया था। 'काननकुसुम' का प्रकाशन ब्रजभाषा से खड़ीबोली के उस मोड़ पर होता है जहाँ से प्रसाद पूर्णतया खड़ीबोली के मार्ग पर चलने का प्रयास करते हैं। काव्यभापा के संदर्भ में भाषा को सायास अपनाने का संकेत प्रस्तुत संकलन की अनेक कविताओं में मिलता है। 'काननकुसुम' के दूसरे संस्करण की कुछ कविताएँ यद्यपि ब्रजभापा में हैं और कुछ खड़ीबोली में, कुछ में खड़ीबोली और ब्रजभाषा दोनों का प्रयोग हुआ है लेकिन इसके तीसरे संस्करण में ब्रजभाषा के छिटपुट प्रयोगों के बावजूद कवि की काव्यभाषा का ढाँचा खड़ीबोली का आधार लेकर चला है। प्रकृति, विनय, भक्ति, इतिहास और पुराण आदि विभिन्न विषयों से सम्बद्ध 'काननकुसुम' की इन कविताओं के सम्बन्ध में स्वयं प्रसाद लिखते हैं, ''इसमें रंगीन और सादे, सुगन्ध वाले और निर्गन्ध, मकरन्द से भरे हुए, पराग में लिपटे हुए, सभी तरह के कुसुम हैं। असंयत भाव से एकत्र किये गये हैं।''[1] परम्परा और नवीनता दोनो को साथ लेकर चलने वाले इन विभिन्न विषयों की अभिव्यक्ति में कवि की काव्यभाषा का मूल्यांकन 'कानन कुसुम' के तीसरे संस्करण की कुछ कविताओं के माध्यम से इस रूप में है,

'कानन कुसुम' की पहली कविता 'प्रभो' शब्द प्रयोग और वाक्य रचना की दृष्टि से शिथिल प्रतीत होती है। भावों का आवेग और उतार चढाव यहाँ नहीं मिलता। ऐसा लगता है जैसे भावों को एक एक करके क्रमबद्ध किया गया है। कुल मिलाकर भाषा और भाव दोनें ही दृष्टियों से 'कानन कुसुम' की यह पहली कविता कवि द्वारा खड़ीबोली के आरम्भिक प्रयोग का संकेत देती है,

---

[1] 'प्रसाद का काव्य'-पृ0-133, प्रेमशंकर

विमल इन्दु की विशाल किरणें
प्रकाश तेरा बता रही है
अनादि तेरी अनन्त माया
जगत् को लीला दिखा रही है[2]

यहाँ इन्दु जो विमल है, उसकी किरणों के लिये 'विशाल' विशेषण संगत प्रतीत नहीं होता। चन्द्रमा की विशाल किरणों का प्रकाश सर्वत्र फैला है। यह प्रकाश ईश्वर की अनादि और अनन्त माया का बोध करा रहा है। सर्वत्र व्याप्त ईश्वर की असीम माया को दर्शाने की दृष्टि से 'विशाल' विशेषण भले ही उपयुक्त हो किंतु चन्द्रमा की किरणों को 'विशाल' कहना रसबोध में बाधा ही उत्पन्न करता है। आगे क्रमशः ईश्वर की दया के रूप में सागर की तरंग मालाएँ दिखाई देती हैं, चन्द्रमा की चाँदनी 'प्रभो' की मुस्कान है और निनाद करती हुई नदियाँ उसकी हँसी के रूप में हैं। प्रकृति पद्मिनी को विकसित और पल्लवित करने वाला सूर्य तथा सम्पूर्ण सृष्टि रूप असीम उपवन को सजाने और सँवारने वाला माली ईश्वर ही है। अनन्तः कवि ऐसे ईश्वर की दया की आकाँक्षा करता है क्योंकि ये सब कुछ उसे ईश्वर की दया के रूप में दिखाई दे रहा है।

'वन्दना' में कवि प्रभु के कृपालु रूप पर मुग्ध है। प्रसाद की काव्यभाषा के विकास क्रम में चित्र की गत्यात्मकता 'वन्दना' की निम्न पंक्तियों के माध्यम से द्रष्टव्य है,

गद्गद्-हृदय-निःसृता यह भी वाणी दौड़ी जाती है
प्रभु! तेरे चरणों में पुलकित होकर प्रणति जताती है[3]

गद्गद् हृदय से निःसृत कवि की वाणी दौड़ती है और प्रभु के चरणों में प्रणत होकर अपने प्रेम को प्रदर्शित करती है—इस पूरे दृश्यांकन में यद्यपि वाणी जैसे

---

[2] 'प्रसाद ग्रंथावली'- खण्ड-1, पृ0- 145, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।
[3] 'प्रसाद ग्रंथावली'- खण्ड-1, पृ0- 147, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

अमूर्त तत्व के माध्यम से चित्र को गत्यात्मक बनाने की कोशिश है लेकिन कहना न होगा कि सम्पूर्ण चित्र बड़े ही स्थूल स्तर पर मन को छू पाता है। ओतप्रोत होने पर भी वाणी द्वारा प्रभु की निर्विकार लीला का गुणगान करना अथवा गद्गद् हृदय से निकल कर उसका दौड़ना—भक्ति में तन्मयता की स्थिति को उभारता नहीं बल्कि उसकी व्यंजना का असफल प्रयास ही प्रतीत होता है।

'नमस्कार' शीर्षक कविता के निम्न उद्धरण में कवि की विराट कल्पना ईश्वर के विश्वव्यापी रूप को सही अर्थो में उजागर करती है,

> जिसके हैं आराम प्रकृति-कानन ही सारे
> जिस मंदिर के दीप इन्दु, दिनकर औ' तारे[4]

यहाँ सम्पूर्ण सृष्टि को मंदिर कहने से उस विराटता का बोध नहीं होता किंतु सूर्य चन्द्रमा और नक्षत्रों की उस मंदिर के दीपक के रूप मे परिकल्पना ईश्वर के सृष्टि रूप मंदिर की विराटता को अर्थ देती है। 'ही' और 'औ' का प्रयोग लयात्मक संगति की दृष्टि से हुआ है। और के स्थान पर 'औ' का प्रयोग यद्यपि विशेष महत्व नहीं रखता किंतु 'ही' का प्रयोग पंक्ति में नितान्त अनावश्यक लगता है।

इस प्रकार 'काननकुसुम' की आरम्भिक चार पाँच कविताओं में ईश्वर के इसी सर्वव्यापी रूप, और उसके द्वारा रची गई सम्पूर्ण सृष्टि के प्रति एक विशेष प्रकार के आकर्षण, आश्चर्य और जिज्ञासा का भाव देखा जा सकता है। इस क्रम में नितान्त वर्णनात्मक 'मंदिर' शीर्षक कविता से निम्न पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं,

> इस भाव को हमारे उसको तो देख लीजे
> धरता है वेश वो ही जैसा कि उसको दीजे
> यों ही अनेक-रूपी बनकर कभी पुजाया
> लीला उसी की जग में सबसे वही समाया[5]

---

[4] 'प्रसाद ग्रंथावली'- खण्ड-1, पृ0- 148, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

[5] 'प्रसाद ग्रंथावली'- खण्ड-1, पृ0- 150, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

यहाँ 'कभी' प्रयोग के कारण प्रथम पंक्ति की अर्थवत्ता तो संदेहास्पद है ही, 'पुजाया' क्रिया-प्रयोग भी दोषयुक्त है। प्रसाद की काव्यभाषा के संदर्भ में यह महत्वपूर्ण है कि जब वह ब्रजभाषा को छोड़कर खड़ीबोली को अपनाते हैं, तो आरम्भ में ही 'पुजाया' जैसे दोषयुक्त प्रयोगों के बावजूद उसमे द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मकता से अलग छायावादी काव्यभाषा की सम्भावनाएँ दिखाई देने लगतीं हैं। उनके इस पहले ही खड़ीबोली काव्य-संग्रह की 'प्रथम प्रभात' शीर्षक कविता इस संदर्भ में विशेष रूप से उल्लेखनीय है जहाँ कवि सघन-अर्थयोजना को खड़ीबोली में सफलतापूर्वक रूपायित कर सका है। दूसरी ओर कवि की अन्तिम प्रौढ़तम काव्यकृति 'कामायनी' में भी खड़ीबोली के कुछ त्रुटिपूर्ण प्रयोग मिल जाते हैं। पूर्व संदर्भ को जोड़ते हुए यह कहना होगा कि 'प्रथम प्रभात' न केवल प्रसाद के सम्पूर्ण काव्य विकास में बल्कि आधुनिक खड़ीबोली काव्यभाषा के विकास में वह महत्वपूर्ण मोड़ है जहाँ वह द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मकता को छोड़कर संश्लिष्ट भाषिक विधान को अपनाती है। यहाँ पहली बार अर्थ के दुहरे तिहरे अर्थ एक साथ खुलते चलते हैं,

> सद्यःस्नात हुआ फिर प्रेम-सुतीर्थ
> मन पवित्र उत्साहपूर्ण भी हो गया
> विश्व विमल आनन्द भवन सा बन रहा
> मेरे जीवन का वह प्रथम प्रभात था[6]

प्रातः काल और प्रथम प्रणय का चित्रण यहाँ कवि एक साथ करता है, इसी के समानान्तर परमसत्ता से साक्षात्कार का अनुभव भी एक तीसरे स्तर पर छिपा हुआ है। इस प्रकार सघन अर्थ-योजना खड़ीबोली काव्यभाषा के वैशिष्ट्य के रूप में यहाँ पहली बार दिखाई देती है।

---

[6] 'प्रसाद ग्रंथावली'- खण्ड-1, पृ0- 158, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

'प्रथम प्रभात' से अलग महाक्रीड़ा की शैली यद्यपि इतिवृत्तात्मक है किंतु प्रात: कालीन प्रकृति सौन्दर्य और अज्ञात के प्रति जिज्ञासा की अभिव्यक्ति में कवि कल्पना का उन्मेष यहाँ द्रष्टव्य है,

देव दिनकर क्या प्रभा-पूरित उदय होने को हैं
चक्र के जोड़े कहो क्या मोदमय होने को हैं
वृत्त आकृत कुंकुमारुण कज्ज-कानन-मित्र है
पूर्व में प्रकटित हुआ यह चरित जिसका चित्र है
कल्पना कहती है, कन्दुक है महाशिशु-खेल का
जिसका है खिलवाड़ इस संसार में सब मेल का[7]

उपर्युक्त उद्धरण में सृष्टि रचयिता की 'महाशिशु' और सूर्य की उसके कन्दुक के रूप में कल्पना सर्वथा मौलिक है। सम्पूर्ण सृष्टि को रचने वाले ईश्वर को शिशु कहना—कहीं भी उसकी विराटता को कम नहीं करता। इस संदर्भ में 'महाशिाशु' और 'खिलवाड़' शब्दों का प्रयोग विशेष रूप से विचारणीय है। शिशु के स्थान पर महाशिशु का प्रयोग ईश्वर के विराट रूप को अर्थ देता है और खिलवाड़ का प्रयोग समस्त सृष्टि के कार्यो को संचालित करने वाले ईश्वर की सर्वशक्तिमत्ता एवं लीला को व्यक्त करता है। सृष्टि के सम्पूर्ण क्रियाकलाप उस महाशिशु का 'खिलवाड़' है। कहना न होगा विशुद्ध संस्कृत शब्दों के मध्य 'खिलवाड़' जैसा ठेठ प्रयोग यहाँ अपनी व्यंजना में पूर्णत: सफल है जो 'महाशिशु' की 'महाक्रीड़ा' को वस्तुत: अर्थ देता है।

प्रिय और प्रियतम के अन्तर्सम्बन्धों की व्याख्या कवि 'मर्मकथा' में करता है। 'मर्मकथा' और 'हृदय वेदना' का कथ्य लगभग एक है। दोनों ही कविताओं में

---

[7] 'प्रसाद ग्रंथावली'- खण्ड-1, पृ0- 154, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

प्रसाद क्रमशः 'मर्मवेदना' और 'हृदयवेदना' का मानवीकरण करते है। प्रेमजनित वेदना ही कवि के प्रेम को सुदृढ आधार प्रदान करती है। 'मर्मकथा' में वह कहता है, 'हम तुम जब है एक, लोग बकते फिरें' कहना न होगा यहाँ 'बकते' जैसा चलता प्रयोग जहाँ कवि के प्रेम को एकनिष्ठता का आधार प्रदान करता है वहीं 'हृदय वेदना' के अन्तर्गत वेदना का प्रिय की 'तिरछी चितवन भी पा करके तुरत तुप्ट' हो जाना आदि प्रसंगों की उद्भावना में ब्रजभाषा काव्य का संस्कार स्पष्ट है। समग्रतः वेदना की व्यथा का प्रस्तुतीकरण दोनों ही कविताओं में परम्परागत है।

ग्रीष्म के प्रचण्ड ताप से संतप्त प्राणिजगत की आकुलता का चित्र 'ग्रीष्म का मध्याह्न' में और उस संताप से मुक्ति का आह्वान 'जलद आह्वान' में है। 'कानन कुसुम' की प्रकृति सम्बन्धी कविताओं में कवि की भाषा क्रमशः चित्रात्मकता और बिम्ब-प्रयोगों की ओर उन्मुख होती दिखाई देती है। यद्यपि इन कविताओं में भी कहीं कहीं प्रकृति वर्णन परम्परागत है किंतु कुछ चित्र अत्यन्त सजीव हैं,

स्वेद धूलि-कण घूप-लपट के साथ लिपटकर चलते हैं
जिनके तार व्योम से बँधकर ज्वाला-ताप उगिलते हैं[8]

वायुमंडल में व्याप्त प्रचण्ड ताप और उस ताप में व्योम से धरती तक पंक्तिबद्ध रूप में चमकते हुए धूल के कण अग्नि की ज्वालाओं के रूप में दिखाई देते हैं और 'ग्रीष्म के मध्याह्न' का सजीव दृश्य उपस्थित करते हैं। क्रमशः ग्रीप्म के प्रचण्ड ताप से संतप्त धरती की मुक्ति का आह्वान करता हुआ कवि 'जलद आह्वान' में कहता हैं,

नेंत्र-निर्झर सुख-सलिल से भरें, दुःख सारे भगें
शीघ्र आ जाओ जलद! आनन्द के अंकुर उगें[9]

---

[8] 'प्रसाद ग्रंथावली'- खण्ड-1, पृ0- 163, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

[9] 'प्रसाद ग्रंथावली'- खण्ड-1, पृ0- 164, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

यहाँ 'भरें', 'भगें' और 'उगें' जैसे क्रिया प्रयोग ध्वनि साम्य की दृष्टि से तो उक्तियुक्त हैं किंतु बोलचाल की भाषा में प्रयुक्त 'भगें' क्रिया प्रयोग दु:ख के संदर्भ में असंगत ही प्रतीत होता है।

'कानन कुसुम' की प्रकृति सम्बन्धी एक अन्य कविता 'रजनी गन्धा' का कुछ अंश द्रष्ठव्य है,

देखो मन्थर गति से मारुत मचल रहा है
हरी-हरी उद्यान लता में बिछल रहा है[10]

मारुत प्रवाहित होता है मचलता या बिछलता नहीं। किन्तु उद्यान की लताओं के मध्य रुक-रुक कर आगे बढ़ते मारुत की गति की अभिव्यक्ति में 'मचलना' और 'बिछलना' क्रियाएँ बड़ी सार्थक है। बिना किसी बाधा के मारुत प्रवाहित हो सकता है किंतु बाधा रूप में उपस्थित लताओं के पत्तों के बीच उलझता मारुत 'मचल' या 'बिछल' ही सकता है। प्रथम पंक्ति में जहाँ मारुत का मन्थर गति से मचलना वर्ण साम्य के कारण सौन्दर्य वृद्धि में सहायक है वहीं दूसरी पंक्ति में अपनी समान अर्थवत्ता के कारण मचलना के समकक्ष लोकभाषा में प्रयुक्त बिछलना क्रिया प्रयोग भी सटीक बैठता है। प्राकृतिक उपादान मारुत पर मानवीय जीवन की इन क्रियाओं के आरोप के कारण प्रसाद की काव्यभाषा क्रमश: छायावादी बिम्ब प्रयोगों की ओर उन्मुख होती है।

लयात्मक परिवर्तन द्वारा काव्यभाषा का सौन्दर्य 'ठहरो' शीर्षक कविता के अन्तर्गत निम्न पंक्तियों के माध्यम से द्रष्टव्य है,

---

[10] 'प्रसाद ग्रंथावली'- खण्ड-1, पृ0- 168, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

तनक न जाओ मित्र! तनिक उसकी भी सुन लो
जो कराहता खाट धरे, उसको कुछ गुन लो
कर्कश स्वर की बोल कान में न सुहाती है
मीठी बोली तुम्हें नहीं कुछ भी आती है
उसके नेत्रों में अश्रु है, वह भी बड़ा समुद्र है
अभिमान-नाव जिस पर चढ़े वह तो अति ही छुद्र है[11]

चार पंक्तियों के बंध के उपरांत अंतिम दो पंक्तियों में लयात्मक परिवर्तन द्वारा कवि नम्रता का निवेदन करता है उसकी दृष्टि में अभिमान की नौका पर चढ़ने वाला व्यक्ति अति क्षुद्र है। मार्ग में कातर दृष्टि से निहारते हुए व्यक्ति के समक्ष किसी का अश्व वेगपूर्वक कैसे आगे बढ़ सकता है? उस अश्व को ठहरने का उपदेश कवि 'ठहरो' में देता हैं 'तनक' और 'तनिक' जैसे सुन्दर शब्द साम्य और 'खाट धरे', 'गुन लो', 'रुख नहीं देते', 'वह भूलो भाई' जैसे चलताऊ वाक्य प्रयोगों के कारण यहाँ कवि की काव्यभाषा बदलती हुई दिखाई देती है और इस प्रकार अपनी विशेष छंद-योजना और शब्द-संयोजन दोनों ही दृष्टियों से 'ठहरो' 'कानन-कुसुम' की कविताओं में अलग स्थान रखती है।

तत्समता प्रसाद की काव्यभाषा की प्रमुख विशेषता है किंतु, 'ठहरो' की भाँति 'कानन-कुसुम' की कुछ कविताओं में प्रसाद तत्समता के आग्रह से मुक्त दिखाई देते है। इन कविताओं में तत्सम शब्दों का प्रयोग जहाँ अपेक्षाकृत कम मिलता है, वहीं नितान्त व्यावहारिक वाक्य रचना कवि की काव्यभाषा को 'कानन कुसुम' की अन्य कविताओं की भाषा से पृथक रूप प्रदान करती है। भाषा के ये दोनों ही रूप निम्न उद्धरणों के माध्यम से स्पष्ट है,

---

[11] 'प्रसाद ग्रंथावली'- खण्ड-1, पृ0- 175, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

चन्द्रिका दिखता रही है क्या अनूपम सी छटा

खिल रही हैं कुसुम की कलियाँ सुगन्धों की घटा

सब दिगन्तों में जहाँ तक दृष्टि-पथ की दौड़ है

सुधा का सुन्दर सरोवर दीखता बेजोड़ है[12]

x x x x x x x x x

हँसते हो तो हँसो खूब, पर लोट न जाओ

हँसते-हँसते आँखों से मत अश्रु बहाओ

ऐसी क्या है बात? नहीं जो सुनते मेरी

मिली तुम्हें क्या कहो कहीं आनँद की ढेरी[13]

स्पष्ट है जहाँ 'जल-विहारिणी' के पहले उद्धरण में 'दौड़' और 'बेजोड़' जैसे एक दो शब्दों को छोड़कर 'चन्द्रिका', 'अनूपम', 'दिगन्त' और 'दृष्टिपथ' आदि तत्सम शब्दों का बाहुल्य है वहीं 'बालक्रीड़ा' के दूसरे उद्धरण में 'अश्रु' और 'आनन्द' जैसे एक दो शब्दों के अलावा 'खूब', 'आँखों' और 'ढेरी' आदि चलते शब्दों का आधिक्य हैं। कहना न होगा यद्यपि ये कविताएँ अपवाद रूप में ही हैं किंतु अपनी भिन्न प्रकृति के कारण कवि की काव्यभाषा को नया आयाम देती हैं।

सौन्दर्य के प्रति प्रसाद का व्यापक दृष्टिकोण 'सौन्दर्य' शीर्षक कविता में फलीभूत हुआ है। व्यापक सौन्दर्य ही सत्य है। सभी किसी न किसी आकर्षण में बँधे हैं। चातक बादलों पर, चकोर चन्द्रमा पर और भ्रमर कमल पर मुग्ध है। समस्त मानवीय और प्राकृतिक सौन्दर्य 'दिव्य शिल्पी' के कौशल से उद्भूत है। सौन्दर्य की कड़ी आँच में 'लौह हिय' भी पिघल जाता है,

---

[12] 'प्रसाद ग्रंथावली'- खण्ड-1, पृ0- 173, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

[13] 'प्रसाद ग्रंथावली'- खण्ड-1, पृ0- 177, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

है यही सौन्दर्य में सुषमा बड़ी
लौह-हिय को आँच इसकी ही कड़ी[14]

सौन्दर्य की कड़ी आँच कहने में सौन्दर्य की सुषमा और भी निखर उठी है। सौन्दर्य जैसे कोमल भाव वाले शब्द के संदर्भ में 'लौह हिय' और 'कड़ी आँच' का प्रयोग उसकी चरम-शक्ति को संकेतित करता है। विपरीत भावबोध वाले शब्दों के प्रयोग से प्रसाद की काव्यभाषा का सौन्दर्य 'सौन्दर्य' में निखर उठा है।

'दलित कुमुदनी' जो आज कालचक्र की गति से कण्टकाकीर्ण मार्ग में पड़ी है, उसके सुखमय अतीत की व्यंजना में कवि कल्पना को सौन्दर्य द्रष्टव्य है,

इन्दु किरण की फूलझड़ी जिसका मकरन्द गिराती थी
चण्ड दिवाकर की किरणें भी पता न जिसका पाती थीं[15]

प्रथम पंक्ति में जहाँ इन्दु की किरणों के लिये 'फूलझड़ी' का रूपक उसकी कोमलता को मूर्त करता है वहीं दूसरी पंक्ति में 'चण्ड' विशेषण का प्रयोग दिवाकर की किरणों के तीखेपन को अभिव्यक्ति देता है। चन्द्रमा की कोमल किरणों का स्पर्श तो कुमुदनी को प्राप्त था किंतु हरे लता कुञ्जों की छाया के कारण प्रचण्ड सूर्य की किरणें कुमुदनी तक नही पहुचतीं थीं। उल्लेखनीय है कि प्रथम पंक्ति में कवि इन्दु की किरणों के लिये 'फूलझड़ी' के रूपक का प्रयोग करता है और दूसरी पंक्ति में दिवाकर की किरणों के लिये किसी रूपक को न रखकर 'चण्ड' विशेषण का प्रयोग करता है। इस प्रकार रूपक और विशेषण के प्रयोग द्वारा यहाँ विरोधी गुणों वाली किरणों की विशेषता समान रूप से उजागर होती है।

---

[14] 'प्रसाद ग्रंथावली'- खण्ड-1, पृ0- 179, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।
[15] 'प्रसाद ग्रंथावली'- खण्ड-1, पृ0- 183, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

'काननकुसम' की कुछ कविताओं में जहाँ दोषयुक्त शब्दों और अस्पष्ट वाक्य प्रयोगों के कारण प्रसाद की काव्यभाषा शिथिल प्रतीत होती है, वहीं वर्णसाम्य और तत्सम शब्दों के संयोजन से लयात्मक सौन्दर्य उत्पन्न करने की कोशिश भी कुछ कविताओं में है। इस दृष्टि से 'खञ्जन' शीर्षक कविता विशेष रूप से महत्वपूर्ण है जहाँ कोमल शब्दावली और अनुप्रास का सुन्दर प्रयोग वस्तुतः प्रसंशनीय है,

मल्लिका मँहकी, अली-अवली मधुर मधु से छकी
एक कोने की कली भी गन्ध-वितरण कर सकी
बह रही थी कूल में लावण्य की सरिता अहो
हँस रही थी कल-कलध्वनि से प्रफुल्लितगात हो

....

कौन नीलोज्जवल युगल ये दो यहाँ पर खेलते
हैं झड़ी मकरन्द की अरविन्द में ये झेलते
क्या समय था, ये दिखाई पड़ गये, कुछ तो कहो।
सत्य! क्या जीवन-शरद के ये प्रथम खंजन अहो[16]

ब्रजभाषा से खड़ीबोली के काव्य क्षेत्र में पर्दापण और खड़ीबोली में भी काव्य रचना के आरम्भिक चरण में मधुर शब्दावली और लयगत माधुर्य के कारण खड़ीबोली का सौन्दर्य यहाँ वस्तुतः निखर उठा है। जीवन के जिस प्रथम प्रभात का उल्लेख 'प्रथम प्रभात' के अन्तर्गत हुआ था, उसका सूक्ष्म संकेत भी यहाँ मिलता है ('सत्य! क्या जीवन शरद के ये प्रथम खंजन अहो')-जहाँ सम्पूर्ण चित्र की वर्णनात्मकता अन्तिम पंक्ति के माध्यम से अर्थगत सधनता का सूक्ष्म संकेत भी देती है।

---

[16] 'प्रसाद ग्रंथावली'- खण्ड-1, पृ0- 190, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

प्रकृति, विनय और भक्ति सम्बन्धी उपर्युक्त कविताओं के अतिरिक्त 'चित्रकूट', 'भरत', 'शिल्प सौन्दर्य', 'कुरूक्षेत्र', 'वीर बालक' और 'श्रीकृष्ण जयन्ती'— ये छः कविताएँ हैं जिनमें कवि पौराणिक और ऐतिहासिक कथानकों को आधार बनाता है। विषय और भाव की दृष्टि से 'कानन कुसुम' की प्रायः सभी कविताएँ नवीनता से अनुप्राणित हैं, ये कविताएँ भी अपवाद नहीं हैं। यहाँ कवि पौराणिक और ऐतिहासिक आख्यानों के माध्यम से अपने जीवन दर्शन की आरम्भिक व्यंज्जना देता है। किसी घटना का वर्णन न करके वह इतिवृत्तात्मकता से बचा है और इस दृष्टि से 'काननकुसुम' की ये सभी आख्यानक कविताएँ गुप्त जी आख्यानक कविताओं से नितान्त भिन्न हैं।

आख्यानक कविताओं में भाषा का अपेक्षाकृत प्राज्जल रूप दिखाई देता है। असंगत शब्दों, अस्पष्ट कथनों और ब्रजभाषा प्रयोगों का यहाँ प्रायः अभाव है। 'चित्रकूट' शीर्षक कविता से एक चित्र द्रष्टव्य है जहाँ प्रकृति के सम्पूर्ण क्रियाकलाप पूरे चित्र को गत्यात्मक बनाते हुए भी रात्रि की नीरवता को भंग नहीं करते,

शान्त नदी का स्रोत बिछा था अति सुखकारी
कमल-कली का नृत्य हो रहा था मनहारी
बोल उठा जो हंस देखकर कमल-कली को
तुरत रोकना पड़ा गूँजकर चतुर अली को

हिली आम की डाल, चला ज्यों नवल हिंडोला
'आह कौन है' पञ्चम स्वर से कोकिल बोला
मलयानिल प्रहरी सा फिरता था उस वन में
शान्ति शान्त हो बैठी थी कामद कानन में[17]

[17] 'प्रसाद ग्रंथावली'- खण्ड-1, पृ0- 209, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

कमल कली नृत्य कर रही है। उसके नृत्य को देखकर हंस बोल उठता है। हंस के बोलने पर भ्रमर उसे रोकता है। नवल हिंडोले के चलने पर आम की डाल हिलती है और कोकिल पञ्चम स्वर में बोल उठता है। कहना न होगा प्रकृति के इन सम्पूर्ण कार्य व्यापारों के बावजूद कामद कानन में शान्ति बने होने का यह चित्र अद्वितीय है। शान्ति के शान्त होकर बैठने में शान्ति का वातावरण और भी उजागर होता है जो प्राकृतिक गतिविधियों के संचरित होने के बावजूद बाधित नहीं होता।

'भरत' शीर्षक कविता में कवि की राष्ट्रीय चेतना मुखरित हुई है। भरत भारत के गौरव का प्रतीक है जिसके नाम पर ही इस 'वरभूमि' का नाम भारत पड़ा—इस केन्द्रीय भाव को व्यक्त करने वाली इस लघु आख्यानक कविता में दुष्यन्त पुत्र भरत द्वारा सिंह-शावक के दाँत गिनने के प्रसंग को रोचक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। कवि की राष्ट्रीय चेतना को मुखारित करे वाली इस कविता में खड़ीबोली का स्वच्छ और प्राञ्जल रूप दिखाई देता है।

'शिल्प सौन्दर्य' में कवि यह स्थापित करता है कि सृजन ही सौन्दर्य है। धर्मजन्य प्रतिहिंसा ने साहित्य, विज्ञान और शिल्प के अमूल्य नमूने नष्ट कर दिये इसलिये विध्वंस का प्रतिशोध विध्वंस नहीं है। इसके लिये कवि ऐतिहासिक कथानक को आधार बनाता है। कविता का आरम्भ 'कोलाहल क्यो मचा हुआ है?' की जिज्ञासा और कौतूहल के साथ होता है। 'कोलाहल' शब्द आरम्भ में ही युद्ध, संघर्ष और विध्वंस की आशंका को अभिव्यक्ति देता है। इस आशंका के प्रत्युत्तर में दो विकल्प दिखाई देते हैं,

> महाकाल का भैरव गर्जन हो रहा
> अथवा तोपों के मिस से हुंकार यह
> करता हुआ पयोधि प्रलय का आ रहा[18]

---

[18] 'प्रसाद ग्रंथावली'- खण्ड-1, पृ0- 216, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

महाकाल का भैरव गर्जन हो रहा है अथवा तोपों के बहाने प्रलय का पयोधि हुंकार भर रहा है। 'शिल्प सौन्दर्य' के उपर्युक्त उद्धरण में दोनों ही विकल्प युद्ध के माहौल की भूमिका बनाते हैं। धार्मिक और पौराणिक आख्यान से जुड़े 'भैरव' शब्द का महाकाल की गर्जना के संदर्भ में प्रयोग बड़ा युक्तियुक्त बन पड़ा है जो सचमुच धर्मजन्य प्रतिहिंसा और महाकाल के गर्जन की भयंकरता को सफलतापूर्वक रूपायित करता है। इसी प्रकार खूँखार जीव की वाणी के लिये प्रयुक्त 'हुंकार' शब्द का 'प्रलय पयोधि' के संदर्भ में प्रयोग भी युद्ध की भयंकरता को उभारता है। 'प्रलय पयोधि' का प्रयोग वर्णसाम्य की दृष्टि से भी सुन्दर है। 'शिल्प सौन्दर्य' से ही एक अन्य उद्धरण द्रष्टव्य है,

मुगल-अदृष्टाकाश-मध्य अति तेज से
धूमकेतु से सूर्यमल्ल समुदित हुए
सिंहद्वार है खुला दीन के मुख सदृश
प्रतिहिंसा पूरित वीरों की मण्डली
व्याप्त हो रही है दिल्ली के दुर्ग में[19]

आलमगीर द्वारा आर्य मंदिरों के खुदवा दिये जाने पर सूर्यमल्ल शीघ्रतापूर्वक उठ खड़े हुए और मुगल साम्राज्य के अदृष्ट आकाश के मध्य धूमकेतु से उदित हुए। गति की तीव्रता और विध्वंस जनित अनिष्ट की आशंका की अभिव्यक्ति के लिये शायद धूमकेतु से सटीक दूसरा उपमान सम्भव नहीं था। इसी प्रकार 'सिंहद्वार' का दीन के मुख के सदृश खुला रहना शक्ति के पराभव को संकेतित करता है।

---

[19] 'प्रसाद ग्रंथावली'- खण्ड-1, पृ0- 217, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

'काननकुसुम' की चौथी आख्यानक कविता 'कुरुक्षेत्र' के अन्तगत कृष्ण के विशद चरित्र को आधार बनाया गया है। गोप सखाओं के साथ बाँसुरी बजाते कृष्ण की मधुर लीलाओं के चित्रण के बाद सुभद्रा और पार्थ का विवाह, वीर वार्हद्रथ की मृत्यु, पांडवों के संरक्षक के रूप में धर्मराज्य की स्थापना, राजसूय यज्ञ में शिशुपाल वध की प्रमुख घटनाओं का संकेत देते हुए अनन्तः कृष्ण के माध्यम से 'कर्म' की महत्ता का प्रतिपादन ही कविता का केन्द्रीय भाव है। कविता के अन्तर्गत 'दन्त-अवली' का 'नील धन की वारि धारा सी' होने में जहाँ काव्यशास्त्रीय रूढ़ियों के प्रयोग की औपचारिकता है वहीं 'सड़े से स्वार्थ' जैसे प्रयोगो के अन्तर्गत खड़ीबोली के आरम्भिक काव्यभाषिक प्रयोग का कच्चापन भी देखा जा सकता है।

धार्मिक साहिष्णुता और धर्मान्धता का विरोध 'वीर बालक' में है। इसके लिये कवि फतहसिंह और जोरावर सिंह पर धर्म परिवर्तन के लिये किये गये अत्याचारों को माध्यम बनाता है। चूँकि कथानक ऐतिहासिक है, इसलिये कवि ऐतिहासिक संदर्भो से जुड़ी शब्दावली का प्रयोग करता है। प्रसंगानुसार 'सरहिन्द', 'सूबा', 'वाहगुरू' और 'यवन' आदि शब्दों के प्रयोग के कारण कवि की काव्यभाषा तदयुगीन वातावरण को मूर्त करने में सफल रही है। कवि द्वारा प्रयुक्त दो बिलकुल मौलिक उपमाएँ और उन उपमाओं के माध्यम से गत्यात्मक बिम्ब की सर्जना द्रष्टव्य है,

राक्षस से रक्षा करने को धर्म की
प्रभु पाताल जा रहे हैं युगमूर्ति से
अथवा जिनकी नाल नहीं दिखला रही
ऐसे दो स्थलपद्म खिले सानन्द हैं[20]

---

[20] 'प्रसाद ग्रंथावली'- खण्ड-1, पृ0- 225, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

यवनों द्वारा ईटों से चुने जाते हुए जोरावर सिंह और फतह सिंह का शरीर धीरे-धीरे अदृष्ट हो रहा है। दोनों भाइयों की क्रमशः अदृश्यता को स्थापित के लिये कवि पाताललोक में उतरते हुए प्रभु की युगमूर्ति का बिम्ब प्रस्तुत करता है। यहाँ पाताललोक में प्रभु का उतरना जहाँ सम्पूर्ण चित्र को गत्यात्मक बनाता है, वहीं धर्मान्धिता के प्रति दोनों भाईयों का दृढ़ विरोध उन्हें प्रभु की युगमूर्ति के रूप में परिकल्पित करता है। उल्लेखनीय है कि आकंठ ईटों से चुन दिये जाने के कारण दोनों का शरीर तो अदृष्ट है किंतु मुख दृष्ट है। इसलिये उनके कमलवत मुख ऐसे पद्म के रूप में दिखाई दे रहे हैं जिनकी नाल अदृष्ट है। मुख के लिये कमल की उपमा तो काव्यशास्त्रीय दृष्टि से परम्परागत है किंतु अदृष्ट नाल वाले पद्म के रूप में उसकी कल्पना कवि की सजग काव्यभाषिक संचेतना को उजागर करती है। कमल जल में विकसित होता है किंतु आकंठ दीवार के चुन दिये जाने के कारण कवि दोनों के मुख को 'स्थलपद्म' की उपमा देता है। इन 'स्थलपद्मों' का सानन्द खिले रहना धर्म के प्रति उनके अटल विश्वास को अभिव्यक्ति देता है।

'काननकुसुम' की अन्तिम आख्यान कविता 'श्रीकृष्ण जयन्ती' के अन्तर्गत कृष्ण के पवित्र, अलौकिक और दिव्य अवतरण की सुन्दर झाँकी प्रस्तुत की गई है। कविता से कुछ पंक्तियाँ उद्धृत हैं जहाँ कृष्ण के अलौकिक रूप के अनुरूप वातावरण की सर्जना में कवि पूर्णतया सफल रहा है,

मधुर मेघ-गर्जन-मृदंग है बज रहा
झिल्ली वीणा बजा रही है क्यों अभी
तूर्यनाद भी शिखिगण कैसे कर रहे
दौड़-दौड़कर सुमन सरभि लेता हुआ
पवन स्पर्श करना किसको है चाहता
तरुण तमाल लिपटकर अपने पत्र में

किसका प्रेम जताता है आनन्द से
रह रहकर चातक पुकारता है किसे-
मुक्त कंठ से, किसे बुलाता है कहो
रहो-रहो यह झगड़ा निबटेगा तभी
छिपी हुई जब ज्योति प्रकट हो जायगी[21]

यहाँ दिव्य ज्योति के प्रकट होने की पृष्ठभूमि में जहाँ मेघों की घनघोर गर्जना का मृदंग और शिखिगण की ध्वनि का तूर्यनाद के रूप में उल्लेख अलौकिक वातावरण की सर्जना करता है, वहीं झिल्ली की वाणी का वीणा की मधुर झंकार के रूप में उल्लेख सुखमय वातावरण की सृष्टि भी करता है। यही कारण है कि तूर्यनाद और मृदंग की घोर ध्वनि भी वातावरण को भयावह नहीं बनाती। इसी क्रम में आगे सुमन सुरभि को समेटते हुए पवन का प्रवाहित होना, तमाल के पत्रों का हिलना और चातक का मुक्त कंठ से पुकारना उस अलौकिक वातावरण को सुखद बनाने में सहायक है।

अन्ततः यह कहा जा सकता है कि 'काननकुसुम' में प्रसाद की काव्यभाषा के दो रूप से उभर कर आते हैं। काव्यभाषा का पहला रूप वह है जहाँ तत्समता का आग्रह अपेक्षाकृत अधिक है और वाक्य संरचना शुद्ध संस्कृत के ढर्रे पर है। काव्यभाषा का दूसरा रूप 'ठहरो', 'बालक्रीड़ा', 'नहीं डरते' आदि कविताओं की भाषा के पैटर्न पर है जहाँ तत्सम शब्दों का प्रयोग होते हुए भी वाक्य रचना नितान्त बोलचाल के लहजे की है। 'ढार', 'ढरो' 'कोर', 'बरौनी', 'जाँचते', 'खसका', 'अनबन' जैसे व्यावहारिक, शब्द प्रयोगों के साथ, 'चसकी', 'प्याला', 'बेपीर' जैसे उर्दू शब्द-प्रयोग भी यहाँ देखे जा सकते हैं। निश्चित रूप से ऐसी शब्द-योजना और वाक्य-रचना प्रसाद की आरम्भिक रचनाओं में अधिक दिखाई देती है जो यहाँ भी देखी जा सकती है।

'काननकुसुम' की काव्यभाषा के सम्बन्ध में दूसरा महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि यहाँ पूर्णरूपेण खड़ीबोली को अपनाने के बाद भी 'अहो', 'प्रभो', और 'समीरन'

---

[21] 'प्रसाद ग्रंथावली'- खण्ड-1, पृ0- 227, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

जैसे कुछ ब्रजभाषा प्रयोग यत्र तत्र दिखाई देते हैं। ब्रजभाषा का यह प्रभाव कहीं संज्ञा और सर्वनाम शब्दों पर है, कहीं क्रिया-प्रयोगों पर और कहीं सम्पूर्ण वाक्य-रचना पर। 'काननकुसुम' की आख्यानक कविताएँ ब्रजभाषा के प्रभाव से प्रायः मुक्त हैं। ऐतिहासिक वृत्तों पर आधारित होते हुए भी इन कविताओं की भाषा में इतिवृत्तात्मकता अधिक नहीं मिलती और भाषा का अपेक्षाकृत स्पष्ट और प्राञ्जल रूप सामने आता है।

'काननकुसुम' की काव्यभाषा के सम्बन्ध में तीसरा और अन्तिम विचारणीय बिन्दु यह है कि यहाँ 'पुजाया', 'दिखता रही', 'सौरभित' और 'उगिलते' जैसे कई दोषयुक्त प्रयोग मिल जाते हैं। ऐसे दोषयुक्त प्रयोग खड़ीबोली के आरम्भिक प्रयोग की सूचना देते हैं। कुलमिलाकर 'काननकुसुम' की काव्यभाषा के समग्र विश्लेषण में यह कहा जा सकता है कि यहाँ प्रसाद ने अपनी काव्यभाषा को ब्रजभाषा के प्रभाव से मुक्त करके खड़ीबोली का आधार देने का प्रयास किया है और किसी भी भाषा के आरम्भिक प्रयोग में जो कमियाँ दिखाई देती है, 'काननकुसुम' भी यद्यपि उसका अपवाद नहीं है, फिर भी रमेशचन्द्र शाह के शब्दों में कहा जा सकता है कि, "काननकुसुम" में विषयों और छंदों का खासा वैविध्य है। जमाना जब गद्य का हो तो कविता का रास्ता तंग होता ही है और वह तंगी यहाँ भी महसूस की जा सकती है। फिर भी शब्दों का मितव्यय, भाव के उतार-चढाव के अनुरूप लय गति के फेर-बदल की सावधानी और भावों के विश्लेषण में एक मनोवैज्ञानिक समझ-बूझ ये कुछ ऐसी खूबियाँ है, जो संग्रह को कुछ-न-कुछ वैशिष्ट्य प्रदान कर ही देती हैं।"[22]

→
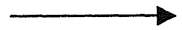
[22] 'जयशंकर प्रसाद' (भारतीय साहित्य के निर्माता-साहित्य अकादमी) पृ0-27-28, रमेशचन्द्र शाह

झरनाः छायावाद का प्रथम काव्य सग्रह

प्रसाद की काव्यभाषा का प्रौढ़ रूप उनके गीतों में दिखाई देता है। द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मकता के बाद प्रसाद ही पहले कवि हैं जिनके गीतों द्वारा खड़ीबोली में गीत की शुरुआत होती है। छायावाद की स्वछन्दता आधुनिक हिन्दी कविता में गीत के मार्ग को प्रशस्त करती है और उस गीतसृष्टि के प्रथम सोपान के रूप में 'झरना' का प्रकाशन होता है। 'झरना' का पहला संस्करण सन् 1918 में और दूसरा संस्करण सन् 1927 में प्रकाशित हुआ। 'झरना' के तीसरे संस्करण के अन्तर्गत जो 1934 मे प्रकाशित हुआ, प्रकाशक का निवेदन है, "जिस शैली की कविता को हिंदी साहित्य में आज दिन 'छायावाद' का नाम मिल रहा है, उसका प्रारंभ प्रस्तुत संग्रह द्वारा ही हुआ था।"[1] किन्तु 'झरना' के प्रथम संस्करण के सम्बन्ध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की यह सम्मति भी विचारणीय है कि "'झरना' की उन २४ कविताओं में उस समय नूतन पद्धति पर निकलती हुई कविताओं से कोई ऐसी विशिष्टता नहीं थी जिसपर ध्यान जाता। दूसरे संस्करण में जो बहुत पीछे संवत् १६८४ में निकला, पुस्तक का स्वरूप ही बदल गया। उसमें आधी से ऊपर अर्थात् ३३ रचनाएँ जोड़ी गई जिनमें पूरा रहस्यवाद, अभिव्यंजना का अनूठापन, व्यंजक चित्रविधान सब कुछ मिल जाता है। 'विषाद', 'बालू की बेला', 'खोलो द्वार', 'बिखरा हुआ प्रेम', 'किरण', 'बसन्त की प्रतीक्षा' इत्यादि उन्हीं पीछे जोड़ी हुई रचनाओं में है जो पहले (सं १६७५ के) संस्करण में नहीं थीं।"[2]

वस्तुतः 'झरना' के प्रथम संस्करण का 'समर्पण' ही प्रेमास्पद और परमतत्व के प्रति कवि की अद्वैत अनुभूति को नये ढंग की अभिव्यक्ति देता है जहाँ दोनों

---

[1] 'प्रसाद का विकासात्मक अध्ययन'-पृ0 78-79, डा0 किशोरीलाल गुप्त

[2] 'हिन्दी साहित्य का इतिहास'-पृ0-460, रामचन्द्र शुक्ल।

के बीच का अन्तर विलुप्त होता हुआ दिखाई देता है। इसी प्रकार 'परिचय' 'झरना' तथा प्रथम संस्करण की कुछ अन्य रचनाएँ भी उस काव्य वैशिष्ट्य का अपवाद नहीं है जिसे आचार्य शुक्ल ने उक्त रचनाओं में देखा है। अत: आचार्य शुक्ल द्वारा 'झरना' के द्वितीय संस्करण को छायावादी काव्य वैशिष्ट्टा वैशिष्ट्य से पूर्ण और प्रथम संस्करण को छायावादी काव्य वैशिष्ट्य से हीन मानना वस्तुत: छायावाद की प्रथम काव्यकृति के रूप में 'पल्लव' को महत्व देने के लिए की गई खींचतान है-''द्वितीय संस्करण में ही छायावाद कही जानेवाली विशेषताएँ स्फुट रूप में दिखाई पड़ीं। इसके पहले श्री-सुमित्रानन्दन पंत का 'पल्लव' बड़ी धूमधाम से निकल चुका था, जिसमें रहस्यभावना तो कहीं कहीं पर अप्रस्तुत विधान, चित्रमयी भाषा और लाक्षणिक वैचित्र्य आदि विशेषताएँ अत्यन्त प्रचुर परिमाण में सर्वत्र दिखाई पड़ी थीं''।[3] इसके अतिरिक्त आचार्य शुक्ल ने रहस्यवाद के साथ अभिव्यंजना के जिस अनूठेपन और व्यंजक चित्रविधान का उल्लेख किया है, और इस संदर्भ में उन्होंने जिन कविताओं का उल्लेख किया है उनमें अज्ञात प्रियतम के लिए कवि की आकुलता में रहस्याभास का जो संस्कार मिलता है, उसे प्रथम संस्करण की 'प्यास', 'प्रत्याशा', 'स्वप्नलोक', 'अतिथि' 'सुधासिज्चन' आदि अनेक रचनाओं में देखा जा सकता है। भाषिक स्तर पर जिस व्यंजक चित्रविधान की चर्चा वे करते है, भाषा का वह वैशिष्ट्य भी प्रथम संस्करण की 'झरना', 'परिचय' आदि कुछ रचनाओं में दिखाई देता है। यों जिस रहस्यवाद की चर्चा वे कुछ गिनी चुनी कविताओं में करते है, उसे झरना के प्रथम संस्करण की प्राय: सभी कविताओं में देखा जा सकता है।

'झरना' के अनेक गीतों में अज्ञात प्रियतम से मिलन के लिये कवि की गहरी आकुलता जहाँ उसे रहस्यवाद का संस्पर्श देती है वहीं अनेक गीत ऐसे है

---

[3] हिन्दी साहित्य का इतिहास'-पृ0-460, रामचन्द्र शुक्ल।

जिनमें प्रियतम के प्रति उलाहना का स्वर भी मुखरित हुआ है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है, प्रिय को उलाहना देता हुआ जहाँ कवि कहता है,

> निर्दय होकर अपने प्रति, अपने को तुमको सौंप दिया।
> प्रेम नहीं, करुणा करने को, क्षण भर तुमने समय दिया।
> अब से भी अच्छा है, अब और न मुझे करो बदनाम।
> क्रीड़ा तो हो चुकी तुम्हारी, मेरा क्या होता है काम?
> स्मृति को लिए हुए अन्तर मे, जीवन कर देंगे निःशेष
> छोड़ो, अब दिखलाओ मत, मिल जाने का यह लोभ विशेष।।[4]

प्रिय से कभी संयोग हुआ था लेकिन प्रिय की निष्ठुरता ने उसे बदनाम किया। परन्तु कवि का प्रेम एकनिष्ठ है। वह संयोग की स्मृति को अंतर में लिये हुए जीवन को निःशेष कर देगा। यहीं पर यह स्पष्ट कर देना भी उचित होगा कि आकुलता की यह तीव्रता और प्रेम में कवि की एकनिष्ठता 'झरना' में अनेक स्थलों पर रीतिमुक्त काव्य में चित्रित प्रेम के समकक्ष प्रतीत होती है। भाव साम्य के आधार पर घनानन्द का निम्न सवैया द्रष्टव्य है, जहाँ सुजान के प्रति घनानन्द का प्रेम भी जग में 'उपहास की कहानी' बनता है,

> आस लगाय उदास भये सु करी जग मैं उपहास-कहानी।
> एक बिसास की टेक गहाय कहा बस जौ उर और ही ठानी।
> एहो सुजान सनेही कहाय दई कित बोरत हौ बिनु पानी।
> यौं उघरे घन आनँद छाय कै हाय परी पहचान पुरानी।।[5]

इसी भाव भूमि पर 'झरना' के अनेक गीत रचे गये हैं। अज्ञात प्रियतम की निष्ठुरता का अंकन 'झरना' के कुछ अन्य गीतों में भी द्रष्टव्य है,

---

[4] 'प्रसाद ग्रन्थावली'- खण्ड- 1 पृ0 259, सम्पादक-रत्नशकर प्रसाद।

[5] 'घनानन्द ग्रथावली'-पृ0-6, सम्पादक-विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

डरो न इतना, धूलि धूसरित होगा नहीं तुम्हारा द्वार,
धो डाले हैं इनको प्रियवर, इन आँखों से आँसू ढार।
मेरे धूलि लगे पैरों से, इतना करो न घृणा प्रकाश,
मेरे ऐसे धूल कणों से, कब तेरे पद को अवकाश[6]

x x x x x x x x x

आने दो मीठी मीड़ों से नूपुर की झनकार, रहो।
गलबाहीं दे हाथ बढ़ाओ, कह दो प्याला भर दे, ला!
निठुर इन्हीं चरणों में मैं रत्नाकर हृदय उलीच रहा।
पुलकित, प्लावित रहो, बनो मत सूखी बालू की वेला।।[7]

x x x x x x x x x

जीवनधन! क्या अश्रु सलित अभिषेक भी
तृप्त नहीं कर सका तुम्हे! सब व्यर्थ है।
बनो न इतने निर्दय सखे! प्रसन्न हो।[8]

x x x x x x x x x

शून्य हृदय में प्रेम-जलद-माला कब फिर घिर आवेगी?
वर्षा इन आँखों से होगी, कब हरियाली छावेगी?
रिक्त हो रही मधु से सौरभ सूख रहा है आतप है;
सुमन कली खिलकर कब अपनी पंखुड़ियाँ बिखरावेगी?[9]

x x x x x x x x x

हो जो अवकाश तुम्हें ध्यान कभी आवे मेरा
अहो प्राणप्यारे, तो कठोरता न कीजिये।
क्रोध से, विषाद से, दया से, पूर्व प्रीति ही से,
किसी भी बहाने से तो याद किया कीजिए।।[10]

---

[6] 'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड - 1, पृ0-237, सम्पादक रत्नशकर प्रसाद
[7] 'प्रसाद ग्रथावली'-खण्ड - 1, पृ0-247, सम्पादक रत्नशकर प्रसाद
[8] 'प्रसाद ग्रथावली'-खण्ड - 1, पृ0-252, सम्पादक रत्नशकर प्रसाद
[9] 'प्रसाद ग्रथावली'-खण्ड - 1, पृ0-254, सम्पादक रत्नशकर प्रसाद
[10] 'प्रसाद ग्रथावली'-खण्ड - 1, पृ0-258, सम्पादक रत्नशकर प्रसाद

कहना न होगा प्रेम का तत्व सर्वदा एक रहता है। सूर की गोपियाँ, घनानन्द और प्रसाद सभी प्रणय निवेदन करते हैं। भ्रमरगीत में गोपियों द्वारा उद्धव के समक्ष कृष्ण के प्रति अपने अनुराग की व्यंजना, सुजान और कृष्ण के प्रति घनानन्द की एकनिष्ठता और प्रेमास्पद तथा परमतत्व के प्रति प्रसाद का समर्पण सबका आधार प्रेम है। प्रेम में प्रिय की उदासीनता या विप्रलम्भ प्रेम को परिपक्व बनाता है और प्रेमी की एकान्तिकता और एकनिष्ठा उसे भक्ति में परिणत करती है। भक्ति की भावधारा को लेकर चलने वाले भक्ति युग में और श्रृंगार की चेतना से अनुप्रणित रीति युग में क्रमशः भक्ति और प्रेम की अनुभूति सहज है किन्तु देशभक्ति और राष्ट्रीयता की भावधारा से संवलित आधुनिक काल में प्रेमानुभूति की यह गहनता वस्तुतः एक नये युग की शुरुआत है जहाँ अनेक स्थलों पर 'झरना' मध्ययुग और आधुनिक काव्य प्रवृत्तियों की सम्मिश्रित काव्यकृति के रूप में दिखाई देता है। इसे यदि एक ओर प्रसाद के खड़ीबोली काव्य पर ब्रजभाषा काव्य का संस्कार कहा जायगा तो दूसरी ओर महत्वपूर्ण तथ्य यह भी है कि 'झरना' के इन गीतों में अज्ञात प्रियतम के लिए कवि की गहरी आकुलता जिस रहस्यवाद को जन्म देती है, वह मध्यकालीन निर्गुण कवियों के रहस्यवाद से नितान्त भिन्न है। यहाँ कवि का संयोग वियोग परमतत्व और प्रेमास्पद के लिए अलग-अलग नहीं रह जाता, वरन् दोनों के भेद को मिटा देता है। 'झरना' का समर्पण ही छायावादी काव्य के इस वैशिष्ट्य का अपवाद नहीं है,

> हृदय ही तुम्हें दान दिया।
> क्षुद्र था, उसने गर्व किया।।
> तुम्हें पाया अगाध गम्भीर।
> कहाँ जल बिन्दु, कहाँ निधि क्षीर।।

हमारा कहो न अब क्या रहा?
तुम्हारा सब कब का हो रहा।।
तुम्हें अर्पण; औं वस्तु त्वदीय?
छीन लो छीन ममत्व मदीय।।[11]

'झरना' के इस समपर्ण में कवि अपने हृदय को ही समर्पित करता है और अब उसका अपना हृदय ही स्वयं का नही रहा। प्रेम की अनुभूति यहाँ प्रेमास्पद और परमतत्व के अन्तर को मिटाकर कवि के हृदय को दोनों के प्रति समान रूप से अर्पित करती है। प्रेमास्पद और परमतत्व के प्रति इस अद्वैत अनुभूति की अभिव्यक्ति 'झरना' के गीतों को मध्ययुगीन प्रेमानुभूति से अलग आधुनिकता का संस्कार देती है।

'झरना' की महत्वपूर्ण कविता 'प्रथम प्रभात' का प्रकाशन प्रसाद के पहले खड़ीबोली काव्य संकलन 'कानन कुसुम' में पहले ही हो चुका था। छायावाद की आरम्भिक प्रवृत्तियाँ सबसे पहले 'प्रथम प्रभात' में ही दिखाई देती हैं। प्रथम प्रभात के साथ प्रथम प्रणय का चित्रण और परमतत्व से साक्षात्कार का प्रथम अनुभव—अर्थ के ये कई स्तर 'प्रथम प्रभात' में एक साथ संगुफित हैं। इस प्रकार सधन अर्थयोजना, छायावादी काव्यभाषा की प्रमुख विशेषता के रूप में यहाँ विशेष रूप से दिखाई देती है। विशेष ध्यातत्व है कि 'झरना' के दूसरे संस्करण में जोड़ी गई कुछ महत्वपूर्ण कविताएँ जिनमें छायावाद के वैशिष्ट्य का संकेत शुक्ल जी ने किया है, उनमें 'प्रथम प्रभात' का उल्लेख नहीं किया गया है।

'प्रथम प्रभात' कविता कानन कुसुम के बाद 'झरना' के दूसरे संस्करण में कुछ परिवर्तनों के साथ मिलती है। यद्यपि ये परिवर्तन बड़े ही स्थूल स्तर पर हुए

---

[11] 'प्रसाद ग्रथावली'-खण्ड - 1, पृ0-231, सम्पादक - रत्नशकर प्रसाद

हैं फिर भी छायावाद के काव्य विकास में ऐतिहासिक महत्व रखने के कारण 'प्रथम प्रभात' के इन परिवर्तनों का विश्लेषण प्रासंगिक हो जाता है। तीसरे बंध की पहली पंक्ति में किया गया निम्न परिवर्तन द्रष्टव्य है,

आते ही कर स्पर्श गुदगुदाया हमें,[12]

-कानन कुसुम

आते ही कर स्पर्श गुदगुदाया मुझे,[13]

-झरना

अंत:करण के नवीन मनोहर नीड़ में जब मनोवृत्तियाँ खगकुल सी सो रहीं थीं, तभी फूलों के सौरभ से लदे हुए मलयानिल ने अचानक स्पर्श किया और मन मधुकर की भाँति स्वर्गीय गान गाने लगा। 'आते ही कर स्पर्श गुदगुदाया हमें' के स्थान पर 'आते ही कर स्पर्श गुदगुदाया मुझे' का यह परिवर्तन व्याकरणिक दृष्टि से निश्चित रूप से शुद्ध है लेकिन समूचे प्रसंग की पृष्ठभूमि में मुझे के स्थान पर हमें का प्रयोग अर्थबोध की दृष्टि से कहीं भी अनुचित प्रतीत नहीं होता। इसी प्रकार अन्तिम बंध में हुए तीन परिवर्तन इस रूप में हैं,

सद्यः स्नात हुआ फिर प्रेम-सुतीर्थ में
मन पवित्र उत्साहपूर्ण भी हो गया,
विश्व विमल आनन्द भवन सा बन रहा
मेरे जीवन का वह प्रथम प्रभात था[14]

-कानन कुसुम

---

[12] 'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड - 1, पृ0-157, सम्पादक रत्नशंकर प्रसाद
[13] 'प्रसाद ग्रथावली'-खण्ड - 1, पृ0-236, सम्पादक रत्नशकर प्रसाद
[14] 'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड - 1, पृ0-158, सम्पादक रत्नशंकर प्रसाद

सद्यः स्नात हुआ मैं प्रेम सुतीर्थ में
मन पवित्र उत्साहपूर्ण सा हो गया।
विश्व, विमल आनन्द भवन सा हो गया,
मेरे जीवन का वह प्रथम प्रभात था[15]

-झरना

यहाँ सोती हुई मनोवृत्तियों को जगाने का क्रम 'फिर' शब्द द्वारा विशेष रूप से अभिव्यक्त होता है। जो हृदय अभी तक शून्य था वह बाल अरुण के प्रकट होते ही रागरञ्जित हो उठता है। यह राग प्रेमास्पद और परमतत्व के प्रति अद्वैत रूप में है। हृदय के राग रञ्जित होने के बाद कवि प्रेम सुतीर्थ में स्नात हो उठता है। जीवन में आनन्द का यह क्रमिक आगमन 'फिर' शब्द द्वारा अधिक सफलतापूर्वक रूपायित होता है और इस प्रकार 'झरना' के दूसरे और तीसरे संस्करण में फिर के स्थान पर 'मैं' का प्रयोग बहुत संगत नही लगता।

दूसरी पंक्ति में 'भी' के स्थान पर 'सा' का प्रयोग भी विशेष महत्व नहीं रखता। मन जो स्पन्दहीन और तुष्ट था वह प्रेम सुतीर्थ में स्नात होते ही पवित्र और साथ ही उत्साहपूर्ण भी हो उठता है और उत्साह का संचार होते ही सम्पूर्ण विश्व आनन्दमय प्रतीत होने लगता है। 'विश्व विमल आनन्द भवन सा बन रहा' जहाँ आनन्द की अनुभूति के क्रमशः घटित होने को रूपायित करता है, वहीं परिवर्तित रूप में 'आनन्द भवन सा हो गया' उस आनन्द की प्रक्रिया के पूर्णतः घटित हो जाने की व्यंजना देता है। कहना न होगा कि आनन्द की अनुभूति का क्रमशः आस्वादन अर्थगत और काव्यगत सौन्दर्य की दृष्टि से अधिक युक्ति युक्त प्रतीत होता है। अतः परिवर्तित रूप में 'उत्साहपूर्ण सा हो गया' और 'विश्व विमल

---

[15] 'प्रसाद ग्रथावली'-खण्ड - 1, पृ0-236, सम्पादक रत्नशकर प्रसाद

आनन्द भवन सा हो गया' ये दोनों परिवर्तन विशेष महत्व न रखते हुए भी पारस्परिक संगति की दृष्टि से किये गये प्रतीत होते हैं।

'विषाद' में दु:ख से सर्वथा भिन्न विषाद जैसे सूक्ष्म मनोभाव के अंकन के लिए सन्ध्या का आधार लिया गया है। जिस संश्लिष्ट भाषिक विधान का उल्लेख 'प्रथम प्रभात' के संदर्भ में किया गया है, वह 'विषाद' में आकर और भी स्पष्ट होता है। सन्ध्या में फैलती छायाएँ विषाद के भाव को सूक्ष्म अभिव्यक्ति देती हैं और अर्थ का अद्वैत सन्ध्या और विषाद को यों सम्पृक्त करता है कि कहना कठिन हो जाता है कि सम्पूर्ण चित्र सन्ध्या का है अथवा विषाद का। कविता का आरम्भिक अंश इस रूप में है,

कौन, प्रकृति के करुण काव्य सा,
वृक्ष-पत्र की मधु छाया में।
लिखा हुआ सा अचल पड़ा है,
अमृत सदृश नश्वर काया में।[16]

अमृत सदृश वस्तु की नश्वर काया में स्थिति विरोधभाव को जन्म देती है। यह विरोधभाव आरम्भ में ही कवि की जिज्ञासा का विषय बनता है। 'कौन, प्रकृति के करुण काव्य सा'—कवि की यह जिज्ञासा कविता में विभिन्न प्रश्नों के रूप में पर्यवसित होती हुई उसकी भाषा को नाटकीयता का संस्पर्श प्रदान करती है जो विषाद जैसे गहन और जटिल मनोभाव को संवेदनात्मक स्तर पर ग्राह्य बनाती है। प्रश्नों की यह श्रंखला निरन्तर चलती है। अज्ञात कारण वाले विषाद जैसे मनोभाव के विषय में प्रश्नों का उठना स्वाभाविक है। निम्न उद्धृत पक्तियाँ द्रष्टव्य हैं जहाँ जंगली शिकारी का चित्र विषाद के भाव को और भी गहराता है,

---

[16] 'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड - 1, पृ0-245, सम्पादक रत्नशकर प्रसाद।

अखिल विश्व के कोलाहल से,
दूर सुदूर निभृत निर्जन में
गोधूली के मलिनाञ्चल में,
कौन जंगली बैठा वन में।

शिथिल पड़ी प्रत्यञ्चा किसकी,
धनुष भग्न सब छिन्न जाल है।
वंशी नीरव पड़ी धूल में,
वीणा का भी बुरा हाल है।[17]

गोधूलि के मलिन अञ्चल में कोई जंगली वन में बैठा है। उसका धनुष भंग है, प्रत्यञ्चा शिथिल, वंशी नीरव और वीणा निस्पन्द—इस पूरे चित्र में तत्सम शब्दावली के मध्य 'जंगली' शब्द की स्थिति भाषिक स्तर पर तो विशिष्ट है ही, भावगत स्तर पर भी विचारणीय है। वस्तुत: पूरे बन्ध में प्रसाद ने शिकारी का बिम्ब प्रस्तुत किया है। लेकिन ये जंगली शिकारी विशिष्ट है जो यद्यपि जंगली है लेकिन उसके समीप धनुष ही नहीं वंशी और वीणा भी है। धनुष का भंग, प्रत्यञ्चा का शिथिल, वंशी का नीरव और वीणा का निस्पन्द होना विषाद के भाव को और भी गहराता है। कहना न होगा कि एक आखेटक जो आखेट की क्रिया के स्तर पर संवेदनहीन है, उसके माध्यम से संवेदना की गहराइयों को छूने वाले विषाद जैसे मनोभाव की अभिव्यक्ति जंगली शिकारी की इस विशिष्ट स्थिति के कारण ही सम्भव हुई है।

एक दूसरे स्तर पर 'विषाद' से ही सन्ध्या का यह चित्र द्रष्टव्य है जहाँ सन्ध्या में फैलती छायाएँ और रात्रि का अन्धकारमय वातावरण विषाद के भाव को सूक्ष्म अभिव्यक्ति देता है,

---

[17] 'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड - 1, पृ0-245, सम्पादक रत्नशंकर प्रसाद।

किसके तममय अन्तरतम मे,

झिल्ली की झनकार हो रही।

स्मृति सन्नाटे से भर जाती,

चपला ले विश्राम सो रही।

निर्झर कौन बहुत बल खाकर,

बिलखता ठुकराता फिरता।

खोज रहा है स्थान धरा में,

अपने ही चरणों में गिरता।[18]

यहाँ चपला मनोवेगों का प्रतीक है जिनकी सुषुप्त स्थिति के मध्य 'झिल्ली की झनकार' सन्ध्या के अन्धकारमय वातावरण को उभारती है। विषाद की स्थिति में अनेक पूर्व स्मृतियाँ स्मृति पटल पर एक साथ सजग हो उठती है। अकारण ही संसार की असारता और आत्मग्लानि का जो भाव जाग्रत होता है, उसकी अभिव्यक्ति कविता में निर्झर के माध्यम से होती है जो सन्ध्या की नीरवता और नीरसता को भी रूपायित करती है। निर्झर का अपने ही चरणों में गिरना विषाद जनित आत्मलीनता के भाव को स्वर देता है। अन्ततः कवि आत्मलीनता की स्थिति को यथावत् बने रहने देने का निवेदन करता है,

किसी हृदय का यह विषाद है,

छेड़ो मत यह सुख का कण है।

उत्तेजित कर मत दौड़ाओ,

करुणा का विश्रान्त चरण है।।[19]

---

[18] 'प्रसाद ग्रथावली'-खण्ड - 1, पृ0-245, 246, सम्पादक रत्नशकर प्रसाद।

[19] 'प्रसाद ग्रथावली'-खण्ड - 1, पृ0-246, सम्पादक रत्नशकर प्रसाद।

यह विषाद ही कवि के लिए 'सुख का कण' है। इस प्रकार वेदना जो आगे चलकर छायावादी कवियों की आत्माभिव्यक्ति का प्रमुख और प्रिय उपादान बनती है, उसकी यह विशिष्ट स्थिति बहुत पहले ही प्रस्तुत गीत की इन पंक्तियाँ में जैसे साकार हो उठी है।

'झरना' की एक अन्य महत्वपूर्ण कविता है—'किरण'। किरण पर छायावादी कवियों ने अनेक कविताएँ लिखी। आकाश से पृथ्वी पर उतरती किरण कवि के लिए भी जिज्ञासा का विषय बनती है। वह उसके लिए अनेक सुन्दर उपमाएँ देता है। 'किरण' शीर्षक कविता से निम्न पंक्तियाँ द्रष्टव्य है जहाँ वह किरण को मुरली के रूप में परिकल्पित करता है,

> धरा पर झुकी प्रार्थना सदृश,
>
> मधुर मुरली सी फिर भी मौन,—
>
> किसी अज्ञात विश्व की विकल-
>
> वेदना-दूती सी तुम कौन?[20]

आकाश से धरा पर उतरती किरण की तिर्यक स्थिति उसे मुरली के रूप में परिकल्पित करती है। वादन की स्थिति में मुरली भी झुकी रहती है। किरण और मुरली की यह तिर्यक स्थिति दृश्यात्मक स्तर पर दोनों में साम्य उपस्थिति करती है लेकिन किरण का मधुर मुरली की भाँति झुक कर भी मौन रहना दोनों में विभेद करता है। किरण की मौन मुरली के रूप में संकल्पना और प्रार्थना के लिए उसका झुकना प्रात:कालीन वातावरण की पवित्रता को उभारता है। प्रथम दो पंक्तियों में किरण मौन है, इसके विपरीत आगे की दो पंक्तियों में वह दूती के सदृश संदेश दे रही है। कहना न होगा किरण के लिए क्रमश: मधुर ध्वनि और वाणी से अभिन्न

---

[20] 'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड - 1, पृ0-243, सम्पादक रत्नशंकर प्रसाद।

रूप में जुड़ी मुरली और दूती जैसे उपमानों की नियोजना कवि की सुकुमार कल्पना द्वारा ही सम्भव होती है जो प्रात: काल का पवित्र और शान्त चित्र उपस्थित करती है।

प्रकृति के दो सुन्दर परिदृश्यों का सूक्ष्म चित्रांकन 'दो बूँदें' में किया गया है। 'दो बूँदें' सुशीतलकारी शशि और मरकन्द भरे नन्हें से फूल के रूप में हैं। एक चित्र द्रष्टव्य है,

> शरद का सुन्दर नीलाकाश,
> निशा निखरी, था निर्मल हास,
> बह रही छाया पथ में स्वच्छ
> सुधा सरिता लेती उच्छ्वास।
> पुलक कर लगी देखने धरा,
> प्रकृति भी सकी न आँखें मूँद,
> सुशीतलकारी शशि आया,
> सुधा की मनो बड़ी सी बूँद।[21]

यहाँ चन्द्रमा की सुधा को बड़ी सी बूँद के रूप में परिकल्पना अत्यन्त मौलिक और सहज है। 'निशा निखरी था निर्मल हास' में अनुप्रास की सुन्दर नियोजना है। सर्वत्र बिखरी ज्योत्सना सुधा सरिता के रूप में है। सरिता का बहाव उसके उठते उच्छ्वासों को मूर्त करता है। सुधा सरिता का उच्छ्वास लेना और धरा का पुलक कर देखना सम्पूर्ण चित्र को गत्यात्मकता का आधार देता है और अन्तत: 'सुशीलतकारी शशि आया' के रूप में कवि उस गत्यात्मकता को पूर्णता प्रदान करता है।

---

[21] 'प्रसाद ग्रथावली'-खण्ड - 1, पृ0-239, सम्पादक रत्नशकर प्रसाद।

'पावस प्रभात' में कवि रात्रि और प्रभात के संधि चित्रों के माध्यम से प्रातः कालीन परिवेश को उभारता है। रात्रि के उपकरणों के क्रमशः बिखर जाने का उल्लेख यहाँ प्रातः काल का सुन्दर चित्र उपस्थित करता है,

नव तमाल श्यामल नीरद माला भली
श्रावण की राका रजनी में घिर चुकी,
अब उसके कुछ बचे अंश आकाश में
भूले भटके पथिक सदृश हैं घूमते।
....
क्लान्त तारकागण की मद्यप-मण्डली
नेत्र निमीलन करती है फिर खोलती।
रिक्त चषक सा चन्द्र लुढ़ककर है गिरा,
रजनी के आपानक का अब अंत है।[22]

प्रातः कालीन आकाश में दिखाई देते चाँदनी के अंश भटके पथिक के सदृश आकाश में विचरण कर रहे हैं। तारकगणों का क्लान्त मद्यप मण्डली के रूप में कभी नेत्रों को निमीलित करना और कभी खोलना प्रातः काल धूमिल ज्योति के कारण आकाश में उनकी अस्पष्ट स्थिति को रूपायित करता है। इसी प्रकार चन्द्रमा का रिक्त चषक की भाँति लुढ़ककर गिरना प्रभात आगमन के साथ उसकी हीन दीप्त स्थिति को अभिव्यंजित करता है। समग्रतः सम्पूर्ण बिम्ब रात्रि के श्रंगारमय वातावरण की पृष्ठभूमि में प्रभात के आगमन का संकेत देता है,

---

22 'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड - 1, पृ0-240, सम्पादक रत्नशकर प्रसाद।

रंजनी के रंजक उपकरण बिखर गये,
घूँघट खोल उषा के झाँका और फिर-
अरुण अपांगों से देखा, कुछ हँस पड़ी,
लगी टहलने प्राची प्रांगण में तभी।।[23]

प्रभात का यह श्रंगारमय चित्र काव्य सौन्दर्य का अनुपम उदाहरण है। प्रात: काल सर्व प्रथम पूर्व दिशा में व्याप्त अरुणिमा की उषा के अरुण अपांगों के रूप में परिकल्पना और उनके माध्यम से पूर्व दिशा रूपी प्रागंण में उसका विचरण करना सारे परिदृश्य को संवेदनात्मक स्तर पर ग्राह्य बनाता है।

अस्त व्यस्त जीवन की विकलता 'चिन्ह' शीर्षक कविता की निम्न पंक्तियों में सहज किन्तु रचनात्मक भाषा में मुखरित हुई है-

मानवता के निर्जन बन में जड़ थी प्रकृति शान्त था व्योम,
तपती थी मध्याह्न-किरण सी प्राणों की गति लोम विलोम।

आशा थी परिहास कर रही, स्मृति का होता का था उपहास,
दूर क्षितिज में जाकर सोता था जीवन का नव उल्लास।

द्रुतगति से था दौड़ लगाता, चक्कर खाता पवन हताश,
विह्वल सी थी दीन वेदना, मुँह खोले मलीन अवकाश।

हृदय एक नि:श्वास फेंककर खोज रहा था प्रेम-निकेत,
जीर्णकाण्ड वृक्षों के हँसकर रूखा सा करते संकेत।

---

[23] 'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड - 1, पृ0-240, सम्पादक रत्नशकर प्रसाद।

बिखर चुकी थी अम्बरतल में सौरभ की शुचितम सुख धूल,
पृथ्वी पर थे विकल लोटते शुष्क पत्र मुरझाये फूल।[24]

वे समस्त भाव जो जीवन में सुख और उल्लास के संवाहक है, उनकी दुःखद स्थिति के साथ प्रकृति जैसे एकाकार हो गई है और यह भाषा की बिम्बधर्मी प्रवृत्ति के कारण ही सम्भव हो सका है। जब प्राणों की गति मध्याह्न किरण सी तपती है तब मध्याह्न का शुष्क वातावरण और जीवन की शुष्कता सम्मिलित रूप में अभिव्यक्त होती है। स्मृति का उपहास हो रहा है। दूर क्षितिज में उल्लास की सुषुप्त स्थिति जीवन की नीरसता को साकार करती है। 'द्रुतगति से था दौड़ लगाता, चक्कर खाता पवन हताश' यह पूरी पंक्ति जीवन की हताश स्थिति को गहरे स्तर पर अभिव्यंजित करती है। वृक्षों के जीर्ण कांडों का हँसकर रूखा संकेत करना, शुचितम सुखधूल का अम्बरतल में बिखर जाना, शुष्क पत्रों का विकल रूप में लोटना और फूलों का मुरझा जाना—इस सम्पूर्ण प्रकृति चित्र के अन्तर्गत शुष्क वातावरण के माध्यम से जीवन की शुष्कता को सफलतापूर्वक रूपायित किया गया है।

'झरना' की उपर्युक्त कुछ महत्वपूर्ण कविताएँ भाषिक स्तर पर हिन्दी कविता को छायावाद की भंगिमा देती है अथवा जिनमें खड़ीबोली की व्यंजकता, चित्रात्मक क्षमता को स्पष्टतः देखा जा सकता है किंतु इसी के साथ यह भी महत्वपूर्ण है कि 'झरना' में संकलित अनेक कविताएँ ऐसी भी हैं जहाँ छायावादी रहस्यवाद की अभिव्यक्ति में एक ही भाव को पुनरावृत्ति उन्हें द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मकता से अलग वैशिष्ट्य नहीं प्रदान करती। 'अर्चना' शीर्षक कविता से एक उद्धरण इस रूप में है,

---

[24] 'प्रसाद ग्रथावली'-खण्ड - 1, पृ0-248, सम्पादक रत्नशंकर प्रसाद।

वाणे। पंचम स्वर में बजकर मधुर मधु
बरसा दे तू स्वयं विश्व में आज तो।
उस वर्षा में भींगे जाने से भला
लौट चला आवे प्रियतम इस भवन में।
आश्रय ले मेरे वक्षस्थल में तनिक।
लज्जे! जा, बस अब न सुनूँगी एक भी—
तेरी बातों में से; तूने दुःख दिया,
रुष्ट हो गये प्रियतम, और चले गये।
यह कैसा संकोच, मन! तुझे क्या हुआ!
बड़ी बड़ी अभिलाषायें इस हृदय ने
संचित की थीं इस छोटे भाण्डार में,
लज्जावती लता सा होकर संकुचित—
जो अपने ही में छिप जाना चाहता।
यदि साहस हो, उसे खोलकर देख लो,
मन मंदिर में नाथ हमारी 'अर्चना'
हुई उपेक्षित तुमसे, हँसती है हमें।[25]

यहाँ कवि मन को धिक्कारता है जो 'लज्जावती लता' सा संकुचित हो कर अपने में ही छिप जाना चाहता है। लज्जा के कारण मन में उत्पन्न संकोच भाव की अभिव्यक्ति के लिए उसे 'लज्जावती लता सी' कहना भावगत स्तर पर तो उचित है लेकिन भाषिक स्तर पर मन की उपमा लज्जावती लता से देना लिंगगत विरोध के कारण युक्ति संगत नहीं लगता। इसी प्रकार 'तेरी बातों में से' और 'हँसती है हमें' जैसे असंगत वाक्य प्रयोगों के कारण भाव की दुर्बोधता भी द्रष्टव्य है। समग्रतः पूरी कविता में भावों के मानवीकरण की प्रक्रिया कवि की 'अर्चना' को

[25] 'प्रसाद ग्रथावली'-खण्ड - 1, पृ0-251, सम्पादक रत्नशंकर प्रसाद।

नितान्त स्थूल अभिव्यक्ति ही देती है। इसी क्रम में 'कब' और 'अनुनय' शीर्षक कविताओं से निम्न उदाहरण भी क्रमशः प्रासंगित होगें—

शून्य हृदय में प्रेम-जलद-माला कब फिर घिर आवेगी?
वर्षा इन आँखों से होगी, कब हरियाली छावेगी?
रिक्त हो रही मधु से सौरभ सूख रहा है आतप है;
सुमन कली खिलकर कब अपनी पंखुडियाँ बिखरावेगी?
लम्बी विश्व कथा में सुख की निद्रा सी इन आँखों में—
सरस मधुर छवि शांत तुम्हारी कब आकर बस जावेगी?
मन-मयूर कब नाच उठेगा कादंबिनी छटा लखकर;
शीतल अलिंगन करने को सुरभि लहरियाँ आवेंगी?
बढ़ उमंग सरिता आवेगी आर्द्र किये रूखी सिकता;
सकल कामना स्रोत लीन हो पूर्ण विरति कब पावेगी?[26]

x x x x x x x x x

उसी स्मृति-सौरभ में मृगमन मस्त रहे
यही है हमारी अभिलाषा सुन लीजिये।
शीतल हृदय सदा होता रहे आँसुओं से
छिपिये उसी में मत बाहर हो भीजिये।
हो जो अवकाश तुम्हें ध्यान कभी आवे मेरा
अहो प्राणप्यारे, तो कठोरता न कीजिए।[27]

कहना न होगा 'झरना' के इन गीतों में द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मकता की अनुगूँज स्पष्टतः सुनी जा सकती है। भाषागत शैथिल्य के रूप में 'आवेगी', 'छावेगी',

---

[26] 'प्रसाद ग्रथावली'-खण्ड - 1, पृ0-254, सम्पादक रत्नशंकर प्रसाद।
[27] 'प्रसाद ग्रथावली'-खण्ड - 1, पृ0-258, सम्पादक रत्नशकर प्रसाद।

'पावेगी', 'बिखरावेगी', 'भींजिये' आदि क्रियाओं के प्रयोग भी दिखाई देते हैं। इन क्रिया-प्रयोगों के संदर्भ में उल्लेखनीय है कि इनके विन्यास में खड़ीबोली और ब्रजभाषा का मिश्रित रूप देखा जा सकता है। 'आवे' ब्रजरूप और 'गा' खड़ीबोली रूप, दोनों के मिश्रण से बनी इन क्रियाओं के प्रति प्रसाद का विशेष मोह निरन्तर उनके प्रयोगों में दिखाई देता है। 'झरना' में भी ऐसे प्रयोग देखे जा सकते हैं।

'झरना' के गीतों के सम्बन्ध में डा0 प्रेमशंकर लिखते हैं, ''गीतों को दृष्टि से 'झरना' एक प्रयोगशाला है। क्योंकि वहाँ भाव-जगत का विस्तार है और कई प्रकार के छंद कवि ने अपनाए हैं''[28]। 'कहो?' 'पाईबाग', 'तुम!', 'देवबाला', 'उपेक्षा करना', 'वेदने ठहरो!', आदि भिन्न भिन्न प्रकार के शीर्षकों के अन्तर्गत कवि अपनी भावनाओं को विस्तार देता है। छंदों का वैविध्य 'बसन्त', 'कब?', 'असंतोष', 'पी! कहाँ?' 'आशालता' और 'अतिथि' आदि कविताओं में देखा जा सकता है।

'झरना' की प्राय: प्रत्येक कविता में भिन्न प्रकार की छंदयोजना दिखाई देती है। प्रिय मिलन की तीव्र आकाँक्षा 'कब?' और 'पी! कहाँ?' में प्रश्नों की श्रृँखला द्वारा अभिव्यक्त होती है और प्रश्नों की यह श्रृंखला गीतात्मक लयात्मकता को बनाये रखती है। चार पंक्तियों के बन्ध के उपरान्त एक पंक्ति द्वारा लयात्मक परिवर्तन 'असंतोष' और 'बसन्त' में देखा जा सकता है। छ: पंक्तियों के बन्ध मे दो-दो पंक्तियों की तुकात्मक संगति द्वारा एक विशेष प्रकार की लय की नियोजना 'आशालता' में दिखाई देती है। छोटे छोटे वाक्यों द्वारा एक भिन्न प्रकार की छन्द योजना 'अतिथि' की निम्न पंक्तियों में द्रष्टव्य है,

[28] 'प्रसाद का काव्य'- पृ0-179, प्रेमशकर।

हृदय गुफा थी शून्य,

रहा घर सूना।

इसे बसाऊँ शीघ्र,

बढ़ा मन दूना।।

अतिथि आ गया एक,

नहीं पहचाना।

हुए नहीं पद शब्द,

न मैंने जाना।।

हुआ बड़ा आनन्द,

बसा घर मेरा।[29]

यद्यपि हृदय गुफा शून्य है और कवि इसे शीघ्र बसाना चाहता है किन्तु प्रेम का विकास अकस्मात नहीं हो जाता। शून्य हृदय गुफा और सूने घर में अतिथि के चुपचाप आगमन और घर में बसने का यह चित्र गत्यात्मक होते हुए भी इतना सजीव है कि कहीं भी इसकी आकस्मिकता का बोध नहीं होता। पदशब्द का न होना और अतिथि का चुपचाप आगमन प्रेम के सहज विकास को संकेतित करता है। इस प्रकार सारी प्रक्रिया तत्काल हुई नहीं प्रतीत होती। प्रियतम और परमतत्व के अद्वैत रूप में सहज आगमन की यह प्रक्रिया छोटे छोटे वाक्यों द्वारा सफल रूप में रूपायित होती है।

गीत प्रयोग की दृष्टि से बिन्दु के अन्तर्गत संकलित निम्न पंक्तियाँ भी विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं जहाँ मन को सम्बोधित करता हुआ कवि दो पंक्तियों के अन्तराल पर बातचीत की शैली को अपनाता है। बातचीत की यह शैली आदि से अंत तक गीत की लय और गति को साधती है। द्रष्टव्य है,

---

[29] 'प्रसाद ग्रथावली'-खण्ड - 1, पृ0-287, सम्पादक रत्नशाकर प्रसाद।

रे मन।

न कर तू कभी दूर का प्रेम।

निष्ठुर ही रहना, अच्छा है, यहीं करेगा क्षेम।।

देख न,

यह पतझड़ बसन्त एकत्रित मिला हुआ संसार।

किसी तरह से उदासीन ही कट जाना उपकार।।

या फिर,

जिसे चाह तू, उसे न कर आँखों से कुछ भी दूर।

मिला रहे मन मन से, छाती छाती से भरपूर।।

लेकिन

परदेसी की प्रीति उपजती अनायास ही आय।

नाहर नख से हृदय लड़ाना और कहूँ क्या हाय।।[30]

यहाँ 'देख न', 'या फिर' और 'लेकिन' की योजना सम्पूर्ण कविता को जहाँ नाटकीयता का संस्पर्श प्रदान करती है वहीं पूर्व पंक्ति से उसकी लयात्मक संगति भी महत्वपूर्ण है। मन को प्रेम न करने का प्रबोधन देने के बाद 'देख न' का प्रयोग अपनी बात को प्रमाण रूप में प्रस्तुत करने की दृष्टि से किया गया है। इसी प्रकार 'या फिर' कहकर कवि प्रिय पात्र को तन मन से समीप रखने का विकल्प प्रस्तुत करता है किन्तु 'लेकिन' की योजना द्वारा वह अन्ततः 'परदेसी की प्रीति' के अनायास ही उपजने की विवशता भी प्रस्तुत करता है।

मिला रहे मन मन से, छाती छाती से भरपूर—यहाँ प्रियतम को तन मन से समीप रखने का उपदेश देने की प्रक्रिया में प्रिय के मन से अपने मन को मिलाने की बात जहाँ प्रिय से एकात्मकता को संवेदनात्मक भावभूमि पर उभारती है वहीं शारीरिक मिलन का भाव 'छाती' जैसे ठेठ प्रयोग से सधता है। इस प्रकार 'दूर का

[30] 'प्रसाद ग्रथावली'-खण्ड - 1, पृ0-294, सम्पादक रत्नशकर प्रसाद।

प्रेम' न करने का उद्बोधन किन्तु 'परदेसी की प्रीति' के अनायास आगमन की प्रक्रिया नाटकीय शैली में गीत रचना का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करती है।

अन्ततः यह कहा जा सकता है कि गीत प्रयोग की इस प्रयोगशाला में छन्द वैविध्य होते हुए भी वह प्रौढ़ता नही मिलती जो आगे चलकर 'लहर' के गीतों में दिखाई देती है। 'झरना' के गीतों के समग्र अवलोकन से स्पष्ट हो जाता है कि नये रहस्यवाद का आभास प्रायः प्रत्येक रचना में होते हुए भी शैलीगत वैशिष्ट्य को कुछ कविताओं में ही देखा जा सकता है। 'परिचय, 'झरना' 'प्रथम प्रभात', 'किरण' 'विषाद', 'दो बूँदें' 'पावस प्रभात' 'चिन्ह' तथा कुछ अन्य कविताओं में भावों की गहराई के साथ अभिव्यक्तिगत कसावट भी मिलती है। शेष कविताओं में अभिव्यक्ति का वह स्तर दिखाई नहीं देता। अनेक कविताओं में अति स्पष्टवादिता उन्हें द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मकता का संस्कार देती है। ऐसे स्थलों पर गीतों का स्तर साधारण लगने लगता है और इस रूप में 'झरना' को द्विवेदीयुग और छायावाद के संधिकाल की रचना के रूप में देखा जा सकता है। भाषा की जो संश्लिष्टता 'काननकुसुम' की 'प्रथम प्रभात' में दिखाई दी थी 'झरना' में इनकी संख्या कुछ अवश्य बढ़ जाती है। लेकिन ये कुछ कविताएँ ही विशेष रूप से महत्वपूर्ण है जहाँ छायावाद के विकास को अधिक स्पष्ट रूप में देखा जा सकता है और जो 'झरना' को न केवल छायावाद की बल्कि खड़ीबोली में गीत रचना की प्रथम काव्य कृति भी प्रमाणित करती है।

→

आँसू : सूक्ष्म प्रबन्ध
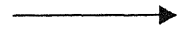
प्रसाद की पूर्व प्रकाशित प्राय: सभी रचनाओं में द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मकता से अलग कोई नवीनता न होने के कारण आचार्य शुक्ल ने 'आँसू' को प्रसाद की पहली विशिष्ट रचना माना है। यह कहना गलत नहीं होगा कि 'आँसू' न केवल प्रसाद की बल्कि उन चुनी हुई विशिष्ट रचनाओं में एक है जिनके अन्तर्गत छायावादी काव्यभाषा का प्रौढ़ रूप देखा जा सकता है। पूर्व प्रकाशित रचनाओं में अभिव्यक्ति की जो नई भंगिमा 'झरना' के गीतों में दिखाई दी थी, 'आँसू' की प्रबन्धात्मकता ने उसे नया आयाम दिया। 'आँसू' प्रबन्ध रचना है अथवा मुक्तकों का संकलन—इस प्रश्न से अलग तटस्थ रूप में देखने से ज्ञात होगा कि 'आँसू' का वैशिष्ट्य वस्तुत: उस मौलिक विधान में है जहाँ हर मुक्तक अपनी सघनता से मुक्त होते हुए भी अगले मुक्तक से जुड़ा रहता है और इस रूप में कोई स्पष्ट कथानक न होते हुए भी भावकथा का सूक्ष्म रूप पूरी कविता में विकसित है। यह भावकथा अपनी खण्डित श्रृंखलाओं में भी, भले ही वह 'समन्वित प्रभाव' निष्पन्न न करे, इस निचोड़ को पूरी प्रभावात्मकता के साथ सम्प्रेषित करती है,

सबका निचोड़ ले कर तुम
सुख से सूखे जीवन में
बरसो प्रभात हिमकन सा
आँसू इस विश्व-सदन में।[1]

जहाँ उसका समापन नौका-बिहार की तरह मात्र काव्यात्मक आदर्श नहीं बल्कि सम्पूर्ण भावकथा से छनकर उस अनुभूत्यात्मक सच्चाई तक पहुँचता है जहाँ कवि 'सुख से सूखे जीवन' में आँसुओं के बरसने की कामना पूरे विश्वास के साथ कर पाता है। 'आँसू' की श्रेष्ठता का यही प्रमाण है।

---

[1] 'प्रसाद ग्रंथावली'- खण्ड-1, पृ0-332, सम्पादक-रत्नशकर प्रसाद।

इस सूक्ष्म-प्रबन्ध के आरम्भ में विरह की भावभूमि का विस्तार है, विरह के बाद अतीत की स्मृतियाँ कुछ संयोग-चित्रों के साथ हैं जहाँ प्रिय के रूप वर्णन के बाद पुनः उसके अभाव में विरह का विस्तार है। 'आँसू' की इस भाव-कथा के सूत्र यद्यपि अनेक स्थलों पर टूटते बिखरते हैं किन्तु भावनाओं का आवेग अनुभूति के जिस सागर को उद्वेलित करता है वहाँ 'आँसू' के कथा-प्रवाह में आद्यन्त डूबते-उतराते हम अन्ततः आँसू की सार्थकता को समझ पाते हैं। एक निश्चित छन्द योजना और लयात्मक अनुशासन में बँधी 'आँसू' की इस भाव कथा के अन्तर्गत 'झरना' और 'लहर' की फुटकर रचनाओं से अलग कवि की गीतात्मक क्षमता प्रबन्ध रूप में अभिव्यक्ति पाती है।

'झरना' और 'लहर' के मध्य 'आँसू' की रचना प्रक्रिया विशिष्ट है, अपने भाषिक प्रयोगों के कारण। यह कहना भी गलत नहीं होगा कि न केवल 'झरना' और 'लहर' बल्कि प्रसाद के सम्पूर्ण काव्य-विकास में संस्कृत प्रधान शुद्ध तत्सम शब्दावली जो प्रसाद की काव्यभाषा की बुनियादी विशेषता है, से अलग यहाँ उर्दू शब्दावली और उर्दू-काव्य-परम्परा का प्रभाव भी देखा जा सकता है। इस सम्बन्ध में डा0 प्रेमशंकर ने 'प्रसाद का काव्य' में 'आँसू' की भाव-योजना पर 'उर्दूशतक' के प्रभाव की चर्चा के प्रसंग में जो पंक्तियाँ उद्धृत की हैं, उनका उल्लेख यहाँ अप्रासंगिक न होगा,

उर्दूशतक : बुलबुल के रोने की न जाने सैयाद कदर
आशिक ही जाने, क्या जल्लाद उसे जाने है।

x x x x x x x x x x

आँसू : बेसुध जो अपने सुख से
जिनकी है सुप्त व्यथाएँ
अवकाश भला है किनको
सुनने को करुण कथाएँ

इसी प्रकार—

उर्दूशतक : लाख समझावे कोई, आँखों में चुभी है जाकी
ताकी कहीं सूरत उतारे से उतरती है।

x x x x x x x x x x

आँसू : अब छुटता नहीं छुड़ाए
रंग गया हृदय है ऐसा[2]

कहना न होगा कि 'आँसू' की उपर्युक्त पंक्तियाँ 'उर्दूशतक' के भाव की आंशिक छाया लिये हुए भी अभिव्यक्ति के स्तर पर इतनी मौलिक हैं कि उनकी रचनात्मक श्रेष्ठता 'उर्दूशतक' से कहीं आगे है। रामानन्द जी कवि के अनन्य मित्र थे और अपना 'उर्दूशतक' उन्होंने प्रसाद के कहने पर ही प्रकाशित कराया। उर्दू और फारसी के अध्ययन में मुंशी कालिन्दी प्रसाद से भी कवि को विशेष प्रेरणा मिली। इस प्रकार आरम्भ से ही इन विद्वत् जनों का सान्निध्य प्राप्त करने वाले तथा संस्कृत, हिन्दी, और अंग्रेजी के साथ फारसी की भी शिक्षा प्राप्त करने वाले प्रसाद का कवि मन उर्दू-काव्य-परम्परा और फारसी-काव्य-शैली से अपरिचित नहीं था। शराब,

---

[2] 'प्रसाद का काव्य'-पृ0-28, प्रेमशंकर।

प्याला, नशा और मदिरालय के अनेक प्रयोग 'आँसू' में स्थल-स्थल पर मिलेंगे। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं,

काली आँखों में कितनी
यौवन के मद की लाली
मानिक मदिरा से भर दी
किसने नीलम की प्याली?[3]
x x x x
लहरों में प्यास भरी है
है भँवर पात्र भी खाली
मानस का सब रस पीकर
लुढ़का दी तुमने प्याली।[4]
x x x x
विष प्याली जो पी ली थी
वह मदिरा बनी नयन में
सौन्दर्य पलक प्याले का
अब प्रेम बना जीवन में[5]
x x x x
मादकता से आये तुम
संज्ञा से चले गये थे
हम व्याकुल पड़े बिलखते
थे, उतरे हुए नशे से।[6]
x x x x
यह तीव्र हृदय की मदिरा
जी भर कर—छक कर मेरी
अब लाल आँख दिखलाकर
मुझको ही तुमने फेरी।[7]

---

[3] 'प्रसाद ग्रंथावली'- खण्ड-1, पृ0-309, सम्पादक-रत्नशकर प्रसाद।
[4] 'प्रसाद ग्रथावली'- खण्ड-1, पृ0-312, सम्पादक-रत्नशकर प्रसाद।
[5] 'प्रसाद ग्रंथावली'- खण्ड-1, पृ0-313, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।
[6] 'प्रसाद ग्रंथावली'- खण्ड-1, पृ0-314, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।
[7] 'प्रसाद ग्रंथावली'- खण्ड-1, पृ0-316, सम्पादक-रत्नशकर प्रसाद।

कहना न होगा संस्कृत-काव्य-परम्परा से ग्राह्य मधु मादकता आदि प्रयोग जो 'कामायनी' में मिलते है, कवि उससे अलग यहाँ दूसरी परम्परा को अपनाता है। इसी प्रकार 'तुम सुमन नोचते सुनते करते जाते अनजानी', 'तुम सत्य रहे चिर सुन्दर! मेरे इस मिथ्या जग के', अथवा 'परिचित से जाने कब के तुम लगे उसी क्षण हमको।', 'गौरव था, नीचे आये प्रियतम मिलने को मेरे', या फिर 'किसलय नव कुसुम बिछाकर आये तुम इस क्यारी में।' 'तुम खिसक गये धीरे से रोते अब प्राण विकल से।' जैसी अनेक पंक्तियों के अन्तर्गत पुल्लिंग रूप में प्रिय को सम्बोधित करने में भी यह प्रभाव देखा जा सकता है किन्तु उल्लेखनीय है कि उर्दू-फारसी काव्यशैली का अनुसरण 'आँसू' की रचनात्मक मौलिकता को किसी भी प्रकार कम नहीं करता। प्रतीकों से हटकर 'आँसू' की शब्दयोजना पर यदि ध्यान दें, तो हम स्पष्ट देखते हैं कि 'बलखाना', 'इठलाना', 'इतराना', 'बेसुध होना', 'छकना', 'खिसकना', 'अलबेली', 'गलबाँही', 'बेगार' जैसे अनेक उर्दू प्रयोग संस्कृत प्रयोगों के साथ मिलकर विशिष्ट रचनात्मक उन्मेष की सृष्टि करते हैं। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है,

मैं बल खाता जाता था
मोहित बेसुध बलिहारी
अन्तर के तार खिंचे थे
तीखी थी तान हमारी[8]
x x x x
थी किस अनङ्ग के धनु की
वह शिथिल शिंजिनी दुहरी
अलबेली बाहुलता या
तनु छवि सर की नव लहरी?[9]
x x x x x

---

[8] 'प्रसाद ग्रंथावली'- खण्ड-1, पृ0-306, सम्पादक-रत्नशकर प्रसाद।
[9] 'प्रसाद ग्रंथावली'- खण्ड-1, पृ0-310, सम्पादक-रत्नशकर प्रसाद।

हिलते द्रुमदल कल किसलय
देती गलबाँही डाली
फूलों का चुम्बन, छिड़ती—
मधुपों की तान निराली।[10]
x x x x
सुख आहत शान्त उमंगे
बेगार साँस ढोने में
यह हृदय समाधि बना है
रोती करुणा कोने में।[11]

कहना न होगा यहाँ मोहित-अन्तर, शिथिल-शिञ्जिनी, चुम्बन-मधुप, और हृदय-समाधि जैसी शुद्ध संस्कृत शब्दावली के वजन में क्रमशः बेसुध, अलबेली, गलबाँही और बेगार जैसे उर्दू प्रयोग इस रूप में प्रयुक्त हुए हैं कि सम्पूर्ण बिम्ब उर्दू-फारसी काव्य वातावरण का संस्पर्श देते हुए भी अपनी जातीय पहचान बनाये रहता है। यों उर्दू के कुछ प्रयोग प्रसाद के रचनात्मक विकास के आरम्भिक दौर से मिल जाते हैं, किन्तु प्रौढ़ रचनाकाल में 'आँसू' की रचना प्रक्रिया इस दृष्टि से विशिष्ट है।

आधुनिक काल के काव्यखंड में नई धारा के तृतीय उत्थान के अन्तर्गत पंत के काव्य विकास की चर्चा के प्रसंग में परोक्ष रूप में 'आँसू' पर आचार्य शुक्ल की यह टिप्पणी उल्लेखनीय है, ''दूसरी बात ध्यान देने की यह है कि उस अज्ञात प्रियतम के प्रति प्रेम की व्यंजना में भी कवि ने प्रिय और प्रेमिका का स्वाभाविक पुरूष स्त्री भेद रखा है; 'प्रसाद' जी के समान दोनों को पुल्लिंग रखकर फारसी या सूफी रूढ़ि का अनुसरण नहीं किया है। इसी प्रकार वेदना की वैसी वीभत्स विवृत्ति

---

[10] 'प्रसाद ग्रंथावली'- खण्ड-1, पृ0-311, सम्पादक-रत्नशकर प्रसाद।
[11] 'प्रसाद ग्रंथावली'- खण्ड-1, पृ0-305, सम्पादक-रत्नशकर प्रसाद।

भी नहीं मिलती जैसी यह प्रसाद जी की है।''[12] प्रिय को पुल्लिंग रूप में सम्बोधित करने से अलग वेदना की वीभत्स वृत्ति के संदर्भ में आचार्य शुक्ल द्वारा जो पंक्तियाँ उद्धृत की गई हैं, वह इस प्रकार हैं,

'छिल छिल कर छाले फोड़े मल मल कर मृदुल चरण से।'

अन्तिम दो पंक्तियों द्वारा यह बन्ध इस प्रकार पूर्ण होता है,

छिल छिल कर छोले फोड़े
मल मल कर मृदुल चरण से
धुल धुल कर बह रह जाते
आँसू करुणा के कण से।[13]

कहना न होगा छालों का फूटना यद्यपि फारसी कविता के निकट है किंतु यहाँ 'छिल छिल' की दोहरी आवृत्ति निर्दयता को अमानवीयता के स्तर पर रूपायित करती है। इसी प्रकार दूसरी पंक्ति में 'मलमल' का प्रयोग पुनः उसी भाव को दोहराता है। इन छालों को 'मृदुल' चरणों से मला जाता है। कोमल चरणों वाले प्रिय द्वारा छालों को मलमल कर फोड़ना प्रिय की कोमलता का संकेत देते हुए भी उसकी निर्ममता को कम नहीं करता। अन्तिम दो पंक्तियों में कवि यह अभिव्यञ्जित करता है कि उसके अश्रु करुणा के कणों की भाँति हैं जिनमें से कुछ बह जाते हैं और कुछ शेष रह जाते हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण चित्र वेदना की वीभत्सता को नहीं वरन् प्रिय की निष्ठुरता को आधिक गहराई के साथ सम्प्रेषित करता है। 'छिल छिल' और 'मल मल' के दोहरे क्रियात्मक प्रयोग निर्ममता के अतिरेक को व्यञ्जित करने के साथ काव्यगत लयात्मकता की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है।

---

[12] 'हिन्दी साहित्य का इतिहास'-पृ0-473, रामचंद्र शुक्ल

[13] 'प्रसाद ग्रंथावली'- खण्ड-1, पृ0-304, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

'झरना', 'आँसू' और 'लहर'—प्रसाद की गीतसृष्टि के इस विकास क्रम में छायावादी काव्यभाषा की सघनता 'आँसू' के अनेक मुक्तकों के अन्तर्गत स्वतंत्र रूप में तो स्पष्ट है ही, यह काव्यात्मक सघनता उसके विधान के अन्तर्गत भी सूक्ष्म स्तर पर परिकल्पित है। 'आँसू' को नये संस्करण में जिस रूप में कवि ने सँवारा है वहाँ प्रणय की विविध भंगिमाएँ क्रमिक रूप में चित्रित हुई हैं। आरम्भ में वियोग की मनः स्थिति है, फिर अतीत की सुखद स्मृतियाँ हैं। कथा सन्ध्या के दृश्य से आरम्भ होती है, सन्ध्या रात में बदलती है और वह जैसे जैसे गहरी होती है वैसे-वैसे विरहानुभूति तीव्र होती है। रात्रि की सघनता और विरह की सघनता में एक प्रकार का बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव देखा जा सकता है,

नीरव मुरली, कलरव चुप
अलिकुल थे बन्द नलिन में
कालिन्दी बही प्रणय की
इस तममय हृदय पुलिन में।[14]

यहाँ मुरली की नीरवता, कलरव की चुप्पी, अलि-वृन्द की नलिन में बन्द स्थिति और इस सम्पूर्ण परिदृश्य की पृष्ठभूमि में कालिन्दी का बहना रात्रिकालीन नीरवता और शांत वातावरण को अभिव्यञ्जित करता है किन्तु उल्लेखनीय है कि यह कालिन्दी प्रणय की है और तट है—अन्धकारपूर्ण हृदय। तट और कालिन्दी की कालिमा का यह वर्ण साम्य रात के अन्धकार के साथ प्रणय जनित जीवनान्धकार को भी गहराता है। इस प्रकार तममय हृदय पुलिन पर बहती प्रणय कालिन्दी का यह चित्र क्रमशः गहराती रात के साथ प्रणय जनित निराशा की संश्लिष्ट अनुभूति

---

[14] 'प्रसाद ग्रथावली'- खण्ड-1, पृ0-313, सम्पादक-रत्नशकर प्रसाद।

को जहाँ अपनी पूर्णता में व्यक्त करता है, वहीं अगले कुछ मुक्तकों में कवि की विरह जनित वेदना क्रमशः इस रूप में विस्तार पाती है,

कुसुमाकर रजनी के जो
पिछले पहरों में खिलता
उस मृदुल शिरीष सुमन सा
मैं प्रात धूल में मिलता।

व्याकुल उस मधु सौरभ से
मलयानिल धीरे धीरे
निश्वास छोड़ जाता है
अब विरह तरङ्गिनि तीरे।

चुम्बन अंकित प्राची का
पीला कपोल दिखलाता
मैं कोरी आँख निरखता
पथ, प्रात समय सो जाता

श्यामल अञ्चल धरणी का
भर मुक्ता आँसू कन से
छूंछा बादल बन आया
मैं प्रेम प्रभात गगन से[15]

इसी प्रकार प्रिय का रूप वर्णन हो अथवा चौदह भुवनों में भ्रमण करके आई वेदना सम्बन्धी मुक्तक, भावचित्रों की ऐसी अनेक श्रंखलाएँ आँसू के अन्तर्गत उसके प्रबन्धत्व को विस्तार देती है। अंतिम अंशों तक आते आते कवि की निजी प्रणय वेदना सार्वभौम व्यापक अनुभूति में बदल जाती है और काव्य का समापन प्रात:कालीन परिवेश में होता है, 'बरसो प्रभात हिमकन सा आँसू इस विश्व सदन

[15] 'प्रसाद ग्रंथावली'- खण्ड-1, पृ0-313, सम्पादक-रत्नशकर प्रसाद।

में।' इस प्रकार कवि की निजी प्रणय कथा के समानान्तर सन्ध्या से लेकर प्रभात तक की यह अनुभूति यात्रा इस सूक्ष्म प्रबन्ध विधान का उपजीव्य बनती है। कहना न होगा विधान के स्तर पर अर्थ का यह संश्लिष्ट अद्वैत द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मकता से आगे छायावादी काव्यभाषा की सघनता का प्रमाण है जो अपने प्रबन्धत्व में 'आँसू' के अन्तर्गत विकसित हुआ और जिसका प्रौढ़तम रूप 'कामायनी' में दिखाई दिया।

'आँसू' के आलम्बन को लेकर पर्याप्त मतभेद रहा है। आलम्बन की लौकिकला और अलौकिकता से अलग यदि भाषिक दृष्टि से विचार करें तो संस्कृत काव्य रूढ़ियों में बँधा 'आँसू' का नखशिख वर्णन उसके आलम्बन को जो रूप और आकार देता है, यद्यपि मध्यकालीन काव्य-परम्परा से अलग किसी नवीनता का बोध नहीं कराता किन्तु अतीत की सुखद स्मृतियाँ संयोग के जो चित्र प्रस्तुत करती हैं, वहाँ कवि की अनुभूति इतनी वैयक्तिक और मौलिक है कि उस पर किसी अनुकरण का आरोप अंसगत होगा। उदाहरण के लिये नखशिख वर्णन के बाद उस रूप की मादकता और पवित्रता का चित्र, 'चञ्चला स्नान कर आवे चन्द्रिका पर्व में जैसी/उस पावन तन की शोभा आलोक मधुर थी ऐसी!' अथवा उस सौन्दर्य की माया और छलना का बोध, 'छलना थी, तब भी मेरा उसमें विश्वास घना था।/ उस माया की छाया में कुछ सच्चा स्वयं बना था।' या फिर प्रिय के रूप सम्मोहन और उसके आगमन सम्बन्धी चित्र, 'गौरव था, नीचे आये प्रियतम मिलने को मेरे/मैं इठला उठा अकिञ्चन देखे ज्यों स्वप्न सबेरे।' 'शशि मुख पर घूँघट डाले अंचल में दीप छिपाये/जीवन की गोधूली में कौतूहल से तुम आये।'—प्रसाद की प्रणयानुभूति को इतनी गहराई देते है कि आलम्बन की लौकिकता और अलौकिकता से अलग हम कवि की काव्य संवेदना पर मुग्ध होते हैं—कहना न

होगा उसका स्वर जितना अपना है उतना ही गहरा, गीतिकाव्य के रूप में आँसू की सफलता का शायद यही रहस्य है।

संयोग की सुखद स्मृतियों के संदर्भ में 'आँसू' का प्रसिद्ध बंध द्रष्टव्य है,

परिरम्भ कुम्भ की मदिरा
निश्वास मलय के झोंके
मुखचन्द्र चाँदनी जल से
मै उठता था मुँह धोके।

थक जाती थी सुख रजनी
मुख चन्द्र हृदय में होता
श्रम सीकर सदृश नखत से
अम्बर पट भींगा होता।[16]

'कुम्भ की मदिरा' में जहाँ आलिंगन की मादकता है वहीं 'मलय के झोंके' प्रणय की उन्मदता का बोध कराते हैं। संयोग का यह चित्र अन्तिम दो पंक्तियों द्वारा पूरा होता है जहाँ कवि प्रिय के मुखचन्द्र की उज्जवल आभा से मुँह धोकर उठने का उल्लेख करता है। इसी प्रकार अगले बन्ध में 'सुख रजनी' के थकित होने में क्रमशः सुख के तिरोहित होने का नहीं वरन् प्रणय की निरन्तरता और सुखद स्थिति का बोध है। श्रमबिन्दु रूप नक्षत्रों से अम्बर पट का भींगना प्रणय की निरन्तरता को गति देने के साथ संयोग की शांत, मधुर और पवित्र प्रतीति भी कराता है।चन्द्रमा, चाँदनी और नक्षत्रों वाली रात में प्रणय की उन्मदता के साथ संयोग की मधुरता और पवित्रता का यह चित्र 'सुख रजनी' पर भी आरोपित होता है। रूपक द्वारा रचा गया यह बिम्ब अपनी सघनता में कवि की सूक्ष्म काव्यानुभूति को अपनी

---

[16] 'प्रसाद ग्रंथावली'- खण्ड-1, पृ0-311, सम्पादक-रत्नशकर प्रसाद।

संश्लिष्टता में व्यक्त करता है। छायावादी काव्यभाषा का यह वैशिष्ट्य 'आँसू' के अन्तर्गत प्रबन्ध और मुक्तक दोनों रूपों में स्पष्ट है।

'आँसू' में वर्णित नखशिख वर्णन के अतिरिक्त उसका महत्वपूर्ण पक्ष है उसमें निहित वह पीड़ा और वेदना जो उसकी प्रणय कथा को एक व्यापक आधार देती है। 'आँसू' के आरम्भ में ही वेदना की असीमता का वर्णन इस रूप में होता है,

> इस करुणा कलित हृदय में
> क्यों विकल रागिनी बजती
> क्यों हाहाकार स्वरों में
> वेदना असीम गरजती?[17]

यहाँ वेदना की जिस गर्जना का उल्लेख है, उस पर आपत्ति करते हुए श्री रामनरेश त्रिपाठी लिखते है, ''वेदना गरजती' पर ध्यान दीजिये। वेदना करुणोत्पादक होती है और गर्जना वीरता व्यञ्जक। दोनों का मेल नहीं हो सकता। वेदना सिसक सकती है, चीत्कार कर सकती है, गरज नहीं सकती।''[18] 'आँसू' में अन्तर्निहित वेदना की इस गर्जना के सम्बन्ध में बच्चन सिंह भी लिखते हैं, ''वेदना का गरजना, वह भी हाहाकार स्वरों में, वेदना के स्वरूप को ही विकृत कर देता है। वेदना और उसके गरजने में गहरी असंगति है।''[19] किन्तु उल्लेखनीय है कि वेदना की 'असीमता' उसकी विराटता का संकेत देती है और विराटता के संदर्भ में वेदना की गर्जना असंगत नहीं है। यह 'असीम वेदना' ही 'आँसू' की भावभूमि का आधार है जिसका संकेत कवि 'आँसू' के इस आरम्भिक बंध में ही करता है। रागिनी के बजने में

---

[17] 'प्रसाद ग्रंथावली'- खण्ड-1, पृ0-303, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।
[18] 'कविता कौमुदी' (दूसरा भाग, चौथा परिवर्धित संस्करण) भूमिका, रामनरेश त्रिपाठी।
[19] 'आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास'-पृ0-145, बच्चन सिंह

संगीत की कोमलता सन्निहित है और वेदना की गर्जना विपरीत भावबोध को व्यक्त करती है। 'बजना' और 'गरजना' दो विपरीत भावबोध वाली क्रियाओं की क्रियाशीलता 'आँसू' से वेदना के सम्बन्ध को सहज ही स्थापित कर देती है।

प्रेम में मिली असफलता कवि को निराश नहीं करती। आशा निराशा में डूबता उतराता कवि यह जान लेता है कि,

नचती है नियति नटी सी
कन्दुक-क्रीड़ा सी करती
इस व्यथित विश्व आँगन में
अपना अतृप्त मन भरती।[20]

नियति नटी के मन की अतृप्तता यह संकेतित करती है कि मानो सुख ही जीवन नहीं है। दुःख की अभोग स्थिति से नियति नटी का मन अतृप्त है जो व्यथित विश्व आँगन में क्रीड़ा करने से ही संतुष्ट होता है। यहाँ नियति नटी का उपमान जहाँ भिन्न-भिन्न रूपों में वेदना की विभिन्न भंगिमाओं का संकेत देता है, वहीं विश्व आँगन में उसका क्रीड़ा करना उसके सर्वव्यापी अधिकार को अभिव्यक्ति देता है।

यह वेदना जड़ चेतन सभी में व्याप्त है। मानस कुमुदों का रूदन, जलनिधि में उठती तंरगों का हाहाकार, चिरकाल से मौन शैल-मालाएँ, मधुकर की कलियों के साथ मनमानी, सरिता का सूखना और दीपक का बुझना सब वेदना का ही प्रतिरूप है। अन्ततः 'मानव जीवन वेदी' पर 'विरह और मिलन' के परिणय की महत्ता को कवि स्वीकार करता है। इस प्रकार आरम्भिक अंशों में हाहाकार स्वरों में गरजती वेदना अब उसके लिये दुख का विषय नहीं रह जाती। वह उसे संसार के द्वन्द्वों के परिणय की 'सुरभिमयी जयमाला' के रूप में परिकल्पित करता है। वह 'विश्ववेदना

---

[20]'प्रसाद ग्रंथावली'- खण्ड-1, पृ0-321, सम्पादक-रत्नशकर प्रसाद।

वाला' बनकर 'सदा सुहागिन' और 'मानवता सिर की रोली' बनती है। 'बड़वानल की ज्वाला' और 'अनलबाला' के रूप में वह उसकी सार्थकता को स्वीकार करता है। लेकिन उल्लेखनीय है कि इन नये-नये अप्रस्तुतों और नवीन कल्पना प्रयोगों के होते हुए भी 'आँसू' के अन्तर्गत वेदना सम्बन्धी वे चित्र अधिक मार्मिक और हृदय को छूने वाले हैं जहाँ कवि अपनी व्यक्तिगत विरह व्यथा या फिर सम्पूर्ण प्रकृति में व्याप्त वेदना का उल्लेख करता है,

रो रोकर सिसक सिसक कर
कहता मैं करुण कहानी
तुम सुमन नोचते सुनते
करते जाते अनजानी।[21]
x x x x
शीतल समीर आता है
कर पावन परस तुम्हारा
मैं सिहर उठा करता हूँ
बरसा कर आँसू धारा[22]

अथवा,

रजनी की रोई आँखें
आलोक बिन्दु टपकातीं
तम की काली छलनाएँ
उनको चुप चुप पी जातीं।

---

[21] 'प्रसाद ग्रथावली'- खण्ड-1, पृ0-306, सम्पादक-रत्नशकर प्रसाद।
[22] 'प्रसाद ग्रथावली'- खण्ड-1, पृ0-315, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

सुख अपमानित करता सा
जब व्यंग्य हँसी हँसता है
चुपके से तब मत रो तू
यह कैसी परवशता है।

अपने आँसू की अञ्जलि
आँखों में भर क्यों पीता
नक्षत्र पतन के क्षण में
उज्जवल होकर है जीता।[23]

इसी प्रकार वेदना की भावभूमि से जुड़े समरसता सम्बन्धी वे चित्र जो कवि की अनुभूति का विषय बनते हैं,

क्यों छलक रहा दुःख मेरा
ऊषा की मृदु पलकों में
हाँ, उलझ रहा सुख मेरा
सन्ध्या की धन अलकों में

लिपटे सोते थे मन में
सुख दुःख दोनों ही ऐसे
चन्द्रिका अँधेरी मिलती
मालती कुञ्ज में जैसे।[24]

ऐसी अनेक पंक्तियाँ 'आँसू' से उद्धृत की जा सकती हैं। इन पंक्तियों में कवि की अनुभूति इतनी गहराई के साथ सम्प्रेषित होती है कि आँसू में निहित वेदना के लिये जब जीवन के उल्लास और उमंग का यह स्वर मुखरित होता है कि 'है पड़ी हुई मुँह ढक कर मन की जितनी पीड़ाएँ।/ वे हँसने लगें सुमन सी करती कोमल

---

[23] 'प्रसाद ग्रथावली'- खण्ड-1, पृ0-323, सम्पादक-रत्नशकर प्रसाद।
[24] 'प्रसाद ग्रंथावली'- खण्ड-1, पृ0-319, सम्पादक-रत्नशकर प्रसाद।

क्रीड़ाएँ।' तब 'आँसू' का समापन मात्र दार्शनिक निरूपण नहीं बल्कि उसके अनुभव से निचोड़े गये सत्य के प्रति कवि के विश्वास को भी स्वर देता है। अन्ततः वेदना सम्बन्धी इस विवेचन के साथ 'आँसू' के इस विवेचन को भी समाप्त करते हुए आचार्य नंद दुलारे वाजपेयी के शब्दों में कहा जा सकता है कि, ''उद्दाम श्रृंगारिक स्मृतियों के साथ सम्पूर्ण समाधानकारक दार्शनिकता 'आँसू' की विशेषता है। भावनाओं के असाधारण उद्वेग के साथ उतनी ही प्रगाढ़ दार्शनिक अनुभूति का योग रचना में एक अपूर्व मार्मिकता और संतुलन ले आता है। यह दर्शन-शासित प्रेम-गीति, नई कल्पना तथा नये काव्याभरण का योग पाकर युग की एक प्रतिनिधि कृति हो गई है।''[25]

→

[25] 'जयशंकर प्रसाद'-पृ0-23, श्री नंददुलारे वाजपेयी।

लहर : प्रौढ़ गीतसृष्टि
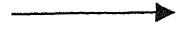
आधुनिक हिन्दी कविता में गीत की शुरुआत छायावाद से होती है और इस दृष्टि से 'झरना' के गीतों के महत्व से हम अनभिज्ञ नहीं हैं। किन्तु 'झरना' के कुछ गीत जहाँ इतिवृत्तात्मक वर्णन शैली से मुक्त नहीं हो सके हैं वहीं छायावाद के अंत तक लिखे गये गीतों में भी सरलीकरण की प्रवृत्ति अधिक है। प्रसाद और निराला—छायावाद के इन दो शीर्षस्थ कवियों के गीत अपनी सघनता और संश्लिष्टता में गीत विधान के स्थूल रूप से हटकर गीत रचना का वह मानक प्रस्तुत करते हैं, जहाँ काव्य तत्व अनिवार्यतः सघन रूप में सुरक्षित रहा है। निराला खड़ीबोली में उच्चारण संगीत के भीतर से जीवन की प्रतिष्ठा का स्वप्न देखते हैं तो प्रसाद के गीत चाहे वह उनके नाटकों के गीत हों या उनकी प्रौढ़ गीतसृष्टि 'लहर' के गीत—सम्पूर्ण काव्यात्मकता के साथ लोकप्रिय रहे हैं।

गीत तत्व प्रसाद काव्य का वैशिष्ट्य है, 'लहर' में उसका सर्वोत्कृष्ट रूप देखने को मिलता है। 'झरना' के गीतों द्वारा खड़ीबोली में गीत रचना की जो शुरुआत हुई वह 'आँसू' की गीतात्मकता के माध्यम से 'लहर' में पूरे वैविध्य के साथ प्रकट हुई। 'लहर' कवि के अन्तस्तल में उठने वाली आनन्द की लहर का प्रतीक है। कवि कामना करता है कि आनन्द की ये लहर जीवनतट के सूखे अधरों को चूम कर रससिक्त कर दे। 'लहर' शीर्षक इस पहली कविता का आरम्भ यों होता है,

उठ उठ री लघु लघु लोल लहर!
करुणा की नव अँगराई-सी,
मलयानिल की परछाई-सी,
इस सूखे तट पर छिटक छहर![1]

---

[1] 'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड-1, पृ0-335, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

समस्त संसार के प्रति करुणा का भाव नई चेतना और नये उल्लास को जन्म देता है, अतः अन्तस्तल में उठने वाली आनन्द की लहर के लिये कवि यहाँ 'करुणा की नव अँगराई' का उपमान चुनता है। लहरें बनती है और बालू के सूखे तट पर छिटक कर विलीन हो जाती हैं। लहर की शीतलता मलयानिल की भाँति है और क्षण प्रतिक्षण उसके अमूर्त होने की प्रक्रिया मलयानिल के प्रतिबिम्ब के समकक्ष। विशेष द्रष्टव्य है मलयानिल स्वयं अमूर्त है और उसका प्रतिबिम्ब और भी अमूर्त। यह दोहरी अमूर्तता सूखे तट पर लहर के छिटक कर विलीन होने की प्रक्रिया को अधिक सफलतापूर्वक रूपायित करती है। इन अमूर्त उपमानों की नियोजना द्वारा सागर तट पर उठती गिरती लहरों के माध्यम से अन्तस-सागर में उठने वाली लहरों का चित्र अपनी संश्लिष्टता में द्विवदीयुगीन इतिवृत्तात्मकता से बिल्कुल अलग उस परिपक्व बिम्ब क्षमता को ध्वनित करता है जिसका संकेत बहुत पहले 'झरना' के इस गीत में या कुछ अन्य गीतों में भी दिखाई दिया था,

मधुर है स्रोत मधुर है लहरी
न है उत्पात, छटा है छहरी
मनोहर झरना।
कठिन गिरि कहाँ विदारित करना
बात कुछ छिपी हुई है गहरी
मधुर है स्रोत मधुर है लहरी[2]

कहना न होगा 'लहर' के प्रायः सभी गीत इस परिपक्व बिम्ब क्षमता का प्रमाण हैं जहाँ उपमेय और उपमान के ब्यौरेदार वर्णन से अलग अप्रस्तुत के हल्के संकेत द्वारा ही सम्पूर्ण चित्र अपनी संश्लिष्टता में ग्राह्य होता है। 'बीती विभावरी जाग री',

---

[2] 'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड-1, पृ0-233, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

'ले चल मुझे भुलावा देकर', 'अब जागो जीवन के प्रभात', या फिर 'कितने दिन जीवन जलनिधि में' और 'वे कुछ दिन कितने सुन्दर थे' जैसे गीतों में कोमल ध्वनि समूहों द्वारा संश्लिष्ट चित्रों और बिम्बों को कवि गीत की लय में जिस रूप में यहाँ ढालता है, वहाँ कविता और लय का अद्‌भुत सामरस्य इन काव्यगीतों अथवा गीत रचनाओं को असाधारण महत्व प्रदान करता है।

इस प्रकार द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मकता को पीछे छोड़ चुका कवि 'झरना' के बाद 'आँसू' में खण्डित प्रबन्धात्मकता के साथ गीत की लय साधता है किन्तु 'लहर' तक आते आते गीतभाषा का परिपक्व रूप सामने आता है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है,

बीती विभावरी जाग री!
अम्बर पनघट में डुबो रही—
तारा-घट ऊषा नागरी।
खग-कुल कुल कुल सा बोल रहा,
किसलय का अञ्चल डोल रहा,
तो यह लतिका भी भर लाई—
मधु मुकुल नवल रस गागरी।
अधरों में राग अमंद पिये,
अलकों में मलयज बंद किये—
तू अब तक सोई है आली।
आँखों में भरे विहाग री![3]

यहाँ गीत की पहली पंक्ति विभावरी के बीत जाने पर सोई हुई आली को जगाने का प्रबोधन देती है लेकिन समापन अंश श्रृंगारिक परिवेश को अधिक उभारता है।

---

[3] 'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड-1, पृ0-345, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

आँखों में विहाग भरे हुई आली को जगाने की प्रक्रिया श्रृंगार की सहज प्रतीति कराती है। अधरों द्वारा राग का पान और अलकों में मलयज का वास वातावरण को और भी श्रृंगारिक बनाता है। इस श्रृंगारिक परिवेश में भी प्रात:कालीन ताज़गी से भरपूर ऊषा का यह चित्र चैतन्य के जागरण की सूक्ष्म प्रतीति भी कराता है और शायद इसीलिये नंद दुलारे वाजपेयी 'लहर' के इस प्रसिद्ध जागरण गीत को प्रसाद के सम्पूर्ण काव्य-प्रयास के साथ उनकी युग-चेतना का परिचायक प्रतिनिधि गीत कहते हैं। अम्बर के साथ पनघट की संगति अम्बर रूपी पनघट की रूपकात्मकता को लावण्यमय लोकात्मक संस्कार देती है। खगकुल के साथ कुल-कुल का प्रयोग शब्दगत साम्य और लयात्मक प्रवाह के साथ प्रात: काल चहचहाते पक्षियों की चहचहाट को स्वर देता है।

छायावादी गीतिकाव्य का विवेचन करते हुए डा0 प्रेमशंकर लिखते हैं, "छायावाद की कविताओं, विशेषतया गीतों में ऐसा समन्वित स्वरूप सम्मुख आया कि श्रृंगार, प्रेम, वियोग के अतिरिक्त अन्य भावनाओं की अभिव्यक्ति भी उनके द्वारा हुई। हिन्दी गीतिकाव्य का यह बहुमुखी प्रसार एक नवीन वस्तु है।"[4] कहना न होगा प्रसाद-काव्य के अन्तर्गत गीतिकाव्य का यह वैशिष्ट्य 'लहर' में ही उभरता है। प्रकृति, प्रेम, करुणा और सौन्दर्य से सम्बन्धित 'लहर' के गीत जहाँ स्वतंत्र प्रगीत का मानक प्रस्तुत करते हैं वहीं ऐतिहासिक कथानक को आधार बनाकर रची गई अन्तिम चार कविताओं में प्रबन्ध तत्व का निर्वाह भी हुआ है। इनमें 'शेरसिंह का शस्त्र समर्पण' और 'प्रलय की छाया' शीर्षक दो कविताएँ नाटकीय आख्यानक गीतियों के रूप में हैं। कुछ कविताएँ संलाप गुण के निकट है; यथा 'हंस' के आत्मकथाङ्क के लिये लिखी गई कविता 'मधुप गुनगुना कर कह जाता कौन कहानी

---

[4] 'प्रसाद का काव्य' पृ0-175, प्रेमशंकर।

यह अपनी' और 'निज अलकों के अन्धकार में तुम कैसे छिप आओगे?' इस प्रकार 'लहर' का वैशिष्ट्य वस्तुतः भिन्न भिन्न भावनाओं के संयोजन के साथ विधान के उस वैविध्य में भी है जो अपनी अनेकरूपता में गीत रचना के अन्तर्गत विकसित हुआ।

मूलगन्ध कुटी विहार सारनाथ की प्रतिष्ठा के अवसर पर लिखी गई दो कविताएँ 'अरी वरुणा की शांत कछार' एवं 'जगती की मंगलमयी ऊषा' 'लहर' के अन्तर्गत संकलित हैं। दोनों ही कविताओं के अन्तर्गत कवि करुणा और प्रेम की तात्विक भावना का चित्रण महात्मा बुद्ध के जीवन प्रसंग और उनके दर्शन की पृष्ठभूमि में करता है,

छोड़कर पार्थिव भोग विभूति, प्रेयसी का वह दुर्लभ प्यार।
पिता का वक्ष भरा वात्सल्य, पुत्र का शैशव सुलभ दुलार।
दुःख का करके सत्य निदान, प्राणियों का करने उद्धार।
सुनाने आरण्यक संवाद, तथागत आया तेरे द्वार।[5]

'प्रेयसी का दुर्लभ प्यार', 'पिता का वक्ष भरा वात्सल्य' और पुत्र का 'शैशव सुलभ दुलार' छोड़कर तथागत 'वरुणा की शांत कछार' पर आता है अतः कवि उसे 'तपस्वी के विराग की प्यार' का गौरव देता है। नित्य व्यवहार में प्रचलित 'प्यार' के साथ शुद्ध तत्सम शब्द 'विराग' की संगति और विराग (रागविहीन) की प्यार (रागयुक्त) में विरोध भाव की व्यञ्जना भाषिक सृजनात्मकता का सुन्दर उदाहरण है। 'तपस्वी के विराग की प्यार' की यह परिकल्पना पूरी कविता के कलेवर को समेटती हुई 'वरुणा की शांत कछार' को बौद्ध दर्शन से आद्यन्त जोड़ती है। यही वह तट है जिसके सघन कुञ्जों में बौद्ध दर्शन के संवाद होते थे, विश्वमानवता का जयघोष यहीं हुआ था और 'जीवन के अतिवाद' को छोड़कर 'मध्यपथ' के

---

[5] 'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड-1, पृ0-338, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

अवलम्बन का पावन उपदेश भी यहीं दिया गया था। कविता का समापन निम्न पंक्तियों में पूरी ऐतिहासिक भव्यता के साथ होता है—

तुम्हारा वह अभिनन्दन दिव्य, और उस यश का विमल प्रचार।
सकल वसुधा को दे संदेश, धन्य होता है बारम्बार।
आज कितनी शताब्दियों बाद, उठी ध्वसों में वह झंकार।
प्रतिध्वनि जिसकी सुने दिगन्त, विश्ववाणी का बने विहार।[6]

बुद्ध का पवित्र संदेश हमें विस्मृत नहीं करना है—मूलगन्ध कुटी विहार के समारोहोत्सव में गाये गये दूसरे गीत में यह भाव प्रमुख रूप से उभरता है। दया, करुणा, दुःख आदि के लिये कवि जो प्रकृति बिम्ब इस गीत में रचता है, बौद्ध धर्म की दार्शनिक शब्दावली का संदर्भ पाकर वे और भी प्रासंगिक और जीवन्त हो उठते हैं। कुछ उदाहरण प्रासंगिक होंगे,

जगती की मंगलमयी ऊषा बन
करुणा उस दिन आई थी।
जिसके नव गैरिक अंचल की प्राची में भरी ललाई थी।[7]
....
खिलती पँखुरी पंकज-वन की,
खुल रही आँख ऋषि पत्तन की,
दुख की निर्ममता निरख कुसुम-रस के मिस जो भर आई थी।[8]
....
प्राची का पथिक चला आता,
नभ पद-पराग से भर जाता,
वे थे पुनीत परमाणु दया ने जिनसे सृष्टि बनाई थी।[9]

---

[6]'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड-1, पृ0-339, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।
[7]'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड-1, पृ0-358, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।
[8]'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड-1, पृ0-358, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।
[9]'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड-1, पृ0-359, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

इन बिम्बों के अतिरिक्त पहले गीत में प्रयुक्त 'आरण्यक', 'तथागत', 'मध्यपथ', 'अतिवाद' आदि शब्द भी प्रसाद की काव्यभाषा के संदर्भ में विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं, जहाँ दार्शनिक शब्दावली भी कविता की केन्द्रीय संवेदना से जुड़कर गीत की लय में सहज लयमान होती है। ठीक इसी प्रकार संगीत की शब्दावली द्वारा रचे गये बिम्ब भी 'लहर' के गीतों में अनेक स्थलों पर देखे जा सकते हैं,

अधरों में राग अमंद पिये, ... आँखों में भरे विहाग री![10]

x x x x x x x x x

आँखों में अलख जगाने को;/यह आज भैरवी आई है।[11]

x x x x x x x x x

तरल तान गावेगी वंचित!/पागल सी इस पथ निरवधि में![12]

x x x x x x x x x

प्राणों की व्याकुल पुकार पर एक मींड़ ठहरा जाओ।[13]

x x x x x x x x x

क्रन्दन रमणियों का, /भैरव संगीत बना,[14]

कहना न होगा कविता, दर्शन और संगीत का यह मेल प्रसाद के गीतों में इस प्रकार समरस हो गया है जहाँ किसी के बीच कोई फाँक दिखाई नहीं देती और प्रसाद के गीतों को अपनी अलग आवाज़ और पहचान देती है।

'लहर' के गीतों के सम्बन्ध में उल्लेखनीय है कि यहाँ बौद्धों के करुणा दर्शन को विस्तार देते हुए भी प्रसाद काव्य का मूलतत्व सुनिश्चित है, जहाँ बौद्ध दर्शन की करुणा और दुःखवाद कवि की आनन्दवादी जीवनदृष्टि को विखण्डित नहीं करती। कुछ गीतों में अतीत की स्मृतियाँ भी हैं, किन्तु 'आँसू' की भाँति वे

---

[10] 'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड-1, पृ0-345, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

[11] 'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड-1, पृ0-346, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

[12] 'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड-1, पृ0-352, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

[13] 'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड-1, पृ0-355, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

[14] 'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड-1, पृ0-384, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

हाहाकार स्वरों में गरजती नहीं हैं। आनन्द की जिस 'लघु लघु लोल लहर' का आह्वान कवि आरम्भिक कविता में करता है, कवि की वह दृष्टि 'लहर' के अनेक गीतों में विस्तार पाती है और 'कामायनी' में अपने पूरे संघषीर्य सौन्दर्य और विश्वास के साथ प्रतिष्ठित होती है। प्रसाद के इस काव्य विकास को रेखाङ्कित करते हुए बच्चनसिंह लिखते हैं, ''कामायनी' का सौन्दर्य बोध तब तक संभव नहीं है जब तक 'लहर' का 'एस्थेटिक्स' न समझ लिया जाय।''[15] वस्तुतः कामायनी की पूर्वकृति के रूप में जीवन और जागरण का यह स्वर 'लहर' के अनेक गीतों में जगा है। कुछ एक उदाहरण प्रासंगिक होंगे,

> निस्सीम व्योम तल नील अंक में—
> अरुण ज्योति की झील बनेनी कब सलील?[16]
>
> x x x x x x x
>
> करुणा का नव अभिनन्दन हो—
> वह जीवन गीत सुना जा रे![17]
>
> x x x x x x x
>
> प्रेमवेणु की स्वर लहरी में जीवन गीत सुना जाओ।[18]
>
> x x x x x x x
>
> मेरा अनुराग फैलने दो,
> नभ के अभिनव कलरव में,
> जाकर सूनेपन के तम में—
> बन किरन कभी आ जाना।[19]
>
> x x x x x x x

---

[15] 'आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास'-पृ0- 146, बच्चन सिंह।

[16] 'प्रसाद ग्रथांवली'-खण्ड-1, पृ0-342, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

[17] 'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड-1, पृ0-354, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

[18] 'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड-1, पृ0-355, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

[19] 'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड-1, पृ0-364, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

अन्धकार का जलधि लाँघ कर
आवेंगी शशि-किरनें,
अन्तरिक्ष छिड़केगा कन कन
निशि में मधुर तुहिन को।[20]

x x x x x x x x

तू बढ़ जाता अरे अकिंचन, छोड़ करुण स्वर अपना,
सोने वाले जग कर देखें अपने सुख का सपना![21]

इस प्रकार सन् 1935 में प्रकाशित 'लहर' के गीत 'झरना' के भावुक कवि मन की परिपक्वता का प्रमाण हैं। यदि प्रभात कवि के लिये जागरण का प्रतीक है तो रात्रि की प्रशांत अवस्था विश्राम के सुखद क्षणों का बोध कराती है। रात्रिकालीन नीरवता और अलसता का चित्र 'लहर' के इस गीत में द्रष्टव्य है,

पथ सोये हों हरियाली में,
हों सुमन सो रहे डाली में,
हो अलस उनींदी नखत पाँत!
नीरव प्रशान्ति का मौन बना,
चुपके किसलय से बिछल छना;
थकता हो पंथी मलय-वात।[22]

प्रकृति का प्रत्येक उपादान रात में सोया हुआ है। हरियाली में पथ सोये हैं, डाली में सुमन सोये हैं। नक्षत्रों की पंक्ति भी आलस्य में उनींदी अवस्था में है। प्रकृति के प्रत्येक उपादान की यह सुप्तावस्था मानों विश्राम की सुखद स्थिति है और कवि इस स्थिति की अनन्त निरन्तरता की कामना करता है,

अपलक जगती हो एक रात!

---

[20] 'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड-1, पृ0-366, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।
[21] 'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड-1, पृ0-370, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।
[22] 'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड-1, पृ0-357, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

कवि को रात का जगना अपेक्षित है। यहाँ रात का जगना विरोध भाव को जन्म देता है। रात जिसके आश्रय में समस्त प्रकृति सुप्तावस्था में है, उसका जगना ही पूरी कविता का केन्द्र है। रात के जगने में रात्रि की निरन्तरता का भाव सन्निहित है, उसका अपलक जगना इस निरन्तरता के भाव को दृढ़ करता है।

इस प्रकार 'लहर' के गीतों में कवि रात को भी जगता है। उषा, प्रभात, ज्योति, किरन की छायाओं से रचे गये बिम्बों के अतिरिक्त सन्ध्या और रात्रि के चित्रों में भी आँसू जैसी 'अभावशून्यता' नहीं है। ये रात 'कोमल कुसुमों की मधुर रात' है जिसमें सम्पूर्ण विश्व पुलकित होता है। कहीं जाते हुए 'सुख निशीथ' को रोकने की कामना है तो कहीं थकी सोई 'मौन व्यथा' को न जगाने का उपेक्षा भाव निहित है। 'लहर' का प्रसिद्ध गीत 'ले चल मुझे भुलावा देकर, मेरे नाविक धीरे-धीरे', सन्ध्या के प्रति प्रसाद की गहरी संसक्ति का सुन्दर उदाहरण है जहाँ भुलावा देने में कहीं भी जीवन से पलायन का भाव उद्घाटित नहीं होता वरन् पूरी कविता में जहाँ 'कोलाहल की अवनी' को त्याग विश्राम के क्षणों की सुखद अनुभूति है, वहीं उषा नयनों के माध्यम से अमर जागरण का संदेश भी,

जहाँ साँझ सी जीवन छाया,
ढीले अपनी कोमल काया,
नील नयन से ढुलकाती हो,
ताराओं की पाँत घनी रे।

जिस गम्भीर मधुर छाया में—
विश्व चित्र-पट चल माया में—
विभुता विभु सी पड़े दिखाई,
दुख-सुख वाली सत्य बनी रे।

श्रम विश्राम क्षितिज वेला से—
जहाँ सृजन करते मेला से—
अमर जागरण उषा नयन से—
बिखराती हो ज्योति घनी रे![23]

यहाँ सन्ध्या के प्रथम चित्र में विश्राम के क्षणों की सुखद अनुभूति है, उसके दूसरे और तीसरे चित्र क्रमशः जीवन की सत्यता (दुख-सुख वाली सत्य बनी रे) और अमर जागरण का संदेश देते हैं। मेला जीवन के उल्लास का प्रतीक है। जीवन छाया द्वारा कोमल काया ढीला करने की प्रक्रिया जीवन के ढीलेपन को रूपायित करती हैं, जो सन्ध्या और उससे सम्पृक्त विश्राम के क्षणों का सुखद बोध कराती है।

'लहर' का कवि 'जीवन के प्रभात' को जगाकर सारे करुणाश्रुओं को समेटने की कामना करता है। वसुधा के आँचल पर ओस की बूँदे प्रकृति के आँसुओं के रूप में बिखरी हैं। प्रभात होते ही यह ओस की बूँदे विलुप्त हो जाती हैं। ऊषा अपने अरुणगात द्वारा 'इन हिमकन रूपी आँसुओं' को बटोर लेती है। कवि के लिये यह प्रेरणा का विषय है, इसीलिये वह कहता है,

अब जागो जीवन के प्रभात!
तम-नयनों की तारायें सब—
मुँद रही किरण दल में है अब,
चल रहा सुखद यह मलय वात!
अब जागो जीवन के प्रभात!

---

[23] 'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड-1, पृ0-340, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

रजनी की लाज समेटो तो,
कलरव से उठ कर भेंटो तो,
अरुणांचल में चल रही वात!
जागो अब जीवन के प्रभात![24]

यहाँ 'कलरव' नये जीवन के उल्लास का प्रतीक है और 'भेंटने' में प्रेमपूर्वक आलिंगनबद्ध करने का भाव सन्निहित है। 'रजनी की लाज' को समेट कवि इस कलरव को भेंटने की बात कहता है। इसी प्रकार अंधकार रूपी नेत्रों की विराट कल्पना 'तम नयनो' के रूप में साकार होती है जहाँ 'तारायें' अर्थात् नक्षत्र उसकी पुतली के रूप में हैं। 'नयनों' के संदर्भ में 'मुँदना' क्रिया का प्रयोग बड़ा सटीक है। ये असंख्य नक्षत्र रूपी ताराएँ किरण दलों में मुँद रही हैं जिनका 'मुँदना' प्रभात के आगमन का संकेत देता है। कहना न होगा प्रभात के इस चित्र द्वारा 'जीवन के प्रभात' को जगाने का यह उपक्रम भाषागत प्रौढ़ता के साथ 'लहर' के कवि की विकसित काव्य-संवेदना का प्रमाण भी है।

'लहर' के इन जागरण गीतों द्वारा स्पष्ट हो जाता है कि यौवन का आवेग अब कम हो चुका है और कवि की प्रेम भावना का प्रसार प्रायः स्वस्थ जीवन दर्शन के नियोजन में है। अतीत की स्मृतियाँ यद्यपि कुछ गीतों में हैं किन्तु उससे ऊपर उठकर कवि जीवन के हर क्षण को, प्रकृति के प्रत्येक कण को हँसाने की कामना करता है,

हँस, झिलमिल हो लें तारा गन,
हँस खिलें कुञ्ज में सकल सुमन,
हँस, बिखरें मधु मरन्द के कन,
बन कर संसृति के तव श्रम कन,
—सब कह दें 'वह राका आई!'

---

[24] 'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड-1, पृ0-350, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

हँस लें भय शोक प्रेम या रण,
हँस ले काला पट ओढ़ मरण,
हँस ले जीवन के लघु लघु क्षण,
देकर निज चुम्बन के मधुकण,
नाविक अतीत की उतराई![25]

यहाँ हँसना क्रिया जीवन के उल्लास को स्वर देती है और पूरी कविता में उसकी पुनरावृत्ति इस उल्लास को प्रखरतर बनाती चलती है। जीवन का सारा विषाद और भ्रम दूर हो गया हैं। कवि स्वयं हँसना चाहता है। तारागन, सकल सुमन और मरंद के कन के साथ वह भय, शोक और प्रेम आदि मनोभावों के भी हँसने की कामना करता है। जीवन के 'लघु लघु क्षण' के हँसने में सुखद जीवन की कामना का भाव सन्निहित है। समग्रतः हँसना क्रिया की बार बार आवृत्ति पूरी कविता में जहाँ जीवन के उल्लासमय वातावरण को बराबर बनाये रहती है वहीं काव्यभाषिक स्तर पर पुनरावृत्ति द्वारा लयात्मक संगीत का सुन्दर उदाहरण भी प्रस्तुत करती है।

लहर की अन्तिम चार कविताएँ—'अशोक की चिन्ता', 'शेरसिंह का शस्त्र समर्पण', 'पेशोला की प्रतिध्वनि' और 'प्रलय की छाया' ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर रचित प्रबन्धात्मक कविताएँ है। 'अशोक की चिन्ता' के अतिरिक्त 'लहर' की अन्तिम तीन कविताएँ मुक्त छंद में रची गई है और इन सभी के अन्तर्गत मुक्त छंद में भी प्रबन्धात्मकता का निर्वाह सफलतापूर्वक हो सका है। पहली कविता 'अशोक की चिन्ता' है जिसमें कलिंग के भीषण नर-संहार के उपरान्त अशोक के मन में उत्पन्न पश्चाताप, आत्मग्लानि और उद्वेग को यहाँ मनोवैज्ञानिक धरातल पर भावपूर्ण अभिव्यक्ति मिली है,

[25] 'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड-1, पृ0-368, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

जलता है यह जीवन पतङ्ग

जीवन कितना? अति लघु क्षण,
ये शलभ पुञ्ज से कण कण,
तृष्णा वह अनलशिखा बन—
दिखलाती रक्तिम यौवन।

जलने की क्यों न उठे उमंग?[26]

तृष्णा से आकर्षित जीवन की नियति को स्पष्ट करने के लिये कवि 'अनलशिखा' का रूपक चुनता है। तृष्णा अनलशिखा के रूप में अपना रक्तिम यौवन दिखलाती है जिसमें जीवन पतङ्ग जल उठता है। 'रक्तिम यौवन' का प्रयोग आकर्षण की तीव्रता को दर्शाने के लिये किया गया है। यौवन स्वयं आकर्षणीय है, 'रक्तिम यौवन' इस आकर्षण को और भी तीव्र बनाता है जिसमें जलने की उमंग उठना स्वाभाविक है।

तृष्णा की अग्नि में अशोक स्वयं जला था—इसलिये वह विक्षुब्ध है। आज विजय के बाद भी दूर से आती 'क्रंदन ध्वनि' उसके अभिमान को भंग कर रही है। 'शासन के सुख' से विरक्त उसका अन्तर्मन अब 'मानव मन' पर शासन करना चाहता है, क्योंकि शासन का यह सुख क्षणिक है, यह वैभव, यह राग रंग सब कुछ क्षणिक है,

काली काली अलकों में,
आलस, मद नत पलकों में,
मणि मुक्ता की झलकों में,
सुख की प्यासी ललकों में,

देखा क्षण भंगुर है तरंग।

---

[26] 'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड-1, पृ0-371, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

फिर निर्जन उत्सव शाला,
नीरव नूपुर श्लथ माला,
सो जाती है मधु बाला,
सूखा लुढ़का है प्याला,
बजती वीणा न यहाँ मृदंग।[27]

काली अलक, अलसाई पलक, मणिमुक्ता की झलक और सुख की ललक सभी कुछ क्षणभंगुर है। जीवन की अस्थिरता और क्षणभंगुरता के चिन्तन क्रम में 'अलक', 'पलक', 'झलक' और 'ललक' आदि का प्रयोग जहाँ यौवन, उन्माद और श्रृंगार की संश्लिष्ट अनुभूति कराता है वहीं 'मधुबाला', 'प्याला', 'वीणा', 'मृदंग' और 'नूपुर' आदि शब्द उत्सवशाला के परिवेश को जीवन्त बनाते हैं। कवि इस उत्सवशाला की निर्जनता का उद्घोष करता है। नूपुर की नीरवता, मधुबाला का सोना, प्याले का लुढ़कना तथा वीणा और मृदङ्ग की ध्वनि का शांत होना निर्जन उत्सवशाला का सजीव चित्र प्रस्तुत करता है। कहना न होगा उत्सवशाला की निर्जनता के इस चित्र द्वारा जीवन के सम्पूर्ण उल्लास और उमंग की नश्वरता को यहाँ कलात्मक अभिव्यक्ति मिलती है।

सिक्खों के शौर्य और पराक्रम की ओजपूर्ण गाथा 'शेरसिंह का शस्त्र समर्पण' में है। ऐतिहासिक कथानक को आधार बनाकर लिखे गये इस प्रबन्ध-गीत से एक अंश उद्घृत है,

आज विजयी हो तुम
और हैं पराजित हम
तुम तो कहोगे, इतिहास भी कहेगा यही,
किन्तु यह विजय प्रंशसा भरी मन की—

---

[27]'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड-1, पृ0-372, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

एक छलना है!
वीरभूमि पञ्चनद वीरता से रिक्त नहीं।
काठ के हों गोले जहाँ
आटा बारूद है

और पीठ पर हो दुरन्त दंशनों का त्राम
छाती लड़ती हो भरी आग, बाहु बल से
उस युद्ध में तो बस मृत्यु ही विजय है।[28]

'काठ के हों गोले जहाँ/आटा बारूद है' का प्रयोग यहाँ साभिप्राय है। लालसिंह द्वारा गोले के स्थान पर लकड़ी और बारूद के स्थान पर आटे के प्रयोग के इस ऐतिहासिक तथ्य का उल्लेख न कर कवि इतिवृत्तात्मकता से बच सकता था, उसके विश्वासघात को वह पहले ही पञ्चनद के जीवित कलुष के रूप में व्यक्त कर चुका था लेकिन उक्त पंक्ति उसके विश्वासघात और दोगलेपन को लक्षणा और व्यंग्य के धरातल पर कहीं गहरे व्यक्त करती है। 'काठ के गोल' रूप लालसिंह जहाँ होगें वहाँ विजय मृत्यु के रूप में ही उपलब्ध होगी। यही कारण है कि पञ्चनद के वीर प्रतारणा की थपकी से छल की बलिवेदी पर सो गये। उन वीर पुत्रों की प्रशंसा में निम्न पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं,

उर्जस्वित रक्त और उमङ्ग भरा मन था
जिन युवकों के मणिबन्धों में अबंध बल
इतना भरा था
जो उलटता शर्तघ्नियों को।

[28] 'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड-1, पृ0-376, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

गोले जिनके थे गेंद
अग्निमयी क्रीड़ा थी
रक्त की नदी में सिर ऊँचा छाती सीधी कर
तैरते थे।[29]

'गोले' जिनके गेंद रूप थे, जिनकी क्रीड़ा अग्निमयी थी और जो रक्त की नदी में सिर ऊँचा कर तैरते थे। पूर्व उद्धरण में 'काठ के गोले' के रूप में जहाँ लालसिंह का दोगलापन व्यक्त होता है वहीं प्रस्तुत उद्धरण में 'गोले जिनके थे गेंद' के माध्यम से पञ्चनद के वीरों के शौर्य और पराक्रम को अभिव्यक्ति मिलती है। इस प्रकार विशेष संदर्भो में 'गोले' शब्द की काव्यभाषिक क्षमता अपनी पूर्णता के साथ रूपायित होती है।

'पेशोला की प्रतिध्वनि' लहर की तीसरी प्रबन्धात्मक कविता है। अन्य प्रबन्धात्मक कविताओं की अपेक्षा लघु कलेवर वाली यह कविता अतुकांत है। कविता संवाद शैली में लिखी गई है जो परतंत्र मेवाड़ का सजीव चित्र प्रस्तुत करती है,

झोंपड़े खड़े हैं बने शिल्प ये विषाद के—
दग्ध अवसाद से।
धूसर जलद खंड भट पड़े हैं,
जैसे विजन अनन्त में।
कालिमा बिखरती है सन्ध्या के कलंक सी,
दुन्दुभि-मृदङ्ग-तूर्य शान्त स्तब्ध, मौन है।
फिर भी पुकार सी है गूँज रही व्योम में[30]—

---

[29] 'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड-1, पृ0-377, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।
[30] 'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड-1, पृ0-379, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

परतन्त्रता के अवसाद का यह बिम्ब अत्यन्त कलात्मक है। झोपड़े 'विषाद के शिल्प' का नमूना है। जलद खंड अत्यन्त विजन में भटक रहे हैं। कालिमा सन्ध्या के कलंक के रूप में है। दुन्दुभि-मृदंग-तूर्य भी स्तब्ध और शांत है। ये सब कुछ परतन्त्रता के अवसाद को और भी गहराता है किन्तु अवसाद की इस छाया में भी पुकार उठती है,

कौन लेगा भार यह?
कौन विचलेगा नहीं?
दुर्बलता इस अस्थिमांस की—
ठोंक कर लोहे से, परख कर वज्र से,
प्रलयोल्का खंड के निकष पर कस कर
पूर्ण अस्थि पुञ्ज सा हँसेगा अट्टहास कौन?
साधना पिशाचों की बिखर चूर-चूर होके
धूलि सी उड़ेगी किस दृप्त फूत्कार से।
कौन लेगा भार यह?
जीवित है कौन?
साँस चलती हैं किसकी
कहता है कौन ऊँची छाती कर, मैं हूँ—
—मैं हूँ— मेवाड़ में,

अरावली श्रृंग सा समुन्नत सिर किस का?
बोलो, कोई बोलो—अरे क्या तुम सब मृत हो?[31]

पूरे बन्ध में प्रश्नों की आवृत्ति सोये मेवाड़ को झकझोर देती है। प्रश्नों की इस आद्यन्त चलने वाली श्रृंखला के माध्यम से कवि परतन्त्र मेवाड़ को जागरण का

---

[31] 'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड-1, पृ0-380, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

उद्बोधन देता है। 'वज्र', 'प्रलयोल्का खंड', 'अट्टहास' और 'दृप्त फूत्कार' जैसे शब्द प्रयोग पेशोला की प्रतिध्वनि के रूप में कवि की ओजपूर्ण कल्पना को स्वर देते हैं।

'प्रलय की छाया', 'लहर' की अन्तिम कविता है। 'थके हुए दिन के निराशा भरे जीवन की सन्ध्या' में गुजरात की रानी कमला उस सुखद सन्ध्या का स्मरण करती है जब नीलीं अलकें लहरों के समान उसे चूमती थीं, समीर उसे छूकर ही साँस लेता था, मधुभार से चरण विजड़ित हो गये थे और समस्त गुजरात का कौमार्य उसमें घनीभूत हो उठा था। कमला द्वारा रूप की स्वयं प्रशंसा प्रसाद की मौलिकता है। रूप का यह गर्व भारतीय परम्परा में अलभ्य है। स्वप्रशंसा का यह क्रम यों भंग होता है,

> ''और परिवर्तन वह!
> क्षितिज पटी को आन्दोलित करती हुई
> नीले मेघ माला सी
> नियति-नटी थी आइ सहसा गगन में
> तड़ित विलास सी नचाती भौहे अपनी।''[32]

नृत्य-नटी के रूपक द्वारा रचा गया यह बिम्ब कमला के जीवन में अकस्मात आये परिवर्तन और विचलन को भूमिका रूप में संकेतित करता है।

'प्रलय की छाया' शीर्षक यह लम्बी कविता कमला के स्वगत कथन के रूप में है जिसमें क्षण प्रतिक्षण परिवर्तित होने वाली उसकी भावनाओं का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। इतना लंबा, क्रमिक रूप में विकसित काव्य-स्वगत अन्यत्र कठिनाई से मिलेगा। रूपगर्विता कमला के मन में पद्मिनी के प्रति उत्पन्न प्रतिस्पर्धा का हिसंक मनोभाव (जब कि कमला अलाउद्दीन की पटरानी

---

[32] 'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड-1, पृ0-383, 384, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

बनना स्वीकार कर लेती है।) तदुपरान्त उत्पन्न ग्लानि और अवसाद के जटिल और संश्लिष्ट मनोभाव के अंकन के लिये 'कृष्णागुरुवर्तिका' का प्रसिद्ध बिम्ब कविता से उद्धृत है,

> कृष्णागुरुवर्तिका
> जल चुकी स्वर्ण पात्र के ही अभिमान में
> एक घूम-रेखा मात्र शेष थी,
> उस निस्पन्द रंग मन्दिर के व्योम में
> क्षीणगन्ध निरवलम्ब।
> किन्तु मैं समझती थी, यही मेरा जीवन है![33]

यहाँ कमला अपने जीवन की तुलना स्वर्णपात्र में जल कर राख हो चुकी सुगन्धित अगुरु से करती है। जलने के उपरान्त उसके धुएँ की अन्तिम रेखा मात्र शेष है जो 'क्षीणगंध' भी है और 'निरवलम्ब' भी। प्रेम के पवित्र आलम्बन और पावन सुरभि से हीन कमला का जीवन भी ऐसा ही है।

कमला द्वारा पद्मिनी के पवित्र जौहर का स्मरण, सौन्दर्य की स्थूल स्पर्धा के कारण प्रतिक्षण परिवर्तित मनोवेगों और उनके करुण अवसान की यह कथा अपने कलेवर में जहाँ महाकाव्योचित औदात्य से सम्पन्न है, वहीं नाटकीय रोचकता भी उसमें आद्यन्त बनी रहती है। नाटकीयता वह तत्व है जिसके अभाव में लम्बी कविता में नीरसता आ जाती है। 'प्रलय की छाया' इस दोष से मुक्त है। कविता का समापन कमला के गौरवपूर्ण अतीत की विडम्बना को व्यङ्गात्मक धरातल पर प्रस्तुत करता है,

---

[33] 'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड-1, पृ0-392, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

काले काले पंख ढकते हैं अन्ध तम से।
पुण्य ज्योति हीन कलुषित सौन्दर्य का—
गिरता नक्षत्र नीचे कालिमा की धारा सा
असफल सृष्टि सोती—
प्रलय की छाया में।[34]

इस प्रकार 'आँसू' की भावकथा से अलग इन गीत रचनाओं में कवि ऐतिहासिक धरातल पर अपनी कल्पना को विस्तार देता है। यद्यपि 'झरना' और 'लहर' के मध्य 'आँसू' का अन्तराल प्रसाद की काव्ययात्रा के विकास क्रम में कम महत्वपूर्ण नहीं है, किन्तु 'आँसू' की प्रबन्धात्मकता से अलग 'लहर' के गीत अपनी सघनता और संश्लिष्टता में स्वतंत्र प्रगीत के रूप में गीत रचना का उत्कृष्ट मानक प्रस्तुत करते हैं। प्रकृति, प्रेम, करुणा और सौन्दर्य से सम्बन्धित इन लघु गीतों के अतिरिक्त 'लहर' की प्रबन्धात्मक कविताओं के अन्तर्गत लयात्मक अनुशासन और संतुलित संवाद-संयोजन मुक्त छंद में इन्हें बिखरने नहीं देता। इस प्रकार प्रबन्ध और मुक्तक दोनों ही रूपों में 'लहर' कवि की श्रेष्ठतम गीतसृष्टि है जहाँ 'झरना' और 'आँसू' की वैयक्तिकता से आगे कवि की विकसित काव्य संवदेना उस 'अखण्ड घने आनन्द' का पूर्व संकेत देती है जो शीघ्र ही 'कामायनी' में अपनी पूर्ण सघनता के साथ उन्मीलित होता है।
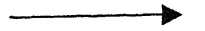
[34] 'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड-1, पृ0-395, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

कामायनी : काव्ययात्रा का चरमोत्कर्ष

'कामायनी' के विवेचन की शुरुआत यदि नरेश मेहता के इस वक्तव्य के साथ करें कि, "कोई भी रचना जिस प्रकार धर्म या दर्शन का ग्रंथ नहीं होती उसी प्रकार राजनीतिक ग्रन्थ भी नहीं होती और न होना चाहिये। काव्य की अपनी वैसी ही स्वतंत्र सत्ता है जैसी कि धर्म, दर्शन या राजनीति की। जीवन को देखने, परखने और समझने का यह भी उतना ही सम्यक मार्ग है जितना कि शेष।[1]" तो न केवल छायावाद की बल्कि आधुनिक युग की इस शीर्षस्थ कृति का वैशिष्ट्य स्वतः खुल जाता है। वस्तुतः 'कामायनी' का वैशिष्ट्य उसके काव्यत्व में निहित है जिसे प्रसाद की जीवन दृष्टि स्वतः उन ऊँचाईयों तक ले गई है जहाँ इतिहास-धर्म-दर्शन-पुराण-मिथक सब एकाकार हो गये हैं और यह सब मिलकर प्रसाद की काव्यभाषा को वह रूपाकार देते हैं जहाँ अर्थ की अनन्त सम्भावनाएँ उद्भूत होती हैं।

'प्रेमपथिक' द्वारा प्रसाद की जिस काव्ययात्रा की शुरुआत हुई थी, 'कामायनी' तक पहुँचते पहुँचते वह अपनी रचनात्मक ऊँचाईयों को प्राप्त करती है। प्रसाद की इस काव्ययात्रा के अतीतावलोकन पर स्पष्ट हो जाता है कि 'प्रेमपथिक' की समस्या नितान्त वैयक्तिक थी जिसका निर्वाह 'आँसू' में भी मिलता है। यह अलग बात है कि इन दोनों ही रचनाओं में व्यापक संदर्भो में प्रेम का विस्तार होता है। किन्तु 'कामायनी' की समस्या इस वैयक्तिकता से अलग मानवीय सभ्यता के विकास की है। यद्यपि उसका आरम्भ आदि पुरुष मनु से होता है लेकिन वह समस्या मनु के माध्यम से मानवता के विकास की भी है और इस रूप में अपनी शाश्वतता में 'कामायनी' देश और काल की परिधि को पार कर किसी एक युग और समय की

---

[1] 'कामायनी की आलोचना प्रक्रिया'-पुरोवाक्-गिरिजा राय।

नहीं, किसी देश, सभ्यता एवं संस्कृति की नहीं बल्कि मानव जीवन के उन शाश्वत मूल्यों की गाथा है जो अपनी गत्यात्मकता और निरन्तरता में भी सत्य हैं।

चिंता से आनन्द तक की यह काव्ययात्रा जितनी जटिल है, प्रसाद की बिम्बविधायिनी दृष्टि के धरातल पर उतनी ही रचनात्मक। रचनात्मकता के इस उत्तुंग शिखर पर पहुँचकर प्रसाद जिस समरसता का संदेश देते हैं और उस समरसता के माध्यम से जिस अखण्ड घने आनन्द की प्रतीति कराते हैं, उसका माध्यम मनु बनते हैं जिनकी चिंता के साथ इस महाकाव्य का आरम्भ होता है,

हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर,
बैठ शिला की शीतल छाँह,
एक पुरुष, भींगे नयनों से,
देख रहा था प्रलय प्रवाह!

नीचे जल था, ऊपर हिम था,
एक तरल था, एक सघन;
एक तत्त्व की ही प्रधानता
कहो उसे जड़ या चेतन।

दूर दूर तक विस्तृत था हिम
स्तब्ध उसी के हृदय समान;
नीरवता सी शिला चरण से
टकराता फिरता पवमान।[2]

'कामायनी' की ये आरम्भिक पंक्तियाँ ही इस बात का संकेत देती हैं कि प्रसाद जिस तरुण तपस्वी की कथा और उस तरुण तपस्वी के माध्यम से मानवीय भावों के विकास की भी कथा कहने जा रहे है, वह चिन्ता मग्न है। पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और वायु—सृष्टि के इन पाँच आधारभूत तत्त्वों में सर्वत्र जल तत्त्व की ही

[2] 'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड-1, पृ0-413, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

प्रधानता है जो अपने तरल और सघन रूप में सर्वत्र व्याप्त है। सम्पूर्ण देवजाति नष्ट हो चुकी है, मात्र मनु अवशिष्ट है। एकाकी मनु की मर्म व्यथा को सुनने वाला कोई नहीं है क्योंकि 'वहाँ अकेली प्रकृति सुन रही हँसती सी पहचानी सी।' यहाँ प्रकृति का हँसना कथानक मनु के वैभवपूर्ण अतीत की विडम्बना को व्यंगात्मक धरातल पर प्रस्तुत करता है।

यह ध्यान देने की बात है कि मनु के अवसाद का कारण वह चिंता है जो उस निश्चिन्त जाति के जीव में पहली बार जाग्रत हुई है, (अपने वैभवपूर्ण अतीत के अवसान की चिंता उन्हें उसके बाद होती है) और यहीं पर मनु के माध्यम से मानव मात्र के मन में व्याप्त चिंता के लिये कवि जो उपमान चुनता है और उन उपमानों के माध्यम से जो बिम्ब रचता है, वे मनु की चिंता को सार्वभौम विस्तार देते हैं,

ओ चिंता पहली रेखा,
अरी विश्व वन की व्याली;
ज्वालामुखी स्फोट के भीषण,
प्रथम कंप सी मतवाली![3]

सम्पूर्ण विश्व वन में व्याप्त सर्पिणी रूप यह चिन्ता 'ज्वालामुखी के विस्फोट के प्रथम कंपन', 'अभाव की चपल बालिके', 'हरी भरी दौड़ धूप', 'ग्रह कक्षा की हलचल', 'व्याधि की सूत्रधारिणी' और 'हृदय गगन में धूमकेतु' के रूप में परिकल्पित की गई है। बुद्धि, मनीषा, मति और आशा सब चिंता के ही पर्याय हैं।

चिंता की इस आधारभूत प्रकृति का निरूपण अब मनु की व्यक्तिगत चिंता पर लौटता है जो सहज स्वाभाविक है। देवजाति के विलास और वैभव तथा उनके

---

[3] 'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड-1, पृ0-415, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

करुण अवसान की स्मृतियों की एक लम्बी श्रृंखला जिसे मुक्तिबोध सामंती व्यवस्था का चित्र मानते हैं, चिंता सर्ग को विस्तार देतीं हैं किन्तु 'अमरता के चमकीले पुतले', 'चिर किशोर वय' और 'सर्ग के अग्रदूत' रूप देवगणों की विलासिता के इस चित्र को मात्र सामन्ती व्यवस्था का चित्र नहीं माना जा सकता, ठीक वैसे ही जैसे 'प्रलय निशा' के इन प्रभावशाली अंशों को मात्र सामन्ती व्यवस्था के ध्वंस का चित्र नहीं कहा जा सकता,

हाहाकार हुआ क्रंदनमय
कठिन कुलिश होते थे चूर;
हुए दिगंत बधिर, भीषण रव
बार बार होता था क्रूर।

दिग्दाहों से धूम उठे, या
जलधर उठे क्षितिज तट के!
सघन गगन में भीम प्रकंपन,
झंझा के चलते झटके।

अंधकार में मलिन मित्र की
धुँधली आभा लीन हुई;
वरुण व्यस्त थे, घनी कालिमा
स्तर-स्तर जमती पीन हुई।

पंचभूत का भैरव मिश्रण,
शंपाओं के शकल-निपात,
उल्का लेकर अमर शक्तियाँ
खोज रहीं ज्यों खोया प्रात।[4]

.. . .

[4] 'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड-1, पृ0-423, 424, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

उधर गरजतीं सिंधु लहरियाँ
कुटिल काल के जालों सी;
चली आ रहीं फेन उगलती
फन फैलाये व्यालों सी।[5]

कहना न होगा विध्वंस का यह चित्र जहाँ एक ओर प्रलय की मिथकीय परिकल्पना को सत्य करता है वहीं राष्ट्रीय और समसामयिक संदर्भों से सम्पृक्त होकर अर्थ की अन्य छवियाँ भी उभारता है। देव सभ्यता के ध्वंस के इस चित्र को भले ही डा0 नामवर सिंह हिन्दू राजाओं, मुसलमान नवाबों और मुगल बादशाहों के विध्वंस का प्रतीक मानें किन्तु प्रलय की इस विराट और भव्य परिकल्पना से अभिभूत होकर वह लिखते हैं, ''**कामायनी** की पृष्ठभूमि में सबसे प्रभावशाली चित्र है—प्रलय का। सम्पूर्ण हिन्दी कविता में ध्वंस का ऐसा रौद्र और विशाल चित्र दुर्लभ है। .... यह चित्रण **कामायनी** के श्रेष्ठ अंशों में से एक है।''[6] प्रलय का यह चित्र देव सभ्यता के ध्वंस का हो या सामंती व्यवस्था के विनाश का प्रतीक, अपनी दृश्यात्मकता और प्रभावोत्पादकता में निश्चय ही 'कामायनी' के इस कलात्मक सौन्दर्य की उपेक्षा नहीं की जा सकती, मुक्तिबोध के शब्दों में ''जिसमें से गुज़रकर ही कृति के मर्म-क्षेत्र में विचरण किया जा सकता है, अन्यथा नहीं। उस मर्म-क्षेत्र में पहुँचकर, उसे पहचानकर, उसके मार्ग से ही उस जीवन-जगत् तक जाया जा सकता है, जो जीवन-जगत् आभ्यान्तर और बाह्य इन दोनों तत्वों से निर्मित है; जो जीवन-जगत् मानव-सम्बन्धों, जीवनमूल्यों, ज्ञानदृष्टियों तथा गहन मानसिक प्रतिक्रियाओं का एक संवेदनात्मक समवाय है; जो कलाकार के अन्तःकरण में अनेक

---

[5] 'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड-1, पृ0-424, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।
[6] 'कामायनी मूल्यांकन और मूल्यांकन', पृ0-101, सम्पादन-इन्द्रनाथ मदान।

मिश्र-रूपों में संचित होकर, अभिव्यक्ति-क्षणों में प्रोद्‌भासित हो उठता है, अपने सारे वैभव और समृद्धि के साथ।''[7]

चिंता के बाद आशा सर्ग का आरम्भ जिस नई चेतना और उन्मेष के साथ होता है, प्रलयनिशा की पृष्ठभूमि में प्रकृति-चित्रों के माध्यम से उसका अंकन अधिक सार्थक और गत्यात्मक बनता है,

उषा सुनहले तीर बरसती
जय लक्ष्मी सी उदित हुई;
उधर पराजित कालरात्रि भी
जल में अन्तनिर्हित हुई।

वह विवर्ण मुख त्रस्त प्रकृति का
आज लगा हँसने फिर से;
वर्षा बीती, हुआ सृष्टि में
शरद विकास नये सिर से।[8]

. .. ..

सिंधु सेज पर धरा वधू अब
तनिक संकुचित बैठी सी;
प्रलय निशा की हलचल स्मृति में
मान किये सी ऐंठी सी।[9]

प्रकृति का यह परिवर्तनशील रूप अपनी गत्यात्मकता में प्रलय की पूर्व चित्र श्रृंखला से सम्पृक्त होकर 'कामायनी' के कथासूत्र को जिस रूप में जोड़ता है, स्पष्ट ही वहाँ 'आँसू' जैसा बिखराव नहीं है। चिंता सर्ग के अन्तर्गत विनाश और विध्वंस के चित्रों द्वारा मनु के अवसाद को अभिव्यक्ति देने के बाद कवि जीवन के सहज उल्लास के उतने ही प्रभावशाली बिम्बों की सर्जना करता है। प्रलय के विराट

[7] 'कामायनी: एक पुनर्विचार', पृ0-156, गजानन माधव मुक्तिबोध।

[8] 'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड-1, पृ0-433, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

[9] 'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड-1, पृ0-434, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

आलोड़न में जो ग्रह कुछ समय पूर्व बुदबुद से लग रहे थे, वही अब अन्तरिक्ष में ज्योतिर्मान हैं, जो पवन घनीभूत होकर श्वासों की गति को अवरुद्ध कर रहा था, उसी के स्पर्श से अब शरीर पुलकित हो रहा है और वह मनु जो 'भींगे नयनों' से 'प्रलय प्रवाह' देख रहे थे वही 'लगे देखने लुब्ध नयन से प्रकृति विभूति मनोहर शांत।' परिवर्तनशील प्रकृति के प्रति मनु की उल्लासपूर्ण जिज्ञासा यद्यपि अनेक प्रश्नों को जन्म देती है किन्तु उन्हीं प्रश्नों के बीच जो 'आशा' मनु के हृदय में प्राणवायु बनकर स्पन्दित होती है, उसका चित्र द्रष्टव्य है,

यह क्या मधुर स्वप्न सी झिलमिल
सदय हृदय में अधिक अधीर;
व्याकुलता सी व्यक्त हो रही
आशा बनकर प्राण समीर![10]

'स्वप्न सी झिलमिल' के प्रयोग द्वारा यहाँ कवि आशा जनित माधुर्य और उसकी अमूर्तता को अत्यन्त सूक्ष्म स्तर पर व्यञ्जित करता है। अपना अस्तित्व बोध मनु को यज्ञ कर्म में प्रवृत्त करता है और वह एक विस्तृत और रमणीय गुफा में अपना स्थान बनाते हैं और यहीं मनु उस आदिम सभ्यता के प्रतीक के रूप में सामने आते हैं जिसके विकास का अगला चरण कृषि सभ्यता और आगे आधुनिक सभ्यता से जुड़ा है और जिसकी प्रतीक क्रमशः श्रद्धा और इड़ा हैं। नियमित रूप से यज्ञ कर्म में लगे आदि पुरुष मनु को एकाकीपन का जो बोध होता है, वह श्रद्धा के आगमन के साथ भंग होता है।

श्रद्धा सर्ग के अन्तर्गत श्रद्धा के वाह्य और आन्तरिक सौन्दर्य के साथ मनु के अवसाद और ग्लानि को भी सार्थक अभिव्यक्ति मिली है। कवि की सूक्ष्म सौन्दर्य चेतना श्रद्धा अथवा कामायनी को बिम्बात्मक धरातल पर जो रूपाकार देती

[10] 'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड-1, पृ0-437, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

है, उसकी प्रंशसा में दिनकर लिखते है, ''कवि ने श्रद्धा का कैसा अद्भुत 'विजन' देखा था कि उसकी लेखनी से ऐसी अनिवर्चनीय पंक्तियाँ निःसृत हो गयीं! .... श्रद्धा का रूप-वर्णन अत्यन्त ऊँचे धरातल की कविता है और उसे हम कामायनी का ही नहीं, प्रत्युत समग्र विश्व के काव्य का अत्यन्त उज्जवल अंश कह सकते है।''[11] नील परिधान बीच श्रद्धा के अधखुले अंगों के लिये 'बिजली के फूल' जैसे नितान्त मौलिक उपमान द्वारा रचे गये प्रसिद्ध बिम्ब द्वारा श्रद्धा के गौरवर्ण, उसके सौन्दर्य की उज्जवल आभा, यौवन के उन्माद और कान्ति को संश्लिष्ट अभिव्यक्ति मिलती है। श्रद्धा के कौमार्य, उसके मुख सौन्दर्य, मधुर मुस्कान और घुँघराले बालों के लिये कवि ने पूरी बिम्ब माला रची है। कहना न होगा श्रद्धा के रूप सौन्दर्य से सम्बन्धित प्रायः सभी बिम्ब अपनी ताज़गी में 'आँसू' के परम्परागत रूप-वर्णन से अलग है,

कुसुम कानन-अंचल में मन्द
पवन प्रेरित सौरभ साकार,
रचित परमाणु पराग शरीर
खड़ा हो ले मधु का आधार।[12]

उषा की पहली लेखा कांत,
माधुरी से भींगी भर मोद;
मद भरी जैसे उठे सलज्ज
भोर की तारक द्युति की गोद।[13]

[11] 'पंत, प्रसाद और मैथिलीशरण', पृ0-68, रामधारी सिंह दिनकर।

[12] 'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड-1, पृ0-458, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

[13] 'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड-1, पृ0-457, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

या कि, नव इन्द्र नील लघु शृंग
फोड़ कर धधक रही हो कांत;
एक लघु ज्वालामुखी अचेत
माधवी रजनी में अश्रांत[14]

श्रद्धा के इस रूप सौन्दर्य के अतिरिक्त मनु की असहाय और दयनीय स्थिति मनु के आत्मपरिचय के रूप में यों व्यक्त हुई है,

क्या कहूँ, क्या कहूँ मै उद्भ्रांत?
विवर में नील गगन के आज
वायु में भटकी एक तरंग,
शून्यता का उजड़ा सा राज

एक विस्मृति का स्तूप अचेत,
ज्योति का धुँधला सा प्रतिबिम्ब;
और जड़ता की जीवन राशि
सफलता का संकलित विलम्ब।[15]

यहाँ 'शून्यता का उजड़ा राज' और 'विस्मृति का स्तूप अचेत' आरोपित बिम्ब-प्रक्रिया के उदाहरण हैं और 'जड़ता की जीवन राशि' में विरोध भाव की सुन्दर व्यञ्जना हुई है। शून्य स्वयं अभाव और निस्सारता का प्रतीक है, 'शून्यता का उजड़ा राज' अनुभव को और भी सूक्ष्म बनाता है ठीक उसी प्रकार जैसे स्तूप स्वयं जड़ता का प्रतीक है किन्तु विस्मृति का स्तूप और उसका भी अचेत होना अनुभव को सूक्ष्म से सूक्ष्मतर बनाता है।

श्रद्धा के साहचर्य से मनु के अन्तर में उठते भावों द्वारा काम जनित उल्लास की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति काम सर्ग के अन्तर्गत हुई है। अज्ञात जटिलताओं का

---

[14] 'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड-1, पृ0-457, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

[15] 'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड-1, पृ0-459, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

अनुमान कर जिस काम से मनु झिझक रहे थे, वह मधुमय वसन्त के रूप में चुपके से उनके जीवन में प्रवेश करता है,

मधुमय वसंत जीवन वन के,
बह अन्तरिक्ष की लहरों में;
कब आये थे तुम चुपके से
रजनी के पिछले पहरों में!

क्या तुम्हें देख कर आते यों,
मतवाली कोयल बोली थी!
उस नीरवता में अलसाई
कलियों ने आँखें खोली थीं![16]

मनु के जीवन में अनायास आये यौवन के कारण सुनहरे किन्तु अस्पष्ट भविष्य की आकाँक्षा उस अबोध बालक की अस्पष्ट ज्योतिमयी लिपि के समकक्ष है जिसमे जीवन की आकाँक्षा के रंग विद्यमान हैं। 'शिशु चित्रकार' की मौलिक कल्पना द्वारा सृजित यह बिम्ब सुनहरे भविष्य के लिये जाग्रत आकाँक्षा की ललक को सार्थक अभिव्यक्ति देता है,

शिशु चित्रकार चंचलता में
कितनी आशा चित्रित करते!
अस्पष्ट एक लिपि ज्योतिमयी
जीवन की आँखों में भरते।[17]

प्रकृति और सृष्टि के सौन्दर्य के प्रति एक रहस्यभरी जिज्ञासा काम सर्ग के पूर्वार्द्ध में मनु के भीतर अनेक प्रश्नों को जाग्रत करती है वहीं सर्ग का उत्तरार्द्ध काम के

---

[16] 'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड-1, पृ0-473, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।
[17] 'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड-1, पृ0-474, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

संदेश के रूप में नियोजित है जहाँ काम और रति के सरस प्रसंगों को लेकर सुन्दर बिम्बों की सर्जना हुई है,

प्रत्येक नाश विश्लेषण भी
संश्लिष्ट हुए, बन सृष्टि रही;
ऋतुपति के घर कुसुमोत्सव था
मादक मरंद की वृष्टि रही।

भुज-लता पड़ी सरिताओं की
शैलों के गले सनाथ हुए;
जलनिधि का अंचल व्यजन बना
धरणी का, दो दो साथ हुए।

कोरक अंकुर सा जन्म रहा,
हम दोनों साथी झूल चले;
उस नवल सर्ग के कानन में
मृदु मलयानिल से फूल चले।[18]

काम के बाद 'वासना' की वृत्ति का निरूपण छन्द की नई लय के साथ होता है। वर्ण, मात्रा, लघु, गुरु आदि शास्त्रीय शब्दावली से अलग हटकर विचार करने पर स्पष्ट होता है कि चिंता, आशा, श्रद्धा और काम — पहले के इन चार सर्गो से अलग यहाँ छन्द की लय बदलती है। लयाधार पर चिंता, आशा, श्रद्धा, काम, लज्जा, कर्म, ईर्ष्या और निर्वेद को एक वर्ग के अन्तर्गत तथा वासना और स्वप्न को एक वर्ग के अन्तर्गत रखा जा सकता है। पुनः इड़ा, संघर्ष और दर्शनि के अलग-अलग वर्ग तथा रहस्य और आनन्द का एक वर्ग बनाया जा सकता है। यों काम और लज्जा (पादाकुलक) तथा आशा, स्वप्न और निर्वेद (तांटक) को

---

[18] 'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड-1, पृ0-483, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

अपवाद स्वरूप छोड़कर 'मानस' और 'पद्मावत' की छंद योजना से अलग 'कामायनी' का प्रत्येक सर्ग छंद के भिन्न कलेवर में बँधा भाषा को नई स्फूर्ति और ताज़गी देता है। काव्य की इतिवृत्तात्मक व्यञ्जना के अनुकूल चौपाई और अंत में निष्कर्ष रूप में दोहे का प्रयोग जहाँ सम्पूर्ण 'मानस' के प्रबन्धत्व को प्रगतिमय और गीतात्मक बनाये रखता है (यद्यपि 'मानस' में एक ही कांड के अन्तर्गत विभिन्न छंदों का प्रयोग भी हुआ है किन्तु दोहा चौपाई को ही प्रबन्ध का कलेवर विधायक कहा जा सकता है।) तथा 'पद्मावत' में सात पंक्तियों के बाद दोहे का प्रयोग उसके प्रबन्धत्व को विस्तार देता है वहीं खड़ीबोली के इस आधुनिक महाकाव्य में प्रत्येक सर्ग में नवीन छंद योजना को अपनाया गया है जहाँ प्रबन्ध की इतिवृत्तात्मक प्रवृत्ति के प्रतिकूल विभिन्न मनोवृत्तियों और अनुभूतियों का संश्लिष्ट रूप, साथ ही विभिन्न विचारधाराओं का सृजनात्मक तनाव छंद के बँधाव में भी बिम्बों के माध्यम से अर्थ को विकसनशील बनाये रख सका है।

परम्परागत शास्त्रीय छंदो के मेल से कुछ स्वनिर्मित छंदों का प्रयोग भी 'कामायनी' में किया गया है। कवि द्वारा स्वनिर्मित छंद का सबसे अच्छा उदाहरण इड़ा सर्ग में देखने को मिलता है जहाँ आरम्भिक तीन और अन्तिम दो पंक्तियों तथा मध्य की दो दो पंक्तियों की तुकात्मक संगति द्वारा मनु के गतिशील व्यक्तित्व को इस नूतन छंद व्यवस्था में सुनियोजित ढंग से बाँधा गया है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है,

देखे मैने वे शैल शृंग

जो अचल हिमानी से रंजित, उन्मुक्त, उपेक्षा भरे तुंग
अपने जड़ गौरव के प्रतीक वसुधा का कर अभिमान भंग
अपनी समाधि में रहे सुखी बह जाती हैं नदियाँ अबोध
कुछ स्वेद बिंदु उसके लेकर वह स्तिमित नयन गत शोक क्रोध
स्थिर मुक्ति, प्रतिष्ठा मै वैसी चाहता नहीं इस जीवन की
मैं तो अबाध गति मरुत सदृश, हूँ चाह रहा अपने मन की
जो चूम चला जाता अग जग प्रति पग में कंपन की तरंग
वह ज्वलन शील गतिमय पतंग।[19]

श्रद्धा को छोड़ चुके मनु के मन का उद्वेग हो या काम द्वारा मनु को दिये गये शाप का अंश, इड़ा से मनु की भेंट का प्रसंग हो अथवा इड़ा से भेंट के बाद मनु के मन की परिवर्तनशीलता का चित्र—सम्पूर्ण इड़ा सर्ग में प्रयुक्त प्रस्तुत छंद अपने संगीतात्मक प्रवाह में नई ताज़गी से सम्पन्न है।

प्रसंग को पुनः जोड़ते हुए कहा जा सकता है कि चिंता, आशा, श्रद्धा और काम—पूर्ववर्ती सर्गो में छंद वैविध्य होते हुए भी यहाँ वासना सर्ग में पहली बार छंद की लय बदलती है, छंद की इस बदलती लय के साथ मनु में जाग्रत वासना के आवेग की चरम परणति धधकती ज्वाला के रूप में यों होती है,

छूटतीं चिनगारियाँ उत्तेजना उद्भ्रांत,
धधकती ज्वाला मधुर, था वक्ष विकल अशांत।
वात चक्र समान कुछ था बाँधता आवेश,
धैर्य्य का कुछ भी न मनु के हृदय में था लेश,[20]

[19] 'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड-1, पृ0-567, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।
[20] 'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड-1, पृ0-502, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

उल्लेखनीय है कि वासना की यह ज्वाला मधुर है। वासना की इस धधकती मधुर ज्वाला से उत्तेजना की जो चिनगारियाँ छूटती हैं वह मनु के हृदय को व्याकुल और अशांत बनाती हैं। धैर्य्य लेशमात्र भी शेष नहीं रहता और आवेश का आधिक्य 'वात चक्र' के रूप में परिकल्पित होता है। वासना की यह आँधी अपने आवेग में मनु को बहा ले जाती है। इस प्रकार कामोदय के फलस्वरूप मनु के मन में जगी वासना के लिये 'धधकती ज्वाला' और 'वात चक्र' के ये उपमान मनु के भीतर क्रमशः जगती वासना के अतिरेक को अपनी पूर्णता में व्यक्त करते हैं और तब यह अकारण नहीं है कि अब तक श्रद्धा के प्रति अपने आकर्षण के कारण का विश्लेषण करते मनु श्रद्धा का हाथ पकड़ कर कहने लगते है,

> कर पकड़ उन्मत्त से हो लगे कहने, "आज,
> देखता हूँ दूसरा कुछ मधुरिमामय साज!
> वही छवि! हाँ वही जैसे! किन्तु क्या यह भूल?
> रही विस्मृति सिंधु में स्मृति नाव विकल अकूल?[21]

इसी प्रकार वासना के लिये ज्वाला के ही उपमान द्वारा भिन्न रूप में रचा गया यह चित्र भी द्रष्टव्य है,

> चेतना रंगीन ज्वाला परिधि में सानन्द,
> मानती सी दिव्य सुख कुछ गा रही है छंद!
> अग्नि कीट समान जलती है भरी उत्साह,
> और जीवित है, न छाले हैं न उसमें दाह![22]

---

[21] 'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड-1, पृ0-502, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

[22] 'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड-1, पृ0-500, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

पूर्व चित्र की मधुर ज्वाला यहाँ 'रंगीन ज्वाला' के रूप में परिकल्पित है। वासना की इस 'रंगीन ज्वाला परिधि' में मनु की चेतना 'अग्नि कीट' के समान जल रही है किन्तु उसका उत्साहपूर्वक जलना और जलने पर भी छाले और दाह का न होना वासना जनित माधुर्य को व्यञ्जित करता है। इस प्रकार वासना के लिये ज्वाला अथवा अग्नि जैसे परम्परागत उपमान द्वारा कवि जो पूरा बिम्ब यहाँ विकसित करता है, वह वासना के आवेग और माधुर्य को संश्लिष्ट अभिव्यक्ति देता है।

मनु की वासना के कारण श्रद्धा में जो नारी सुलभ लज्जा का भाव जाग्रत होता है, अनुभावों द्वारा उसका सूक्ष्म काव्यात्मक चित्रण और साथ ही उसका मूल्यपरक बिम्बात्मक अंकन, लज्जा सर्ग का वैशिष्ट्य है। ये दोनो ही रूप लज्जा को पूर्णता प्रदान करते हैं,

अभिलाषा अपने यौवन में
उठती उस सुख के स्वागत को;
जीवन भर के बल वैभव से
सत्कृत करती दूरागत को।

किरनों का रज्जु समेट लिया
जिसका अवलंबन ले चढ़ती;
रस के निर्झर में धँस कर मैं
आनंद शिखर के प्रति बढ़ती।

छूने में हिचक, देखने में
पलकें आखों पर झुकती हैं;
कलरव परिहास भरी गूँजे
अधरों पर सहसा रुकती हैं।[23]

[23] 'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड-1, पृ0-509, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

कहना न होगा समर्पण के पूर्व श्रद्धा की जटिल मनःस्थिति का यह सूक्ष्म अंकन लज्जा के मूल्यात्मक पक्ष को अद्भुत सौन्दर्य के साथ उभारता है।

श्रद्धा और लज्जा के संवाद रूप में नियोजित लज्जा सर्ग को अनेक विद्वानों ने अनावश्यक माना है। डा0 इन्द्रनाथ मदान इसे स्वतंत्र सृजन-खण्ड के रूप में देखते हुए लिखते है, ''लज्जा सर्ग अपने दोनों छोरों से कटा हुआ लगता है, पहले छोर से इसे लटकाने के लिये श्रद्धा की गिरी पलकों, झुकी नासिका और लाल-कपोल का सजीव चित्रण किया गया है, जो सहज है। इस तरह लज्जा इस काव्य-रचना में असंगति नहीं है, अपेण्डिक्स है, जो मानव-शरीर की रचना में अनावश्यक समझी जाती है और जिसके दुखने पर इसका ऑपरेशन भी करना पड़ता है। कामायनी का ऑपरेशन अब सम्भव नहीं है। यह इसके रचना-विधान में दुखता रहेगा।''[24] विडम्बना यह है कि डा0 मदान लज्जा के उपर्युक्त चित्रण को सहज और सजीव तो मानते हैं किन्तु इस छंद में आने वाले लज्जा शब्द से उन्हें आपत्ति है जिसे वह 'कामायनी' के भीतर से निकला हुआ नहीं मानते। वह कर्म सर्ग के आरम्भ में मनु की सोच की इस स्थिति 'भरा कान में कथन काम का/मन में नव अभिलाषा,' का सृजनात्मक सम्बन्ध वासना और उससे भी पूर्व काम सर्ग से स्थापित करते हुए लज्जा सर्ग को दोनो छोरों से लटका मानते हैं। यह सही है कि काम सर्ग के अन्त में मनु के हाथों में स्थित 'सोम सुधा रस' की बेल कर्म सर्ग के आरम्भ में मनु के लिये 'कर्म सूत्र संकेत सदृश' हो जाती है। निश्चय ही यहाँ काम और वासना से कर्म का सूत्र जुड़ता है लेकिन मनु की वासना के चरमोत्कर्ष पर श्रद्धा की पलकों का गिरना, नासिका का झुकना, और उसकी वाणी का गदगद होना भी ऐसा ही सूत्र है जो वासना से लज्जा के सम्बन्ध को जोड़ता है। वासना

[24] 'कामायनी मूल्याङ्कन और मूल्याङ्कन', पृ0-148, 149 सम्पादन-इन्द्रनाथ मदान।

और लज्जा के इस सम्बन्ध बिन्दु पर रचा गया यह बिम्ब मनु के प्रति श्रद्धा का प्रणयानुभूति, व्रीड़ा और लज्जा को एक साथ व्यक्त करता है,

> धूम लतिका सी गगन तरु पर न चढ़ती दीन,
> दबी शिशिर निशीथ में ज्यों ओस भार, नवीन।
> झुक चली सव्रीड़ वह सुकुमारता के भार,
> लद गई पाकर पुरूष का नर्ममय उपचार;[25]

और इस रूप में लज्जा सर्ग 'कामायनी' के रचना विधान में अनावश्यक नहीं बल्कि यह कहना गलत नहीं होगा कि इतना आवश्यक है कि उसके बिना मानवीय भावों की यह विकास कथा जितनी अधूरी है उतनी ही अधूरी काम पुत्री 'कामायनी' अथवा श्रद्धा।

इस प्रकार काम, वासना और लज्जा की स्वाभाविक वृत्तियों का जैसा काव्यात्मक और गरिमामय रूप 'कामायनी' में चित्रित हुआ है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। साथ ही वृत्तियों का यह निरूपण श्रद्धा और मनु की कथा की पृष्ठभूमि में जिस रचनात्मकता के साथ जुड़ा है, वह प्रसाद के सूक्ष्म प्रबन्ध कौशल और अद्भुत विवेक का प्रमाण है। 'कामायनी' के कथा विन्यास को शिथिल बताते हुए जब कविवर पंत यह लिखते हैं कि, ''प्रत्येक सर्ग एक स्वतंत्र कविता की तरह आरम्भ होता है उसमें बहुत कुछ ऐसा विस्तार तथा बाहुल्य है जो प्रायः काव्य द्रव्य की दृष्टि से बहुमूल्य नहीं है जिस पर संयम रखने की आवश्यकता थी।''[26] तो आश्चर्य होता है। मानवीय भावों के इस महाकाव्य का आरम्भ जिस चिंता के साथ होता है उसका समापन 'प्रलय निशा' के बाद उदित होते प्रात के साथ होता है,

---

[25] 'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड-1, पृ0-504, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

[26] 'गद्य-पथ', पृ0-159, सुमित्रानन्दन पत।

वाष्प बना उजड़ा जाता था
या वह भीषण जल-संघात,
सौर चक्र में आवर्तन था
प्रलय निशा का होता प्रात![27]

'प्रलय निशा' का यह प्रात चिंता के बाद आशा के संचार का संकेत है। आशा का यह स्पन्दन मनु के एकाकीपन के बोध को तीखा करता है और कथा के विकास क्रम में श्रद्धा का आगमन होता है जिसे कवि ने मानवीय वृत्तियों के अन्तर्गत प्रमुख स्थान दिया है और इस महाकाव्य का नामकरण भी उसका प्रतिनिधित्व करने वाली कामायनी अथवा श्रद्धा के नाम पर हुआ है। श्रद्धा का साहचर्य मनु की काम भावना को उद्दीप्त करता है। देव संस्कृति से माननीय संस्कृति के विकास क्रम में प्रसाद ने काम को उदात्त धरातल पर प्रतिष्ठित किया है। काम का उदय जिस वासना को जन्म को जन्म देता है, उसका संकेत कवि काम सर्ग के इस अन्तिम छंद द्वारा देता है,

उस लता कुंज की झिल-मिल से
हेमाभरश्मि थी खेल रही;
देवों के सोम सुधा रस की
मनु के हाथों में बेल रही।[28]

यहाँ अन्तिम पद में मनु के हाथों में सोमलता का उल्लेख 'कामायनी' के कथासूत्र को जोड़ता है जो मनु में जाग्रत वासना वृत्ति को प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति देता है। मनु की वासना का चरम श्रद्धा में नारी सुलभ लज्जा भाव को जाग्रत करता है। श्रद्धा की लाज के साथ 'वासना' सर्ग का समापन इस रूप में होता है,

---

[27] 'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड-1, पृ0-430, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

[28] 'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड-1, पृ0-488, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

गिर रहीं पलकें, झुकी थी नासिका की नोक,
भ्रूलता थी कान तक चढ़ती रही बेरोक।
स्पर्श करने लगी लज्जा ललित कर्ण कपोल,
खिला पुलक कंदब सा था भरा गद्गद बोल![29]

कहना न होगा श्रद्धा और मनु की कथा की पृष्ठभूमि में मानवीय वृत्तियों का यह कुशल अन्तर्ग्रथन और अन्र्तसंयोजन जिसें पंत एक स्वतंत्र आरम्भ कहते हैं अपनी प्रतीकात्मकता में घटना तत्व के अभाव में भी 'कामायनी' को बिखरने नहीं देता। कामायनी की 'अन्तर्योजना' और 'समष्टि रूप में पड़ने वाले समन्वित प्रभाव' के प्रति सन्तुष्ट न होते हुए भी जिसे पहचानते हुए आचार्य शुक्ल लिखते है, ''इस प्रकार प्रसादजी प्रबन्धक्षेत्र में भी छायावाद की चित्रप्रधान और लाक्षणिक शैली की सफलता की आशा बँधा गए हैं।''[30]

कर्म सर्ग के अन्तर्गत कर्म का उदात्त स्वरूप यदि श्रद्धा के माध्यम से सामने आता है तो उसका आत्मकेन्द्रित रूप मनु के कर्मो के रूप में उजागर होता है। छुटे हुए तीर के समान कथानायक मनु तीव्र गति से कर्म में प्रवृत्त होते हैं। असुर मित्रों आकुलि और किलात जिन्हें आसुरी प्रवृत्तियों का प्रतीक माना जा सकता है, की प्रेरणा से श्रद्धा द्वारा पोषित पशु की बलि का चित्र मनु के आत्मकेन्द्रित कर्म के परिणाम रूप में यों उभरता है,

यज्ञ समाप्त हो चुका तो भी
धधक रही थी ज्वाला;
दारुण दृश्य! रुधिर के छींटे
अस्थि खंड की माला!

---

[29] 'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड-1, पृ0-504, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।
[30] 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', पृ0-470, रामचन्द्र शुक्ल।

वेदी की निर्मम प्रसन्नता,
पशु की कातर वाणी;
मिलकर वातावरण बना था
कोई कुत्सित प्राणी।[31]

यहाँ वेदी पर प्रसन्नता के मानवीय भाव का आरोप जहाँ यज्ञाग्नि की प्रज्जवलता को प्रखर बनाता है वहीं उसकी 'निर्मम प्रसन्नता' मनु के दुष्कर्म की जघनन्यता और कठोरता को व्यक्त करती है। यह निर्मम प्रसन्नता पशु की 'कातर वाणी' के मध्य और भी घृणित हो उठती है। अन्तिम दो पंक्तियों में वातावरण को 'कुत्सित प्राणी' जैसा कहना समग्रतः यज्ञ द्वारा उत्पन्न परिवेश की पावनता को नहीं, उसकी अपवित्रता को मूर्त करता है।

मनु के इस आत्मकेन्द्रित कर्म के प्रति श्रद्धा के अवसाद का चित्र भी निम्न पंक्तियों में द्रष्टव्य है,

सूखी काष्ठ सन्धि में पतली
अनल शिखा जलती थी;
उस धुँघले गृह में आभा से
तामस को छलती थी।

किंतु कभी बुझ जाती पाकर
शीत पवन के झोंके;
कभी उसी से जल उठती तब
कौन उसे फिर रोके।[32]

'अनल शिखा' के रूपक द्वारा श्रद्धा के भीतर जाग्रत उस प्रणयाकाँक्षा को यहाँ प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति मिलती है जो अपने स्नेह पात्र मनु के लिये बुझती जलती है। प्रणयाकाँक्षा की इस लौ के बीच बीच में बुझने का कारण है—श्रद्धा द्वारा स्वयं

---

[31] 'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड-1, पृ0-526, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।
[32] 'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड-1, पृ0-528, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

पाले गये पशु की मनु द्वारा यज्ञ बलि देना। किन्तु शीत वायु के झोंके मनु के उस स्नेह सदृश हैं जो आकाँक्षा की इस लौ को जाग्रत भी करते हैं। इस प्रकार आकाँक्षा की अनलशिखा द्वारा परिवेश के अंधकार और श्रद्धा के मन के अंधकार के छले जाने का यह चित्र मनु के प्रति श्रद्धा की वितृष्णा और प्रेम की जटिल मन:स्थिति को पूरी संश्लिष्टता के साथ उभारता है। सूखी काष्ठ संधि में जलती यह पतली अनल शिखा कर्म सर्ग के अन्त तक आते आते बुझ जाती है, जहाँ स्पष्ट ही उसका बुझना मनु के प्रति श्रद्धा के पवित्र समर्पण का प्रतीक बनता है,

दो काठों की संधि बीच उस
निभृत गुफा में अपने;
अग्नि शिखा बुझ गई, जागने
पर जैसे सुख सपने।[33]

ईर्ष्या की वृत्ति, मनु में जिसका संचार बहुत पहले ही वासना सर्ग के अन्तर्गत संकेतित होता है, उसका आवेग ईर्ष्या सर्ग में दिखाई देता है। भावी शिशु के प्रति श्रद्धा के अत्यन्त स्नेह को लेकर मनु में जगी इस ईर्ष्या के कारण पर प्राय: विद्वानों ने आक्षेप किया है और जो सही भी लगता है किन्तु उल्लेखनीय है कि इसका कारण मात्र श्रद्धा का पुत्र-प्रेम ही नहीं बल्कि मनु के प्रति श्रद्धा की वह उपेक्षा भी है जो मनु के लिये कष्टकारी है और आरम्भ में जिससे श्रद्धा स्वयं भी अनभिज्ञ रहती है,

भावना मयी वह स्फूर्ति नहीं
नव नव स्मित रेखा में विलीन;
अनुरोध न तो उल्लास, नहीं
कुसुमोद्‌गम सा कुछ भी नवीन।

---

[33] 'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड-1, पृ0-546, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

आती है वाणी में न कभी
वह चाव भरी लीला हिलोर,
जिसमें नूतनता नृत्य मयी
इठलाती हो चंचल मरोर।

जब देखो बैठी हुई वहीं
शालियाँ बीन कर नहीं श्रांत!
या अन्न इकट्ठे करती है
होती न तनिक सी कभी क्लांत।

बीजों का संग्रह और उधर
चलती है तकली भरी गीत;
सब कुछ लेकर बैठी है वह
मेरा अस्तित्व हुआ अतीत![34]

कुछ ऐसी ही पंक्तियों के आधार पर 'कामायनी' पर गाँधीवादी विचारधारा के प्रभाव को आलोचकों ने स्वीकार किया है। कहना न होगा ईर्ष्या की स्वाभाविक वृत्ति का अतिरेक यद्यपि मनु में मिलता है किन्तु श्रद्धा और मनु के जिन विरोधी चरित्रों की सर्जना प्रसाद ने 'कामायनी' में की है, वहाँ श्रद्धा में ईर्ष्या का अभाव किन्तु मनु में जिसका स्फुरण साथ ही परिशमन, मनु के चरित्र और कथा — दोनों को गति प्रदान करता है। श्रद्धा और मनु के संवादों के माध्यम से दोनों के चरित्रों का जो चित्र ईर्ष्या सर्ग के अन्तर्गत उभरता है, वह उल्लेखनीय है। श्रद्धा द्वारा बनाई गई पर्णकुटीर का वातायन जहाँ इतना उन्मुक्त है कि,

---

[34] 'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड-1, पृ0-550, 551, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

थे वातायन भी कटे हुये
प्राचीर पर्णमय रचित शुभ्र,
आवें क्षण भर तो चले जाँय
रुक जाँय कहीं न समीर, अभ्र।[35]

वहीं मनु की उन्मुक्तता का रूप द्रष्टव्य है,

यह जलन नहीं सह सकता मैं
चाहये मुझे मेरा ममत्व;
इस पंचभूत की रचना में
मैं रमण करूँ बन एक तत्त्व।[36]

ईर्ष्या सर्ग के अन्तर्गत ऐसे ही अनेक मनोहारी चित्र मिलते हैं, जिन्हें बिम्ब की संज्ञा नहीं दी जा सकती किन्तु जो स्पष्ट ही सादृश्य की नवीनता के कारण परम्परागत उपमानों से अलग नई ताज़गी से भरपूर हैं।

'दृढ़ मांस पेशियों', 'स्फीत शिराओं' और 'अपार वीर्य' सम्पन्न मनु के पौरुष का चित्र एक बार पुनः इड़ा सर्ग में उभारता है। मनु की दिशाहीन गतिशीलता के अत्यन्त ओजपूर्ण चित्रण के साथ इड़ा सर्ग का आरम्भ होता है,

किस गगन गुहा से अति अधीर
झंझा प्रवाह सा निकला यह जीवन विक्षुब्ध महा समीर
ले साथ विकल परमाणु पुंज नभ, अनिल, अनल, क्षिति और तीर
भयभीत सभी को भय देता भय की उपासना में विलीन
प्राणी कटुता को बाँट रहा जगती को करता अधिक दीन
निर्माण और प्रतिपद विनाश में दिखलाता अपनी क्षमता
संघर्ष कर रहा सा जब से, सब से विराग सब पर ममता
अस्तित्व चिरंतन धनु से कब यह छूट पड़ा है विषम तीर
किस लक्ष्य-भेद को शून्य चीर?[37]

---

[35] 'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड-1, पृ0-559, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।
[36] 'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड-1, पृ0-563, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।
[37] 'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड-1, पृ0-567, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

'अचल हिमानी से रंजित', 'जड़ गौरव के प्रतीक' और 'अपनी समाधि में सुखी' रहने वाले शैलशृंग मनु को काम्य नहीं है। मनु की गतिशीलता इस स्थिर प्रतिष्ठा का विरोध करती है। 'झंझा प्रवाह' और 'महा समीर' के गत्यात्मक बिम्ब मनु की इस महत्वाकांक्षा को सार्थक अभिव्यक्ति और गति देते हैं। 'अपने ही सुख से हताश', 'उन्मुक्त शिखरों का हँसना', 'खोखली शून्यता में असफलता का कुँलाच भरना' अन्ततः 'पावस रजनी में जुगनू गण को दौड़कर पकड़ना' और उन 'ज्योति कणों का विनष्ट होना' मनु की आधारहीन आकाँक्षा की विडम्बना को व्यंग्यात्मक धरातल पर प्रस्तुत करता है,

इस दुख मय जीवन का प्रकाश
नभ नील लता की डालों में उलझा अपने सुख से हताश
कलियाँ जिनको मैं समझ रहा वे काँटे बिखरे आस पास
कितना बीहड़ पथ चला और पड़ रहा कहीं थक कर नितांत
उन्मुक्त शिखर हँसते मुझ पर रोता मैं निर्वासित अशांत
इस नियति नटी के अति भीषण अभिनय की छाया नाँच रही
खोखली शून्यता में प्रतिपद असफलता अधिक कुलाँच रही
पावस रजनी में जुगनू गण को दौड़ पकड़ता मैं निराश
उन ज्योति कणों का कर विनाश![38]

कहना न होगा कि 'दुखमय जीवन का प्रकाश' के अद्‌भुत विरोधाभास द्वारा श्रद्धाविहीन मनु की जटिल मनः स्थिति को जिस रूप में यहाँ उभारा गया है, वहाँ प्रसाद की बिम्ब क्षमता अपने चरम पर है।

---

[38] 'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड-1, पृ0-568, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

ऐसी ही मनःस्थिति में मनु उजड़े हुए सारस्वत नगर पहुँचते हैं, जिसके ध्वंसावशेष प्रलय की विनाश लीला का पुनः स्मरण कराते हैं। काम के लम्बे अभिशाप के बाद प्रभात के 'रम्य फलक' पर 'नवल चित्र सी', 'नयन महोत्सव की प्रतीक' इड़ा का अवतरण कथा को नया मोड़ देता है,

बिखरी अलकें ज्यों तर्क जाल
वह विश्व मुकुट सा उज्जवलतम शशिखंड सदृश था स्पष्ट भाल
दो पद्म पलाश चषक से दृग देते अनुराग विराग ढाल
गुंजरित मधुप से मुकुल सदृश वह आनन जिसमें भरा गान
वक्षस्थल पर एकत्र धरे संसृति के सब विज्ञान ज्ञान
था एक हाथ में कर्म कलश वसुधा जीवन रस सार लिये
दूसरा विचारों के नभ को था मधुर अभय अवलंब दिये
त्रिवली थी त्रिगुण तंरगमयी, आलोक वसन लिपटा अराल
चरणों में थी गति भरी ताल।[39]

श्रद्धा के रूप माधुर्य से अलग इड़ा का यह वाह्य रूप उसकी आन्तरिक बौद्धिकता से आलोकित है। 'विचारो के नभ' को अभय अवलम्ब देने वाले तथा 'कर्म कलश' युक्त इड़ा के हाथ, 'विश्व मुकुट सा उज्जवलतम' उसका स्पष्ट भाल, 'तर्कजाल' के रूप में बिखरी अलकें और सम्पूर्ण 'ज्ञान विज्ञान' युक्त अन्तर के प्रतीक रूप उन्नत वक्षस्थल—यह सम्पूर्ण चित्र इड़ा की तेजस्विता और बौद्धिक छवि को उभारता है। 'आलोक वसन' में लिपटी यह इड़ा 'विषमता या समता' का निर्णय करने तथा 'जड़ता को चैतन्य' करने की प्रेरणा भी मनु को देती है और अन्ततः मनु के विंहग रूप मनोभाव जो अब तक सोये थे, पुनः कलरव करने लगते हैं।

---

[39] 'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड-1, पृ0-578, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

स्वप्न, संघर्ष और निर्वेद—'कामायनी' के इन तीन सर्गो में घटनाएँ तीव्र गति से आगे बढ़ती हैं। इड़ा के आगमन के बाद विरहिणी श्रद्धा का चित्र पृथक् रूप में भी और मंदाकिनी से वार्तालाप के प्रसंग में भी उभरता है जहाँ स्पष्ट ही 'आँसू' जैसी गहराई नहीं है। श्रद्धा की सम्पूर्ण विरह वेदना की तुलना में अपने पुत्र के साथ उसका संवाद अधिक मार्मिक और अनुभूतिपरक है। अतीत की स्मृति और विरहानुभूति की लम्बी श्रृंखला 'माँ' की जिस दूरागत किलक के साथ भंग होती है, वहाँ मनु की अनुपस्थिति में माता-पुत्र का संवाद मात्र तीन छंदों में जिस रूप में नियोजित है, वह स्वप्न सर्ग का सर्वाधिक छूने वाला प्रसंग है,

> ''माँ''- फिर एक किलक दूरागत, गूँज उठी कुटिया सूनी,
> माँ उठ दौड़ी भरे हृदय में लेकर उत्कंठा दूनी;
> लुटरी खुली अलक, रज-धूसर बाँहे आकर लिपट गयी,
> निशा तापसी की जलने को धधक उठी बुझती धूनी!
>
> ''कहाँ रहा नटखट! तू फिरता अब तक मेरा भाग्य बना!
> अरे पिता के प्रतिनिधि, तूने भी सुख दुख तो दिया घना;
> चंचल तू, बनचर मृग बन कर भरता है चौकड़ी कहीं,
> मैं डरती तू रूठ न जाये करती कैसे तुझे मना!
>
> मैं रूठूँ माँ और मना तू, कितनी अच्छी बात कही,
> ले मैं सोता हूँ अब जाकर, बोलूँगा मैं आज नहीं;
> पके फलों से पेट भरा है नींद नहीं खुलने वाली।''
> श्रद्धा चुम्बन ले प्रसन्न कुछ, कुछ विषाद से भरी रही।[40]

कहना न होगा 'कुछ प्रसन्न' और 'कुछ विषाद' के इस संश्लिष्ट मनोभाव की अभिव्यक्ति छायावादी काव्यभाषा से अलग अपनी वर्णनात्मकता में भी पति विहीन

---

[40] 'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड-1, पृ0-589, 590, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

श्रद्धा के मातृत्व सुख की दुःखद विडम्बना का जो हृदयग्राही चित्र प्रस्तुत करती है, काव्यभाषा के अन्तर्गत वह विद्वानों द्वारा संकेतित बिम्ब गठन की प्रक्रिया से अलग 'वर्णन की भाषा' का अप्रतिम उदाहरण है।

विशाल उन्नत भवन, श्वेतों में हल चलाते कृषक, आभूषण और अस्त्रों का निर्माण तथा वर्गगत आधार पर श्रम करते और पुर की श्री वृद्धि बढ़ाते नागरिक—आधुनिक नगरीय सभ्यता के चित्र 'वर्णन की भाषा' में ही स्वप्न सर्ग के अन्तर्गत उकेरे गये हैं। ये सभी चित्र मानवीय सभ्यता के उस क्रमिक विकास को दर्शाते है जिसका निर्माण मनु इड़ा के सहयोग से करते हैं,

> मनु का नगर बसा है सुन्दर सहयोगी हैं सभी बने,
> दृढ़ प्राचीरों में मंदिर के द्वार दिखाई पड़े घने;
> वर्षा धूप शिशिर में छाया के साधन सम्पन्न हुये,
> खेतों में हैं कृषक चलाते हल प्रमुदित श्रम-स्वेद सने।
>
> उधर धातु गलते, बनते हैं आभूषण औ' अस्त्र नये,
> कहीं साहसी ले आते हैं मृगया के उपहार नये;
> पुष्पावलियाँ चुनती है वन-कुसुमों की अध-विकच कली,
> गंध चूर्ण था लोध्र कुसुम रज, जुटे नवीन प्रसाधन ये।
>
> घन के आघातों से होती जो प्रचंड ध्वनि रोष भरी,
> तो रमणी के मधुर कण्ठ से हृदय मूर्च्छना उधर ढरी;
> अपने वर्ग बना कर श्रम का करते सभी उपाय वहाँ,
> उनकी मिलित प्रयत्न-प्रथा से पुर की श्री दिखती निखरी।[41]

---

[41] 'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड-1, पृ0-591, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

इस प्रकार श्रद्धा और मनु की यह कथा जो मानवीय वृत्तियों के चित्रण के साथ आरम्भ हुई थी, आधुनिक नगरीय सभ्यता के इन चित्रों के साथ जुड़ कर 'कामायनी' के रचना विधान को अधिक जटिल बनाती हुई आधुनिक समस्याओं से जुड़ती है। बुद्धिवाद पर आधारित इस सभ्यता के विचलन के साथ श्रद्धा के स्वप्न रूप में नियोजित स्वप्न सर्ग समाप्त होता है।

श्रद्धा के स्वप्न की सत्यता संघर्ष सर्ग में प्रमाणित होती है। इड़ा पर मनु की अधिकार भावना इस संघर्ष का कारण बनती है जिसका अत्यन्त ओजस्वी और प्रभावी चित्र यहाँ संघर्ष सर्ग में उभारता है,

यों कह मनु ने अपना भीषण अस्त्र सम्हाला,
देव 'आग' ने उगली त्यों ही अपनी ज्वाला।

छूट चले नाराज धनुष से तीक्ष्ण नुकीले,
टूट रहे नभ धूमकेतु अति नीले पीले!

अंधड़ था बढ़ रहा, प्रजा दल सा झुँझलाता,
रण वर्षा में शस्त्रों सा बिजली चमकाता।

किंतु क्रूर मनु वारण करते उन बाणों को।
बढ़े कुचलते हुए खड्ग से जन प्राणों को।

तांडव में भी तीव्र प्रगति, परमाणु विकल थे,
नियति विकर्षण मयी, त्रास से सब व्याकुल थे।

मनु फिर रहे अलात-चक्र से उस घन तम में,
वह रक्तिम उन्माद नाचता कर निर्मम में।

उठा तुमुल रण नाद, भयानक हुई अवस्था।
बढ़ा विपक्ष समूह मौन पददलित व्यवस्था।

आहत पीछे हटे, स्तम्भ से टिक कर मनु ने,
श्वास लिया, टंकार किया दुर्लक्ष्यी धनु ने।[42]

बुद्धिवाद पर आधारित सभ्यता की विनाशलीला के इस चित्र से अलग 'राम की शक्तिपूजा' में निराला का युद्ध वर्णन भी द्रष्टव्य है,

तीक्ष्ण-शर-विघृत-क्षिप्र कर, वेग-प्रखर,
शतशेलसम्वरणशील, नील-नभ-गर्जित-स्वर,
प्रति-पल-परिवर्तित-व्यूह-भेद-कौशल समूह,
राक्षस-विरुद्ध-प्रत्यूह—क्रुद्ध-कपि-विषम-हूह,[43]

उपर्युक्त उद्धरण में युद्ध की ओजस्विता को समस्त पदों की योजना द्वारा सम्प्रेषित करने का प्रयास किया गया है किन्तु मनु और उसकी प्रजा के युद्ध का उपरोक्त चित्र इस भाषिक योजना से नितान्त भिन्न है। समस्त पदावली से अलग स्वतंत्र शब्द संयोजन द्वारा युद्ध का जो चित्र यहाँ प्रस्तुत किया गया है, कहना न होगा अपनी ओजस्विता में वह राम रावण के प्रसिद्ध 'अपराजेय समर' से किसी भी प्रकार कम नहीं है। 'नाराच', 'खड्ग', 'रणनाद', 'टंकार' और 'दुर्लक्ष्यी' आदि शब्दों की नियोजना द्वारा युद्ध की भंयकरता को अपनी पूर्णता में सम्प्रेषित करने वाले इस युद्ध प्रसंग के अतिरिक्त मनु और इड़ा के अत्यन्त संतुलित और सारगर्भित संवाद संघर्ष सर्ग में विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं जहाँ मनु की अधिकारप्रियता और इड़ा की

---

[42] 'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड-1, पृ0-610, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।
[43] 'अनामिका' (राम की शक्तिपूजा) पृ0-148, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद-सूर्यकांत त्रिपाठी निराला।

विवेकशीलता बड़ी ही तर्कपूर्ण शैली में प्रस्तुत है। सर्ग के आरम्भ में मनु की चिन्ता कतिपय प्रकृति चित्रों के माध्यम से सार्थक अभिव्यक्ति पाती है,

> विश्व एक बंधन विहीन परिवर्तन तो हैं;
> इसकी गति में रवि-शशि-तारे ये सब जो हैं :—
>
> रूप बदलते रहते वसुधा जलनिधि बनती,
> उदधि बना मरुभूमि जलधि में ज्वाला जलती।
>
> तरल अग्नि की दौड़ लगी है सब के भीतर,
> गल कर बहते हिम-नग सरिता लीला रचकर।[44]

यहाँ वसुधा का जलनिधि बनना और जलधि में ज्वाला के जलने का विरोधाभास प्रकृति की परिवर्तनशीलता और जीवन की गतिशीलता की संश्लिष्ट प्रतीति करता है। अगली दो पंक्तियों में सबके भीतर अग्नि का तरल रूप में दौड़ना, हिम नग का गल कर नद के रूप में प्रवाहित होना—सर्वत्र व्याप्त चेतना की गतिशीलता और परिवर्तनशीलता का यह चित्र तथा प्रारम्भ के कुछ ऐसे ही चित्र सर्गान्त के विनाश-चित्रों की वर्णनात्मकता के विपरीत प्रतीकात्मक अधिक हैं।

उजड़े हुए सारस्वत प्रदेश के बीच इड़ा के पश्चाताप, श्रद्धा और मनु के पुनर्मिलन, मनु द्वारा अपने सुखद अतीत का पुनर्स्मरण साथ ही श्रद्धा के प्रति अपने अपराध बोध के चित्र निर्वेद सर्ग में देखे जा सकते हैं। युद्ध के अवसाद का चित्र रात्रि की भयावह पृष्ठभूमि में यों उभरता है,

> निशिचारी भीषण विचार के
> पंख भर रहे सर्राटे,
> सरस्वती थी चली जा रही
> खींच रही सी सन्नाटे।

---

[44] 'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड-1, पृ0-600, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

अभी घायलों की सिसकी में
जाग रही थी मर्म व्यथा,
पुर लक्ष्मी खगरव के मिस कुछ
कह उठती थी करुण कथा।

कुछ प्रकाश धूमिल सा उसके
दीपों से था निकल रहा,
पवन चल रहा था रुक रुक कर
खिन्न भरा अवसाद रहा।[45]

रात्रि में उठने वाले 'भीषण विचारों' का निशिचारियों के पंखों की भाँति सर्राटे भरना और शांत रूप में चली जा रही सरस्वती का सन्नाटे खींचना—सर्राटे और सन्नाटे की अद्‌भुत तुकात्मक संगति द्वारा जहाँ सारस्वत प्रदेश के उजड़े सन्नाटे को अभिव्यक्ति मिलती है वहीं इस सन्नाटे में घायलों की सिसकी के माध्यम से मर्म व्यथा का जगना और नगर की श्री वृद्धि का पक्षियों के कलरव के बहाने करुण कथा कहने का यह चित्र युद्धोपरान्त उत्पन्न भयावहता और करुणा की मिली जुली अनुभूति करता है।

श्रद्धा और मनु के पुनर्मिलन पर सुख की मधुर अनुभूति जो अवसाद के क्षणों में सृजित होती है, वह श्रद्धा के निम्न गीत के रूप में मुखरित हुई है,

तुमुल कोलाहल कलह में
मैं हृदय की बात रे मन!

विकल होकर नित्य चंचल,
खोजती जब नींद के पल;
चेतना थक सी रही तब,
मैं मलय की वात रे मन![46]

---

[45] 'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड-1, पृ0-615, 616, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

[46] 'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड-1, पृ0-626, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

'कामायनी' की पाण्डुलिपि में स्वप्न सर्ग के अन्तर्गत किन्तु प्रकाशित प्रति में निर्वेद सर्ग के अन्तर्गत नियोजित यह गीत श्रद्धा के आत्मपरिचय के रूप में है। थकित चेतना की मलय वात रूप श्रद्धा के लिये, तिमिर वन की ज्योति रेखा, धधकती जीवन घाटियों की सरस बरसात, झुलसते विश्व दिन की कुसुम ऋतु रात और अश्रु सर में विकसित सजल जलजात के बिम्ब जो सम्पूर्ण गीत में विकसित हुए हैं, वह श्रद्धा वृत्ति की मधुरता की सहज प्रतीति से सम्पन्न हैं।

मनु द्वारा अतीत के पुनर्स्मरण के संदर्भ में उसके श्रद्धायुक्त जीवन की झाँकी एक बार पुनः निर्वेद सर्ग के अन्तर्गत अत्यन्त उच्च कोटि के रचनात्मक चित्रो के माध्यम से देखी जा सकती है,

सन्ध्या अब ले जाती मुझसे
ताराओं की अकथ कथा,
नींद सहज ही ले लेती थी
सारे श्रम की विकल व्यथा।

सफल कुतूहल और कल्पना
उन चरणों से उलझ पड़ी,
कुसुम प्रसन्न हुए हँसते से
जीवन की वह धन्य घड़ी।

स्मिति मधुराका थी, श्वासों से
पारिजात कानन खिलता,
गति मरन्द-मन्थर मलयज सी
स्वर में वेणु कहाँ मिलता!

श्वास पवन पर चढ़ कर मेरे
दूरागत वंशी रव सी,
गूँज उठी तुम, विश्व कुहर में
दिव्य रागिनी अभिनव सी!

जीवन जलनिधि के तल से जो
मुक्ता थे वे निकल पड़े,
जग-मंगल संगीत तुम्हारा
गाते मेरे रोम खड़े![47]

मनु के पश्चाताप और ग्लानि को लेकर लम्बी चित्र श्रृंखला जो निर्वेद सर्ग में निबद्ध है, मनु के उन आत्मोद्गारों पर मुक्तिबोध ने गहरा आक्षेप किया है किन्तु प्रस्तुत विवेचन के अन्तर्गत मनु के इन उद्गारों के संदर्भ में कुछ सूक्ष्म संकेत विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं,

किंतु अधम मैं समझ न पाया
उस मंगल की माया को,
और आज भी पकड़ रहा हूँ
हर्ष शोक की छाया को।

मेरा सब कुछ क्रोध मोह के
उपादान से गठित हुआ,
ऐसा ही अनुभव होता है
किरनों ने अब तम छुआ।
....
अंध-तमस है किन्तु प्रकृति का
आकर्षण है खींच रहा,
सब पर, हाँ अपने पर भी मैं
झुँझलाता हूँ खीज रहा।

नहीं पा सका हूँ मैं जैसे
जो तुम देना चाह रही,
क्षुद्र पात्र! तुम उसमें कितनी
मधु धारा हो ढाल रही।

[47] 'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड-1, पृ0-634, 635, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

सब बाहर होता जाता है
स्वगत उसे मैं कर न सका,
बुद्धि तर्क के छिद्र हुए थे
हृदय हमारा भर न सका।
. .. . .

सोच रहे थे, "जीवन सुख है?
ना, यह विकट पहेली है,
भाग अरे मनु! इन्द्रजाल से
कितनी व्यथा न झेली है?

यह प्रभात की स्वर्ण किरन सी
झिलमिल चंचल सी छाया,
श्रद्धा को दिखलाऊँ कैसे
यह मुख या कलुषित काया।

और शत्रु सब, ये कृतघ्न फिर
इनका क्या विश्वास करूँ,
प्रतिहिंसा प्रतिशोध दबा कर
मन ही मन चुपचाप मरूँ।

श्रद्धा के रहते यह संभव
नहीं कि कुछ कर पाऊँगा,
तो फिर शांति मिलेगी मुझको
जहाँ, खोजता जाऊँगा।[48]"

कहना न होगा मनु के चरित्र निर्माण अथवा चरित्र विकास पर मुक्तिबोध द्वारा किये गये आक्षेप के विवाद से अलग हटकर देखने पर स्पष्ट होगा कि ये सभी चित्र मनु अथवा मानव मन के आकर्षण विकर्षण के जटिल तनाव को मनोवैज्ञानिक

---

[48] 'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड-1, पृ0-637, 638, 639, 640, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

धरातल पर प्रस्तुत करते हैं और इसी के साथ इनके माध्यम से आगामी कथा-विकास का संकेत भी मिलता है।

दर्शन, रहस्य और आनन्द 'कामायनी' के रचना-विधान के वे महत्वपूर्ण सर्ग हैं, जहाँ इड़ा, स्वन और संघर्ष सर्गो के अन्तर्गत आधुनिक समस्याओं से गुजरती, जुड़ती 'कामायनी' की कथा अपना समाधान शाश्वत मूल्यों के रूप में प्राप्त करती है। 'कामायनी' के इन अन्तिम तीन सर्गो का काव्य-सौन्दर्य अद्‌भुत है। कवि का जीवन-दर्शन मिथकीय धरातल पर सुंदर दार्शनिक बिम्बों द्वारा यहाँ जिस रूप में अभिव्यक्त हुआ है, वह महाकाव्योचित, गरिमा और औदात्य से सम्पन्न है। शिव के आनन्दपूर्ण तांडव द्वारा मनु के मन के अंधकार भेदन का चित्रण हो या नृत्य के दिव्य प्रकाश में निलय होती सृष्टि की परिवर्तनशीलता और गतिशीलता के चित्र—शैव दर्शन की पृष्ठभूमि में सृजित ये सभी बिम्ब अपनी कलात्मकता में बेजोड़ हैं,

सत्ता का स्पन्दन चला डोल,
आवरण पटल की ग्रन्थि खोल,

तम जलनिधि का बन मधु मंथन,
ज्योत्सना सरिता का आलिंगन;
वह रजत गौर, उज्जवल जीवन,
आलोक पुरुष! मंगल चेतन!

केवल प्रकाश का था कलोल,
मधु किरनों की थी लहर लोल।

बन गया तमस था अलक जाल,
सर्वांग ज्योतिमय था विशाल;

अन्तर्निनाद ध्वनि से पूरित,
थी शून्य-भेदिनी सत्ता चित्;
नटराज स्वयं थे नृत्य निरत,
था अन्तरिक्ष प्रहसित मुखरित;

स्वर लय होकर दे रहे ताल,
थे लुप्त हो रहे दिशा काल।

लीला का स्पन्दित आह्लाद,
वह प्रभा पुंज चितिमय प्रसाद;

आनन्द पूर्ण ताण्डव सुन्दर
झरते थे उज्जवल श्रम सीकर;
बनते तारा, हिमकर दिनकर,
उड़ रहे धूलि कण से भूधर;

संहार सृजन से दुगल पाद-
गतिशील, अनाहत हुआ नाद।

बिखरे असंख्य ब्रह्माण्ड गोल,
युग त्याग ग्रहण कर रहे तोल;

विद्‌युत कटाक्ष चल गया जिधर,
कंपित संसृति बन रही उधर;
चेतन परमाणु अनन्त बिखर,
बनते विलीन होते क्षण भर;

यह विश्व झूलता महा दोल,
परिवर्तन का पट रहा खोल।

उस शक्ति शरीरी का प्रकाश,
सब शाप पाप का कर विनाश-

नर्तन में निरत, प्रकृति गल कर,
उस कान्ति सिन्धु में घुल मिलकर;
अपना स्वरूप धरती सुन्दर,
कमनीय बना था भीषणतर;

हीरक गिरि पर विद्‌युत विलास,
उल्लसित महा हिम धवल हास।[49]

यहाँ उल्लेखनीय है कि मनु के मन की जटिलता और अंहकार के परिशमन का माध्यम भले उस आनन्द को, स्पष्ट ही जिसे आनन्दवाद कहना कवि की जीवनदृष्टि

[49] 'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड-1, पृ0-662, 663, 664, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

को खण्डित और सीमित करना होगा, बनाया गया है जिसका सम्बन्ध शैव दर्शन से है किन्तु उससे सम्बन्धित जो बिम्ब यहाँ दर्शन सर्ग के अन्तर्गत रचे गये हैं, वे अपनी काव्यात्मकता में भी सहज ग्राह्य है। ये सभी बिम्ब विशिष्ट दार्शनिक संदर्भो से इतर आनन्दानुभूति को व्यावहारिक स्तर पर भी रूपायित करते है। श्रद्धा द्वारा अपने पुत्र के समक्ष अपने विश्वग्रह का विश्लेषण अथवा इड़ा के समक्ष उसकी परिवर्तनशीलता की व्याख्या ऐसी ही है, जहाँ हर्ष-शोक, उत्थान-पतन, सुख दुःखमय जगत के सौन्दर्य चित्रों द्वारा दिया गया जागृति और चेतना का संदेश, कहना न होगा दार्शनिक व्याख्या से अलग अपनी काव्यात्मकता में भी उतना ही अनुभूतिपूर्ण और कलात्मक है,

जग, जगता आँखें किये लाल;
सोता ओढ़े तम नींद जाल;

सुरधुन सा अपना रंग बदल,
मृति, संसृति, नति, उन्नति में ढल;
अपनी सुषमा में यह झलमल,
इस पर खिलता झरता उडुदल;

अवकाश सरोवर का मराल,
कितना सुन्दर कितना विशाल।[50]

x x x x x

[50] 'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड-1, पृ0-645, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

चेतनता का भौतिक विभाग—
कर, जग को बाँट दिया विराग;

चिति का स्वरूप यह नित्य जगत,
वह रूप बदलता है शत शत;
कण विरह मिलन मय नृत्य निरत;
उल्लासपूर्ण आनन्द सतत;

तल्लीन पूर्ण है एक राग,
झंकृत है केवल 'जाग जाग!'[51]

रहस्य सर्ग में उस समरसता को, इच्छा ज्ञान और कर्म लोक की कल्पना द्वारा अन्तिम रूप दिया गया है जो वस्तुतः किसी न किसी रूप में सम्पूर्ण 'कामायनी' में परिव्याप्त है और जिनके सामञ्जस्य से प्राप्त आनन्द की व्याख्या के साथ 'कामायनी' की कथा समाप्त होती है। त्रिदिक् के इस रहस्य से प्राप्त आंनद और इन दोनो से पूर्व दर्शन की व्याख्या को अनेक आलोचकों ने अनावश्यक और काव्यत्व की दृष्टि से कमजोर माना है। कहना न होगा चिंता से आनंद तक की यात्रा में अनेक स्थलों पर स्खलित होते मनु, न केवल मनु बल्कि 'कामायनी' के अन्य महत्वपूर्ण पात्रों—श्रद्धा, इड़ा, मानव और इनके साथ समस्त सारस्वत निवासियों को समरसता की अनुभूति इन अन्तिम तीन सर्गो में ही होती है। विशम्भर मानव इन तीन सर्गो की सार्थकता को स्वीकार करते हैं और डा0 देवराज के अनुसार बिम्बों का वैभव इन्हीं सर्गो में अपनी पूर्णता पर है। यों श्रद्धा द्वारा अपने पुत्र

[51] 'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड-1, पृ0-652, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

मानव को इड़ा को सौंपने के साथ ही कथा के समापन के औचित्य को भी आलोचकों ने स्वीकार किया है।

'समरस अखंड आनन्द वेश', 'नर्तित नरेश' के चरणों तक जाने को उद्धत मनु के हिमालय आरोहण के साथ रहस्य सर्ग प्रारम्भ होता है। 'श्रद्धा के रहते यह सम्भव नहीं कि कुछ कर पाऊँगा' निर्वेद सर्ग के अंत तक इस मन:स्थिति वाले मनु यहाँ श्रद्धा का अनुगमन करते दिखाई देते हैं। बिम्बों द्वारा त्रिदिक् विश्व का चित्र इस प्रकार उभरता है,

नियममयी उलझन लतिका का
भाव विटपि से आकर मिलना;
जीवन वन की बनी समस्या
आशा नभकुसुमों का खिलना।[52]

लतिका रूप नियमों का भाव विटपि से मिलकर उलझने का यह चित्र भाव लोक की एकांगी अवस्था को दर्शाता है। एकांगी कर्म की पीड़ामय गतिशीलता और विवेकहीनता भी क्रमशः निम्न बिम्बों में द्रष्टव्य है,

श्रममय कोलहल, पीड़नमय
विकल प्रवर्त्तन महायंत्र का;
क्षण भर भी विश्राम नहीं है
प्राण दास है क्रिया तन्त्र का।

भाव राज्य के सकल मानसिक
सुख यों दुख में बदल रहे हैं;
हिंसा सर्वोन्नत हारों में
ये अकड़े अणु टहल रहे हैं।[53]

---

[52] 'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड-1, पृ0-675, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।
[53] 'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड-1, पृ0-676, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

भीतर से शुष्क किन्तु वाह्य रूप में आकर्षक ज्ञान लोक के प्राणियों की ज्ञान पिपासा की विडम्बना कुछ इस प्रकार है,

> यहाँ प्राप्य मिलता है केवल
> तृप्ति नहीं कर भेद बाँटती;
> बुद्धि, विभूति सकल सिकता सी
> प्यास लगी है ओस चाटती।
>
> न्याय, तपस, ऐश्वर्य में पगे
> ये प्राणी चमकीले लगते!
> इस निदाघ मरु में सूखे से
> स्रोतों के तट जैसे जगते।[54]

बिम्बों की भाषा में इच्छा, ज्ञान और कर्म का यह एकांगी स्वरूप जिस रूप में यहाँ चित्रित है, भौतिक जीवन की विषमता और तनाव को वह अपनी यथार्थता में प्रस्तुत करता है। अन्ततः कवि की समन्वयवादी जीवन-दृष्टि का निरूपण अत्यन्त उदात्त धरातल पर हुआ है। 'महाज्योति रेखा सी' श्रद्धा की मुस्कान द्वारा इच्छा, कर्म और ज्ञान लोक के सामञ्जस्य के सम्बन्ध में रमेशचन्द्रशाह की यह टिप्पणी बड़ी सटीक है, "वह कौन सी विडम्बना हो सकती है जो श्रद्धा के प्रताप से दूर नहीं हो सकती? प्रसादजी के मनु ने इस श्रद्धा को एक बार खोकर फिर से पाया है। प्रसादजी की श्रद्धा बुद्धि से बचकर चली हुई श्रद्धा नहीं, बल्कि बुद्धि की राह से बुद्धि को उसकी चरमता में भेद कर पाई हुई श्रद्धा है।"[55] और तब यह अकारण नहीं कि इच्छा, क्रिया, और ज्ञान के लय का जो बिम्ब सर्ग के अंत में उभरता है,

---

[54] 'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड-1, पृ0-680, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

[55] 'जयशंकर प्रसाद'- पृ0-83, रमेशचन्द्र शाह।

अपनी दार्शनिक रचनात्मकता में वह श्रद्धा द्वारा मानवीय जीवन की विडम्बना का व्यावहारिक और शाश्वत समाधान भी प्रस्तुत करता है,

शक्ति तंरग प्रलय पावक का
उस त्रिकोण में निखर उठा सा;
श्रृङ्ग और डमरू निनाद बस
सकल विश्व में बिखर उठा सा।

चितिमय चिता धधकती अविरल
महाकाल का विषम नृत्य था;
विश्व रंघ्र ज्वाला से भर कर
करता अपना विषम कृत्य था।

स्वप्न, स्वाप, जागरण भस्म हो
इच्छा क्रिया ज्ञान मिल लय थे;
दिव्य अनाहत पर निनाद में
श्रद्धायुत मनु बस तन्मय थे।[56]

और रहस्य सर्ग के 'श्रद्धायुत मनु' इड़ा, मानव और समस्त सारस्वत निवासियों को जिस कैलाश का दर्शन कराते है, वहाँ अपने पराए का भेद समाप्त हो जाता है,

शापित न यहाँ है कोई
तापित पापी न यहाँ है;
जीवन वसुधा समतल है
समरस है जो कि जहाँ है।[57]

समरसता की इस अनुभूति में अद्वैत का जो बिम्ब उभरता है, क्या वह कवि की आनन्दविधायिनी जीवन दृष्टि को ध्वनित नहीं करता?

---

[56] 'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड-1, पृ0-683, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।
[57] 'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड-1, पृ0-698, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

इस ज्योत्स्ना के जलनिधि में
बुद्बुद्छ् सा रूप बनाये;
नक्षत्र दिखाई देते
अपनी आभा चमकये।

वैसे अभेद सागर में
प्राणों का सृष्टि-क्रम है;
सब में घुल मिल कर रसमय
रहता यह भाव चरम है।[58]

और क्या यह,

अपने दुख सुख से पुलकित
यह मूर्त विश्व सचराचर;
चिति का विराट वपु मंगल
यह सत्य सतत चिर सुंदर

सब की सेवा न परायी
वह अपनी सुख संसृति है;
अपना ही अणु अणु कण कण
द्वयता ही तो विस्मृति है।[59]

'कामायनी' में उठाये गये प्रश्नों का प्रतीकात्मक निदान नहीं है? किन्तु जिसकी प्रतीकात्मकता के प्रति आश्वस्त न होते हुए भी मुक्तिबोध के ही शब्दों में कहा जा सकता है, ''प्रसादजी के पास अपना एक निजी दर्शन है, और उस दर्शन के भीतर एक व्यवस्था है। उनका दर्शन केवल दृष्टिकोण नहीं है, सिर्फ़ एक रुख नहीं है, वरन् एक व्यवस्था है। यह व्यवस्था उन्होंने अपनी अनुभवात्मक खोज से पायी

[58] 'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड-1, पृ0-698, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।
[59] 'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड-1, पृ0-698, 699, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

है। **कामायनी** में उनका यह जीवन-दर्शन पूर्ण आभा के साथ प्रकट हुआ है।''[60] निश्चय ही अनुभवात्मक खोज से पाई गई इस व्यवस्था में चिंता, काम, वासना, ईर्ष्या और संघर्ष—वह सब कुछ है जिससे परे देवगण तो हो सकते हैं, पर मनुष्य नहीं। इन सबको पार करते हुए जिस आनन्द की व्यवस्था प्रसाद के जीवन दर्शन में है, वह जीवन से पलायन नहीं। यदि वह जीवन से पलायन होता तो मनु इस संघर्ष से गुजरते ही नहीं। श्रद्धा के अंक को भरते तथा वाम कर में वृष रज्जु और दक्षिण में त्रिशूल से शोभित इड़ा के साथ चलते मानव द्वारा नई सभ्यता के निर्माण की आशा और विश्वास का यह आनन्द पर्व कतिपय हिमालयीन प्रकृति चित्रों के आधार पर पलायनवादी कैसे हो सकता है। दुख सुख को समान रूप से दृश्य बनाता आनन्द का यह स्वर तो जीवन की मुरली से उठता है जिसके मनोहर संगीत के साथ 'कामायनी' की कथा समाप्त होती है,

संगीत मनोहर उठता
मुरली बजती जीवन की;
संकेत कामना बन कर
बतलाती दिशा मिलन की।[61]

कहना न होगा 'चिति', 'जगत', 'सत्', 'हलाहल', 'अणु', 'पंचभूत', 'अस्ति', 'नास्ति', 'तन्मय', 'उन्मन', 'अनाहत' आदि दार्शनिक और पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग न केवल अन्तिम तीन सर्गो में बल्कि सम्पूर्ण 'कामायनी' में यद्यपि अर्थ के गूढ़ स्पष्टीकरण के लिये विशिष्ट दार्शनिक ज्ञान, विभिन्न पौराणिक और सांस्कृतिक संदर्भो की जानकारी की अपेक्षा रखता है किन्तु इनके आधार पर सृजित बिम्ब कामायनी की भावकथा से भी सम्बद्ध होने के कारण भावबोध को

---

60 'कामायनी एक पुनर्विचार', पृ0-147, गजानन माधव मुक्तिबोध

61 'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड-1, पृ0-703, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

और रसात्मकता को बाधित नहीं करते। काव्य और दर्शन, न केवल दर्शन बल्कि पुराण, मिथक और संस्कृति के अनुभूत्यात्मक संयोग के कारण 'कामायनी' में उस समग्र काव्यबिम्ब का निर्माण होता है जिसे स्फुट बिम्बों के प्राचुर्य के कारण डा0 नगेन्द्र 'कामायनी' में अत्यन्त जटिल मानते हैं जहाँ 'कामायनी' के कथासूत्रों को पकड़ना कठिन होता है किन्तु जो जटिलता वस्तुतः चिंता और आनन्द के दो विरोधी बिन्दुओं के बीच रचे गये 'कामायनी' के अर्थ सघन रचना विधान का वह वैशिष्ट्य है जहाँ 'कामायनी' की कथावस्तु की रूपरेखा का डा0 नगेन्द्र द्वारा काम्य स्पष्टीकरण असम्भव है। (जिसका उल्लेख उन्होंने दो प्रसंगों के माध्यम से किया है—'कामायनी के अध्ययन की समस्याएँ' पृ0-6) कथा के एक स्तर पर जहाँ देव संस्कृति के स्थूल सुख भोग से आगे मानवीय संस्कृति के सूक्ष्म विकास की व्याख्या है वहीं चिंता से आनन्द तक मानवीय अन्तःकरण के विकास की कथा एक अन्य स्तर पर रूपायित है। मनु, श्रद्धा और इड़ा के माध्यम से क्रमशः आदिम सभ्यता, कृषि सभ्यता और आधुनिक सभ्यता के विकास की कथा भी यहाँ ध्वनित होती है। कहना न होगा मानवता के विकास के इन कई स्तरों को एक दूसरे पर आरोपित कर रूपक-काव्य, एलेगेरी अथवा अन्योक्ति के रूप में 'कामायनी' के कथा विधान में दोष ढूँढे जा सकते हैं किंतु अर्थ के इन विभिन्न स्तरों की टकराहट से आनन्द की जो विराट परिकल्पना समग्र रूप में अंत में उभरती है, वह शास्त्रीय मानदण्डों का अतिक्रमण करने वाले इस महाकाव्य के 'महाबिम्ब' को प्रबन्ध के विराट व्यापक फलक पर अपनी जटिलता में भी पूरे सौन्दर्य और वैभव के साथ प्रस्तुत करती है।

इस प्रकार समरसता और आनन्द की प्राप्ति में मनु को जटिलता और तनाव से क्रमशः मुक्त करती चिंता से आनन्द तक की यह रचनात्मक यात्रा भाषिक संदर्भों में भी कुछ ऐसी है जहाँ बिम्ब गठन की प्रक्रिया अन्तिम सर्गो में आरम्भिक

उच्च स्तर आप से आप अतिक्रमित कर देता है।''[63] कहना न होगा रचना का यह उच्च स्तर 'कामायनी' में अपने पूरे वैभव के साथ आलोकित हो उठा है जिसे देखते हुए 'कामायनी' के संरचनागत दोष को संकेतित करने के बावजूद बच्चन सिंह लिखते है, ''अपनी इन कमियों के बावजूद कामायनी एक अभिनव कला-कृति है। मनुष्य की अर्न्तवृत्तियों के इतने गूढ़ और संश्लिष्ट रचनात्मक चित्र बहुत ही कम मिलेंगे। हिन्दी के पिछले प्रबन्धकाव्यों से इसके बिम्ब भाषा, प्रतीक आदि एकदम अलग, नवीन और कल्पनात्मक छवियों से ओत-प्रोत हैं। अर्थ के विभिन्न स्तरों को यदि इसकी संरचना ठीक-ठीक आकलित पाती तो इसकी भाव्यता और कलात्मकता अद्वितीय होती। फिर भी उसके सामने कोई द्वितीय नहीं है।''[64] निसंदेह 'कामायनी' में मिलने वाली भाषिक त्रुटियों के बावजूद इसके अद्भुत काव्यात्मक वैभव को देखते हुए आलोचक के इस एक वाक्य के साथ विवेचन को समेटते हुए कहा जा सकता है कि फिर भी उसके सामने कोई द्वितीय नहीं है।

---

[63] 'कामायनी का पुनर्मूल्यांकन'-(प्रथम संस्करण-1970)' पृ0-47, रामस्वरूप चतुर्वेदी।

[64] 'आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास'-पृ0-156, बच्चन सिंह।

अध्याय–5

आधुनिक खड़ीबोली काव्यभाषा के विकास में प्रसाद का योगदान

आधुनिक खड़ीबोली काव्यभाषा के विकास में प्रसाद का योगदान

आधुनिक खड़ीबोली काव्यभाषा का विकास और प्रसाद की काव्यभाषा का विकास दो समानान्तर चलने वाली विकास प्रक्रियाएँ नहीं किन्तु प्रसाद की काव्यभाषा का विकास एक प्रकार से सम्पूर्ण खड़ीबोली काव्य अथवा आधुनिक काव्यभाषा के विकास क्रम को प्रतिबिम्बित करता है। प्रगतिशील चेतना के फलस्वरूप जहाँ नये प्रतीक, नये बिम्ब आधुनिक काव्यभाषा को नई भंगिमा देते हैं और आगे भी शिल्प के प्रयोग खड़ीबोली काव्यभाषा के विकास में नये आयाम जोड़ते हैं और परिवर्तन की यह प्रक्रिया आज भी गतिमान है किन्तु छायावाद के रूप में खड़ीबोली काव्यभाषा जिस शिखर को प्राप्त करती है, वह पूर्ववर्ती और परवर्ती युग में दिखाई नहीं देता। यह सर्वविदित है कि हिन्दी कविता को लम्बे समय से चली आ रही श्रृंगार और भक्ति की लोकोत्तर भावनाओं से अलग लोकभूमि से जोड़ने वाले और इस रूप में आधुनिकता का संवहन करने वाले भारतेन्दु काव्यभाषा के रूप में ब्रजभाषा के पक्षधर थे; और इस रूप में वह परम्परा का निर्वहन करते हुए भी दिखाई देते हैं। परम्परा और आधुनिकता का यह सहकार सम्भव हो सकता था यदि ब्रजभाषा बदली हुई परिस्थितियों के अनुकूल भावों की अभिव्यक्ति में समर्थ हो पाती। यह सम्भव नहीं हो सका और देश प्रेम, देशभक्ति तथा समाज सुधार से जुड़े अनेक आधुनिक विषय जो भारतेन्दु के समय में ही कविता का विषय बनने लगे थे, अब उनकी अभिव्यक्ति खड़ीबोली में होने लगी।

लोकभाषा के रूप में संवर्धित होती खड़ीबोली में भारतेन्दु के समय में जो थोड़ा बहुत काव्य साहित्य रचा भी गया, विषयानुकूल भाषा का प्रयोग होते हुए भी वह इतना वस्तुनिष्ठ है कि उसे पद्यबद्ध गद्य ही कहा जा सकता है। गद्यभाषा की तरह मुहावरों का प्रयोग भी तद्युगीन खड़ीबोली काव्य में खूब हुआ है। उर्दू,

ब्रजभाषा और प्रान्तीय शब्दों से प्रभावित इस युग के अत्यल्प खड़ीबोली काव्य को देखते हुए यह कहना गलत नही होगा कि आधुनिक हिन्दी काव्य का आरम्भ ब्रजभाषा से ही होता है। स्वयं भारतेन्दु के अतिरिक्त ब्रजभाषा को आधुनिक काव्य संचेतना से अनुप्राणित करने वाले रचनाकारों में प्रतापनारायण मिश्र, ठाकुर जगमोहन सिंह, राधाचरण गोस्वामी, राधाकृष्ण दास, किशोरीलाल गोस्वामी और देवीप्रसाद पूर्ण तथा पुराने विषयों को नये ढंग से प्रस्तुत करने वालों में जगन्नाथदास रत्नाकर (हरिश्चन्द्र और गंगावतरण) और सत्यनारायण कविरत्न (भ्रमरगीत) प्रमुख है।

इस प्रकार आधुनिक काल मे जब खड़ीबोली कविता की भाषा बनती है, उस पर ब्रजभाषा का संस्कार स्पष्ट दिखाई देता है। खड़ीबोली का ब्रजभाषा प्रभावित यह रूप भारतेन्दुयुगीन अनेक रचनाकारों से लेकर छायावाद के पहले बड़े कवि जयशंकर प्रसाद के काव्य में भी देखा जा सकता है। यद्यपि पण्डित श्रीनारायण चतुर्वेदी ने 'आधुनिक खड़ीबोली काव्य' के अन्तर्गत पण्डित वागीश्वर मिश्र, सत्यशरण रतूड़ी, पण्डित सकलनारायण पाण्डेय, पण्डित माधव प्रसाद मिश्र, पण्डित राधाकृष्ण मिश्र और पण्डित चन्द्रधर शर्मा गुलेरी आदि उन खड़ीबोली कवियों और उनकी भाषा की, प्राञ्जलता की चर्चा की है जो संस्कृतज्ञ थे, जिनका संस्कार ब्रजभाषा का न था और जो सीधे खड़ीबोली में लिखने लगे किंतु आगे हिन्दी कविता की मुख्य धारा से जुड़े प्रायः सभी प्रसिद्ध कवियों पर, जिनमें खड़ीबोली में पहला महाकाव्य 'प्रियप्रवास' प्रस्तुत करने वाले 'हरिऔध' की गणना भी जा सकती है ब्रजभाषा का संस्कार अवश्य रहा, यह अलग बात है कि ब्रजभाषा के उस संस्कार से वह क्रमशः मुक्त होते गये। खड़ीबोली का यह ब्रजभाषा मिश्रित रूप 'हरिऔध', पण्डित नाथूराम शर्मा शंकर, पण्डित किशोरीलाल गोस्वामी, पण्डित लोचनप्रसाद पाण्डेय के अतिरिक्त श्रीधर पाठक के काव्य से

आरम्भ होकर आगे खड़ीबोली काव्य को प्रान्तीय शब्दों के मल से मुक्त कर शुद्ध तत्सम प्रधान रूप प्रदान करने वाले आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के आरम्भिक खड़ीबोली काव्य में भी दृष्टिगत होता है तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। किंतु आगे चलकर खड़ीबोली काव्य को विशुद्ध खड़ीबोली काव्य के रूप में प्रतिष्ठित करने के क्षेत्र में द्विवेदी जी का एकान्तिक और एकनिष्ठ योगदान तो निर्विवाद है ही, उसे रचनात्मक स्तर पर काव्यभाषा का सर्वप्रथम गौरव प्रदान करने वाले पण्डित श्रीधर पाठक के ये विचार भी प्रस्तुत प्रसंग के संदर्भ में उल्लेखनीय हैं, ''विशुद्ध भाषा की कविता ही उच्च श्रेणी की कविता कहलाने की सम्भावना और शिष्ट समाज में आदर पाने की योग्यता रख सकती है। मिश्रित या खिचड़ी भाषा के पद्य में यह योग्यता नहीं आ सकती। अतः ऐसी भाषा का प्रयोग उत्कृष्ट काव्य में कदापि न करना चाहिये किन्तु इसकी प्रथा को एक साथ त्याग देना ही अच्छा है। .... खड़ीबोली ने अब ऐसा प्रशस्त रूप प्राप्त कर लिया है कि उसके पद्य में ब्रजभाषा आदि हिन्दी के इतर रूपों की वाक्य-वल्लरी वा वाक् पद्धति का किञ्चित् अनुपयुक्त व्यवहार भी उसके प्रकृत और गौरव की हानि का हेतु हो सकता है।''[1] कहना न होगा आद्यन्त ब्रजभाषा का न्यूनाधिक प्रभाव होते हुए भी जहाँ श्रीधर पाठक की इस वैचारिक सम्मति को न केवल ब्रजभाषा बल्कि अरबी फारसी शब्दों के क्रमशः परित्याग द्वारा उनकी परवर्ती रचनाओं में व्यावहारिक स्तर पर परिणत होते हुए देखा जा सकता है वहीं महावीर प्रसाद द्विवेदी के इस क्षेत्र में योगदान की चर्चा की पुनः आवश्यकता नहीं है। आचार्य द्विवेदी ने न केवल शब्द चयन बल्कि व्याकरणिक स्तर पर भी खड़ीबोली के लिये विशुद्ध भाषा की कविता का आदर्श उपस्थित किया। स्वयं ब्रजभाषा में काव्य रचना करने वाले

[1] मर्यादा, भाग-1, सं0-1, नवम्बर, सन् 1911

आचार्य द्विवेदी ने खड़ीबोली में काव्य रचना की जिस युगीन आवश्यकता को महसूस किया, उसकी प्रतिष्ठा के लिये जिस युग धर्म का निर्वाह किया, वहाँ खड़ीबोली काव्यभाषा का स्वरूप सुनिश्चित और सुस्थिर हुआ। किंतु सुनिश्चितता और स्थिरता के इस आग्रह ने इतिवृत्तात्मक संस्कार को दृढ़ किया।

इस प्रकार ब्रजभाषा प्रभावित खड़ीबोली के बाद जो विशुद्ध खड़ीबोली काव्यभाषा के रूप में आती है, वह इतिवृत्तात्मकता का संस्कार लिये आती है। 1903 में आचार्य द्विवेदी ने 'सरस्वती' के सम्पादन का भार संभालने के बाद जिस भाषा में कविता करने के लिये लेखकों को प्रेरित किया उसके सम्बन्ध में आचार्य शुक्ल लिखते हैं, ''उनका जोर बराबर इस बात पर रहता था कि कविता बोलचाल की भाषा में होनी चाहिये। बोलचाल से उनका मतलब ठेठ या हिन्दुस्तानी का नहीं रहता था, गद्य की व्यावहारिक भाषा का रहता था। परिणाम यह हुआ कि उनकी भाषा बहुत अधिक गद्यवत् (Prosaic) हो गई।.......... उनकी अधिकतर कविताएँ इतिवृत्तात्मक (Matter of Fact) हुई। .... 'यथा', 'सर्वथा', 'तथैव', ऐसे शब्दों के प्रयोग ने उसकी भाषा को और भी अधिक गद्य का स्वरूप दे दिया।''[2] काव्यभाषा के इस गद्यात्मक अथवा इतिवृत्तात्मक स्वरूप में सरसता, व्यञ्जकता, लाक्षणिकता और कल्पना आदि तत्वों का जहाँ अभाव रहा वहीं मानव मन की गूढ़तम और जटिलतम अन्तर्वृत्तियों की अभिव्यक्ति के लिये काव्यभाषा की इस इकहरी वाक्यात्मक संरचना में कोई गुंजाइश नहीं रही। किंतु जिसकी आवश्यकता को स्वयं आचार्य द्विवेदी ने महसूस किया और 1920 में 'सरस्वती' के सम्पादकीय में लिखा, ''वाह्य प्रकृति के बाद मनुष्य अपने अन्तर्जगत् की ओर दृष्टिपात करता है। तब साहित्य में कवि का रूप परिवर्तित हो जाता है। संसार से दृष्टि हटाकर

---

[2] 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', पृ0-415, रामचन्द्र शुक्ल

कवि व्यक्ति पर ध्यान देता है। तब उसे आत्मा का रहस्य ज्ञात होता है। वह सान्त से अनन्त का दर्शन करता है और भौतिक पिण्ड में असीम ज्योति का आभास पाता है। भविष्य-कवि का लक्ष्य इधर ही होगा।''[3] अतः द्विवेदीयुग के उत्तरार्ध तक जब हिन्दी कविता स्थूल वाह्य जगत से सूक्ष्म अन्तर्जगत की ओर मुड़ती है तब अन्तर्जगत की जटिलतम और सूक्ष्मतम अनुभूतियों की अभिव्यक्ति संश्लिष्ट भाषिक विधान में सम्भव होती है। विकास के इस सोपान पर बिम्ब विधान खड़ीबोली काव्यभाषा के अनिवार्य तत्व के रूप में दिखाई देता है। काव्यभाषा का स्वरूप निरूपित करते हुए डा0 सियाराम तिवारी लिखते हैं, ''वस्तुतः भाषा में भाषातीत को प्रतिष्ठित करने के लिये साहित्य भाषा में प्रधानतः दो चीजें मिलाता है, चित्र और संगीत। अतः चित्र और संगीत ही साहित्य के प्रधान उपकरण हैं। चित्र भाव को आकार देता है और संगीत भाव को गति देता है।''[4] कहना न होगा द्विवेदीयुग में स्थूल वाह्य जगत के यथार्थपरक दृश्यात्मक चित्र तो मिलते हैं किन्तु सूक्ष्म भाव जगत को आकार देने वाले चित्र विरल ही हैं। छायावादी कवियों ने अपनी अनुभूति और संवेदना के संस्पर्श से चित्रों को बिम्बों के स्तर पर विकसित किया।

इस प्रकार लगभग दो दशक तक वाह्य दृश्य जगत को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाने वाली सरल, स्पष्ट और व्याकरणिक रूप से व्यवस्थित खड़ीबोली छायावाद तक आते आते सघन और सूक्ष्म अनुभूतियों की अभिव्यक्ति के लिये जिस बिम्बविधायिनी व्यञ्जनात्मक क्षमता को प्राप्त करती है, वह खड़ीबोली काव्यभाषा के विकास में नया आयाम जोड़ती है। संश्लिष्ट भाषिक विधान के रूप में खड़ीबोली अब बिम्ब रचना के जिस विकसित स्तर पहुँचती है, वहाँ अर्थ की

---

[3] 'हिन्दी कविता का भविष्य'-सम्पादकीय, सरस्वती-सन् 1920, भाग-21, सं0-3, खंड-2

[4] 'काव्यभाषा'-पृ0-190, डा0 सियाराम तिवारी।

अनेक छायाएँ और छवियाँ एक दूसरे में घुलमिल कर अर्थ को विकसनशील और गत्यात्मक बनाती हैं। काव्यभाषिक स्तर पर खड़ीबोली की इस नई अर्थक्षमता की सम्भावनाओं को हम पहली बार प्रसाद के पहले ही खड़ीबोली काव्यसंग्रह 'कानन कुसुम' में देखते है और जिसका चरम विकास उनकी अंतिम रचना 'कामायनी' में देखा जा सकता है। शीघ्र ही प्रसाद का 'प्रेमपथिक' भी खड़ीबोली में प्रकाशित हुआ लेकिन आठ वर्ष पहले ब्रजभाषा में प्रकाशित इस कथाकाव्य में भाषिक रूपान्तरण और उससे जुड़े संवेदनात्मक बदलाव को तो देखा जा सकता है लेकिन सघन अर्थ योजना के रूप में बिम्ब का यह विकसित स्तर खड़ीबोली काव्यभाषा के वैशिष्ट्य के रूप में यहीं से (काननकुसुम) उभरता है। काव्यभाषा के आधारगत परिवर्तन द्वारा संवेदनात्मक परिवर्तन का साक्ष्य 'प्रेमपथिक' प्रस्तुत करता है और अभिव्यक्ति के नूतन विधान का प्रथम संकेत 'प्रथम प्रभात' द्वारा मिलता है। यों 'प्रेम पथिक' और 'कानन कुसुम' दोनों ही रचनाएँ द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मकता से मुक्त नहीं हैं किन्तु आधुनिक खड़ीबोली काव्यभाषा के विकास में प्रसाद की ये दोनों ही रचनाएँ विशेष ऐतिहासिक महत्व की हैं।

बिम्ब रचना का वैभव जो अन्य छायावादी कवियों की तुलना में प्रसाद में सबसे अधिक दिखाई देता है, रचनात्मक स्तर पर विकास की कई स्थितियों से जुड़ा है। जहाँ अन्य छायावादी कवियों में विकास के ये लक्षण नहीं के बराबर है, वहाँ प्रसाद की रचनात्मक यात्रा आधुनिक काव्यभाषा के सभी विकासात्मक सोपानों से गुजरती है। प्रसाद का समस्त ब्रजभाषा काव्य 'चित्राधार' के दूसरे संस्करण में संकलित है जहाँ प्रसाद के ब्रजभाषा काव्य के अनेक रूप देखे जा सकते हैं। 'अयोध्या का उद्धार', 'वनमिलन' और 'प्रेमराज्य'—संकलन की इन आख्यानक

कविताओं में पहली अर्थात् 'अयोध्या का उद्धार' के अन्तर्गत जो मूलतः ब्रजभाषा में है, स्थान स्थान पर खड़ीबोली के क्रिया रूप देखे जा सकते हैं,

> मन मुदित मराली जे मनोहारिनी है
> मदकल निज पीके संग जे चारिनी है।[5]
> x x x x x x
> मुखचन्द अमन्द सोहई
> अति गम्भीर सुभाव पूर है।
> अधरानहि - बीच खेलई
> मृदु हाँसी सुखमा सुमूर है।।[6]
> x x x x x
> कर बीन लिये बजावती
> रजनी में नहिं कोउ संग है।
> वनिता वर-रूप-आगरी
> सहजै ही सुकुमार अंग है।।[7]

'वनमिलन' और 'प्रेमराज्य' की भाषा अपेक्षाकृत अधिक सामासिक, अधिक आलंकारित तथा शब्द प्रयोग और वाक्य विन्यास की दृष्टि से ब्रजभाषा की प्रकृति के अधिक निकट है। इसी प्रकार मकरंद बिन्दु के कवित्त सवैयों में जहाँ परम्परा का अनुपालन अधिक है, वहीं 'पराग' की कविताओं के अन्तर्गत कतिपय अपवादों को छोड़कर शुद्ध तत्सम शब्दावली के मध्य कुछ ब्रजभाषा प्रयोगों के साथ ब्रजभाषा और खड़ीबोली का मिश्रित रूप देखा जा सकता है। ब्रजभाषा और खड़ीबोली के इस मिश्रित रूप को 'खड़ीबोली का ब्रजभाषाकरण' कहा जाय अथवा ब्रजभाषा काव्य में खड़ीबोली के अंकुरण की स्थिति समझा जाय किन्तु यह रोचक तथ्य है कि इस भाषिक मिलावट में अनुपात खड़ीबोली का ही अधिक है जो खड़ीबोली के प्रति कवि के बढ़ते झुकाव का संकेत देता है।

---

[5] 'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड-1, पृ0-9, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

[6] 'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड-1, पृ0-10, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

[7] 'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड-1, पृ0-11, सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद।

इस प्रकार आधुनिक खड़ीबोली काव्यभाषा के विकास के परिप्रेक्ष्य में प्रसाद की काव्यभाषा का विश्लेषण करने पर स्पष्ट होता है कि प्रसाद भी अपनी काव्य यात्रा का आरम्भ ब्रजभाषा से करते हैं। ब्रजभाषा और खड़ीबोली का मिश्रित रूप उनके आरम्भिक ब्रजभाषा काव्य और खड़ीबोली काव्य दोनों पर ही दिखाई देता है। यहाँ पुनः उल्लेखनीय है कि प्रसाद के खड़ीबोली काव्य में ब्रजभाषा का प्रयोग अपेक्षाकृत कम है। उनके ब्रजभाषा काव्य में ही खड़ीबोली का प्रयोग अधिक मिलता है। 'अयोध्या का उद्धार', 'वनमिलन' और 'प्रेमराज्य' ब्रजभाषा में लिखने के बाद प्रसाद 'काननकुसुम', 'करुणालय', 'महाराणा का महत्व' और 'प्रेमपथिक' खड़ीबोली में लिखते हैं। इन आरम्भिक खड़ीबोली रचनाओं में बीच बीच में प्रकृति चित्रण के अन्तर्गत यद्यपि कवि कल्पना का वैभव दिखाई देता है और साथ ही प्रसाद की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति की झलक भी देखी जा सकती है लेकिन मूलतः खड़ीबोली की इन आरम्भिक रचनाओं में द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मक संस्कार ही प्रबल है। 'महाराणा का महत्व' में 'हरम', 'नवाब साहब', 'बेगम', 'राजकुँवर', 'सुराही', 'जरतारी', 'नब्वाब' और 'खानखाना' आदि शब्दों का प्रयोग जहाँ उसके एतिहासिक कथानक के अनुकूल है वहीं 'प्रेमपथिक' और 'करुणालय' में ऐसे शब्द कम हैं। यों 'प्रेमपथिक' में भी 'शहनाई' और 'नौबतखाने' जैसे एक दो उर्दू शब्दों का संदर्भानुकूल प्रयोग अपनी लाक्षणिकता और व्यञ्जकता में प्रासंगिक बन पड़ा है, 'किन्तु कौन सुनता उस शहनाई में हृत्तंत्री-झनकार/ जो नौबतखाने में बजती थी अपनी गहरी धुन में—'। उर्दू शब्दों का यह व्यवहार, कहीं कहीं तद्भव और देशी शब्दों का प्रयोग और कुछ गिने चुने ब्रजभाषा के संज्ञा शब्द और क्रिया रूप—प्रसाद के आरम्भिक खड़ीबोली काव्य में इन सबके होते हुए भी विश्लेषण के इस अन्तिम सोपान पर यह निष्कर्ष निकालना गलत नहीं होगा तत्समता प्रसाद की

काव्यभाषा की बुनियादी विशेषता है और तत्समता के प्रति प्रसाद का यह झुकाव उनके आरम्भिक खड़ीबोली काव्य में ही देखा जा सकता है जहाँ एक ओर तद्भव, देशी, ब्रज और उर्दू शब्दों के कुछ प्रयोग प्रसाद की काव्यभाषा को भारतेन्दुयुगीन काव्यभाषा का संस्पर्श देते है वहीं द्विवेदीयुगीन तत्समाग्रही प्रवृत्ति के अनुकूल इनके सम्मिलित अनुपात में तत्सम शब्दावली के अपेक्षाकृत अधिक प्रयोग के कारण खड़ीबोली अपनी प्रकृति के अनुसार ढ़लती दिखाई देती है। किन्तु निराला के भाषा वैविध्य के विपरीत तत्समता को प्रसाद की काव्यभाषा की आधारभूत विशेषता मानते हुए भी यह बिलकुल स्पष्ट है कि प्रसाद में यह तत्समाग्रही प्रवृत्ति शब्द कौशलाश्रित कभी नहीं रही। तत्सम शब्दावली का प्रयोग प्रसाद में 'रूपोद्यान प्रफुल्लप्राय-कलिका राकेंदुबिम्बानना' जैसा यांत्रिक और स्पन्दनहीन नहीं है। अत: यह कहना गलत नहीं होगा कि छायावादी कवियों में पंत यदि शब्द शिल्पी हैं तो शब्दों के जागरूक और प्राणवंत प्रयोग द्वारा उत्कृष्ट बिम्बों की सर्जना में प्रसाद अग्रगण्य हैं।

आधुनिक खड़ीबोली काव्यभाषा के इतिहास में प्रसाद के प्रसिद्ध काव्य संग्रह 'झरना' के प्रकाशन के साथ एक नये अध्याय का आरम्भ होता है। ब्रजभाषा प्रभावित खड़ीबोली आगे अपने विशुद्ध रूप में लम्बे इतिवृत्तात्मक दौर को पार करती हुई 'झरना' के गीतों के रूप में नई अर्थ क्षमता को प्राप्त करती है। 'झरना' के अनेक गीतों पर यद्यपि इतिवृत्तात्मक संस्कार अवशिष्ट है किंतु नये ढंग की अद्वैत अनुभूति और छायावादी रहस्याभास के संकेत 'झरना' के गीतों में सबसे पहले मिलते है। यह नये ढंग की अद्वैत अनुभूति स्वाभाविक था द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मक शैली में सम्भव नहीं थी, अत: सघन और संश्लिष्ट भाषिक विधान के रूप में बिम्ब रचना का जो प्रथम संकेत 'प्रथमप्रभात' में मिला था उसका विकास यहाँ

काव्यभाषा की बुनियादी विशेषता है और तत्समता के प्रति प्रसाद का यह झुकाव उनके आरम्भिक खड़ीबोली काव्य में ही देखा जा सकता है जहाँ एक ओर तद्भव, देशी, ब्रज और उर्दू शब्दों के कुछ प्रयोग प्रसाद की काव्यभाषा को भारतेन्दुयुगीन काव्यभाषा का संस्पर्श देते है वहीं द्विवेदीयुगीन तत्समाग्रही प्रवृत्ति के अनुकूल इनके सम्मिलित अनुपात में तत्सम शब्दावली के अपेक्षाकृत अधिक प्रयोग के कारण खड़ीबोली अपनी प्रकृति के अनुसार ढ़लती दिखाई देती है। किन्तु निराला के भाषा वैविध्य के विपरीत तत्समता को प्रसाद की काव्यभाषा की आधारभूत विशेषता मानते हुए भी यह बिलकुल स्पष्ट है कि प्रसाद में यह तत्समाग्रही प्रवृत्ति शब्द कौशलाश्रित कभी नहीं रही। तत्सम शब्दावली का प्रयोग प्रसाद में 'रूपोद्यान प्रफुल्लप्राय-कलिका राकेंदुबिम्बानना' जैसा यांत्रिक और स्पन्दनहीन नहीं है। अत: यह कहना गलत नहीं होगा कि छायावादी कवियों में पंत यदि शब्द शिल्पी हैं तो शब्दों के जागरूक और प्राणवंत प्रयोग द्वारा उत्कृष्ट बिम्बों की सर्जना में प्रसाद अग्रगण्य हैं।

आधुनिक खड़ीबोली काव्यभाषा के इतिहास में प्रसाद के प्रसिद्ध काव्य संग्रह 'झरना' के प्रकाशन के साथ एक नये अध्याय का आरम्भ होता है। ब्रजभाषा प्रभावित खड़ीबोली आगे अपने विशुद्ध रूप में लम्बे इतिवृत्तात्मक दौर को पार करती हुई 'झरना' के गीतों के रूप में नई अर्थ क्षमता को प्राप्त करती है। 'झरना' के अनेक गीतों पर यद्यपि इतिवृत्तात्मक संस्कार अवशिष्ट है किंतु नये ढंग की अद्वैत अनुभूति और छायावादी रहस्याभास के संकेत 'झरना' के गीतों में सबसे पहले मिलते हैं। यह नये ढंग की अद्वैत अनुभूति स्वाभाविक था द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मक शैली में सम्भव नहीं थी, अत: सघन और संश्लिष्ट भाषिक विधान के रूप में बिम्ब रचना का जो प्रथम संकेत 'प्रथमप्रभात' में मिला था उसका विकास यहाँ

'झरना' के कुछ गीतों में दिखाई देता है और प्रसाद यहाँ सर्वथा नई भंगिमा के साथ दिखाई देते है। आरम्भिक खड़ीबोली रचनाओं में कुछ नये अप्रस्तुतों और मौलिक प्रयोगों के होते हुए भी यदि प्रसाद अपने समय के साथ चलते हैं तो 'झरना' के गीतों द्वारा वह अपने समय से आगे नये युग का सूत्रपात करते है।

'आँसू' न केवल प्रसाद की बल्कि आधुनिक हिन्दी काव्य की प्रौढ़ काव्यकृति है। छायावाद की काव्यात्मक सघनता जो प्रसाद के काव्य में अब तक इतिवृत्तात्मक आवरण से पूर्णतः मुक्त नहीं हुई थी, 'आँसू' में आकर प्रबन्ध और मुक्तक दोनों ही रूपों में विस्तार पाती हुई सर्वथा एक नये काव्यरूप में सृजित होती है। विधान के इस नये रूप में जहाँ एक ओर स्पष्ट कथानक के न होते हुए भी भावनाओं के तीव्र आवेग से निःसृत भावचित्रों की श्रृंखला प्रबन्ध रूप में विकसित होती है, वहीं दूसरी ओर इस 'भावना संकलन' में संकलित प्रत्येक मुक्तक स्वतंत्र अर्थ बोध की क्षमता भी रखता है। फारसी और उर्दू काव्य परम्परा से प्रभावित किंतु सर्वथा मौलिक खड़ीबोली में यह नूतन काव्य प्रयोग था।(कुछ ऐसा ही काव्य प्रयोग उत्तर छायावाद में मधुशाला के रूप में दिखाई दिया) प्रणय काव्य के रूप में 'आँसू' से पूर्व यद्यपि 'ग्रंथि' का प्रकाशन हो चुका था किंतु ग्रंथि की उपमा बहुल सानुप्रासिक भाषा से अलग भावनाओं के स्वच्छन्द और सहज आवेग ने 'आँसू' की अभिव्यक्ति को नई आन्तरिकता और आत्मीयता दी। इस प्रकार द्विवेदीयुगीन आदर्शवादिता से अलग 'आँसू' अपनी स्वच्छन्द और सहज भावनाओं के कारण न केवल छायावाद बल्कि आधुनिक काव्य जगत के सर्वाधिक लोकप्रिय प्रबन्धगीत के रूप में प्रतिष्ठित हुआ।

प्रसाद अपने निबन्ध 'काव्य और कला' में संगीत को काव्य का वाहन मानते है और लिखते है, ''कलाओं में संगीत को लोग उत्तम मानते हैं क्योंकि

इसमें आनन्दांश वा तल्लीनता की मात्रा अधिक है, किंतु है यह ध्वन्यात्मक। अनुभूति का ही वाङ्मय अस्फुट रूप है। इसलिये इसका उपयोग काव्य के वाहन रूप में किया जाता है, जो काव्य की दृष्टि से उपयोगी और आकर्षक है।''[8] संगीत का उपयोग काव्य के वाहन रूप में ही सही किंतु काव्य की दृष्टि से उसे उपयोगी और आकर्षक मानने वाले प्रसाद के गीतों को संगीत तत्त्व ने अपूर्व माधुर्य प्रदान किया। लेकिन उल्लेखनीय है कि संगीत तत्त्व के साथ काव्यत्व का अद्‌भुत संतुलन प्रसाद काव्य का वैशिष्ट्‌य है। जो काव्यात्मक सघनता छायावाद के गीतों में गीत की सहज लय में सुरक्षित रही है, उसकी शुरुआत प्रसाद से ही होती है। 'झरना' और 'लहर' की गीत रचनाएँ आधुनिक खड़ीबोली काव्य की उन आरम्भिक उत्कृष्ट गीत रचनाओं में है जिनके गीतों ने खड़ीबोली को गीत की मधुरता और मृदुता दी, साथ ही सघन अर्थ विधान जहाँ अनिवार्य रूप से दिखाई देता है। ऐतिहासिक कथानक को लेकर चलने वाली 'लहर' की अनेक आख्यानक गीतियाँ और प्रसाद के नाटकों के गीत प्रेम, वियोग और श्रृंगार भावना से अलग अपनी विविधता में छायावादी गीत रचना को समृद्ध करते हैं, अतः यहाँ यह जोड़ना होगा कि इस अर्थ सघन गीत विधान की प्रसाद शुरुआत ही नहीं करते बल्कि उनके गीतों में यह पूरे विस्तार और वैविध्य के साथ दिखाई देता है। स्पष्ट ही गीत रचना का यह वैशिष्ट्‌य उत्तर छायावाद और उसके बाद के परिदृश्य पर क्रमशः विरल होता चलता है। प्रसाद के गीत और कदाचित् निराला के गीत अपने इस अर्थ सघन रूप में आधुनिक खड़ीबोली काव्य को गीत रचना की अद्‌भुत काव्यात्मक गरिमा देते हैं।

गीत रचना से अलग ऐतिहासिक खण्डों और पौराणिक कथा अंशों को लेकर कथा काव्य अथवा आख्यान रचना के प्रति प्रसाद का झुकाव आरम्भ से ही

---

[8] 'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड-4, 'काव्य और कला', पृ0-473

दिखाई देता है। ब्रजभाषा में 'अयोध्या का उद्धार', 'वनमिलन', 'प्रेमराज्य', और 'प्रेमपथिक' लिखने के बाद प्रसाद पुनः खड़ीबोली में 'करुणालय', 'महाराणा का महत्व' और 'प्रेमपथिक' की रचना करते है जहाँ उनकी प्रबन्ध क्षमता के संकेत मिलने लगते है। 'झरना' को छोड़कर 'कानन कुसुम' और 'लहर' (जो क्रमशः कवि की फुटकर रचनाओं और गीतों के संग्रह है) के अन्तर्गत संकलित आख्यानक रचनाएँ और आख्यानक गीतियाँ, साथ ही 'प्रलय की छाया' जैसी लम्बी कविता कवि की प्रबन्धोन्मुख काव्य प्रवृत्ति का प्रमाण है। किंतु प्रसाद की ये आख्यानक रचनाएँ तद्युगीन घटना प्रधान आख्यानक रचनाओं से अलग भाव प्रधान ही अधिक है। 'आँसू' में प्रबन्ध का सूक्ष्म रूप विकसित हुआ जिसका प्रौढ़ और परिपक्व रूप 'कामायनी' में दिखाई दिया। यों 'कामायनी' के विधान को लेकर बहुत से संदर्भ 'कामायनी' की आलोचना, प्रत्यालोचना और गहरे विवाद का विषय हो सकते हैं किंतु काव्ययात्रा के इस अन्तिम सोपान पर कवि की अर्थ सघन भाषा प्रबन्ध के विराट व्यापक फलक पर जिस रूप में सृजित हुई है, आधुनिक युग के तमाम तनावों को अपनी जटिलता और संश्लिष्टता में जितने सूक्ष्म और अनुभूत्यात्मक स्तर पर वह रूपायित कर सकी है और बिम्बों के माध्यम से अर्थ को जितने स्तरों पर उसने विकासशील और गत्यात्मक बनाया है, साथ ही इतिहास-धर्म-दर्शन-पुराण सभी अनुभूति के धरातल पर यहाँ जिस रूप में घुलमिल गये है, वहाँ 'कामायनी' की रचनात्मक श्रेष्ठता के सम्बन्ध में नरेश मेहता के शब्दों में यह कहना होगा कि, ''किसी भी रचना का महत्व उसके स्वरूप में नहीं होता बल्कि उसके रचनात्मक स्वत्व में होता है। 'कामायनी' काव्य है लेकिन अगर किसी आलोचनात्मक समझ से वह महाकाव्य या प्रबन्ध काव्य नहीं सिद्ध होती तो यह कोई चिन्ता की बात नहीं है। कई ऐसी रचनाएँ है जो स्वरूप से महाकाव्य या प्रबन्ध काव्य रही है लेकिन

काव्य नहीं बन पाई जबकि इसके विपरीत 'कामायनी' आकंठ काव्य है और शायद प्रसाद जी काव्य के इस स्वरूप के प्रति सचेत थे, ... 'कामायनी' की इस रचनाधार्मिता ने ही उसे अनेक पारम्परिक अवधारणाओं से पृथक किया है।''[9] 'कामायनी' आकंठ काव्य है, यही उसकी श्रेष्ठता का प्रमाण है।

और अंत में, 'आत्मानुभूति' की प्रधानता को स्वीकार करते हुए हिन्दी काव्य जगत के दो शीर्षस्थ कवियों—सूर और तुलसी के सम्बन्ध में जब प्रसाद लिखते हैं, ''दोनों कवियों के शब्द-विन्यास कौशल पर विचार करने से यह स्पष्ट प्रतीत होगा कि जहाँ आत्मानुभूति की प्रधानता है—वहीं अभिव्यक्ति अपने क्षेत्र में पूर्ण हो सकी है।''[10] तब स्वयं कवि के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण है कि अभिव्यक्ति की अपेक्षा अनुभूति की प्रधानता ने ही कवि की काव्यभाषा को वह पूर्णता और परिपक्वता दी है कि वह जटिलतम और सूक्ष्मतम अनुभूतियों को विभिन्न स्तरों पर अर्थ दे सका है। जबकि अपने सहयोगी कवियों पंत, महादेवी और निराला की तुलना में भाषागत सजगता प्रसाद में ही सबसे कम है, कहना न होगा, आधुनिक काव्यभाषा का संक्षिप्त चित्र प्रस्तुत करने वाली प्रसाद की काव्यभाषा द्विवेदीयुगीन गद्यात्मकता को पचाते हुए अपनी विकसित और प्रौढ़ अवस्था में भी व्याकरणगत त्रुटियों के बावजूद अर्थ की गहनतम और सूक्ष्मतम पर्तो को खोलने तथा संवेदना के सूक्ष्म तन्तुओं को पकड़ने में यदि सफल हो सकी है तो उसका कारण अनुभूति की प्रधानता ही है। अनुभूति के स्वच्छन्द आवेग ने 'आँसू' की अभिव्यक्ति को जो मार्मिकता दी, पुनः संवेदनागत प्रौढ़ता ने 'लहर' के रूप में खड़ीबोली में गीत रचना को जो विश्वास दिया, 'कामायनी' में वह प्रबन्ध रूप में अपने चरमोत्कर्ष पर प्रतिफलित हुआ और छायावाद के इस पुरोधा ने युग की ही नहीं, आधुनिक खड़ीबोली काव्य की समस्त सम्भावनाओं का दोहन कर लिया।।

---

[9] 'कामायनी की आलोचना प्रक्रिया'-पुरोवाक्-गिरिजा राय

[10] 'प्रसाद ग्रंथावली'-खण्ड-4, 'काव्य और कला', पृ0-476

: परिशिष्ट :

(क) संदर्भ ग्रंथ :

1. हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास : रामस्वरूप चतुर्वेदी
2. प्रेमसागर : लल्लूजीलाल
3. नासिकेतोपाख्यान : सदल मिश्र
4. हिंदी साहित्य का इतिहास : रामचन्द्र शुक्ल
5. ए कलेक्शन ऑफ़ हीम्स ऑफ़ डेली वरशिप : जॉन पारसन और जॉन क्रिश्चियन
6. सत्यधर्म मुक्तावली : श्रद्धाराम
7. हिंदी का गद्य साहित्य : रामचन्द्र तिवारी
8. इतिहास तिमिर नाशक पार्ट–3 : शिवप्रसाद
9. शकुन्तला : राजा लक्ष्मण सिंह
10. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र : रामविलास शर्मा
11. आधुनिक हिंदी का आदिकाल : श्री नारायण चतुर्वेदी
12. हिन्दी भाषा : भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
13. खड़ीबोली का पद्य : अयोध्याप्रसाद खत्री
14. एकांतवासी योगी : पं0 श्रीधर पाठक
15. पथिक : रामनरेश त्रिपाठी
16. मिलन : रामनरेश त्रिपाठी

17. प्रिय प्रवास : पं0 अयोध्या सिंह उपाध्याय

18. मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रंथ : वरुआ, ऋषिकौशिक जैमिनी

19. भारत भारती : मैथिलीशरण गुप्त

20. गुप्तजी की कला : डा0 सत्येन्द्र

21. रामचरित चिन्तामणि : प0 रामचरित उपाध्याय

22. सूक्ति मुक्तावली : पं0 रामचरित उपाध्याय

23. पल्लव : सुमित्रानन्दन पंत

24. प्रसाद ग्रंथावली-खण्ड-4 : सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद

25. श्रीधर पाठक ग्रंथावली : सम्पादक-डा0 पद्मधर पाठक

26. स्वप्न : रामनरेश त्रिपाठी

27. प्रसाद ग्रंथावली-खण्ड-1 : सम्पादक-रत्नशंकर प्रसाद

28. छायावाद की प्रासंगिकता : रमेशचन्द्र शाह

29. गीतिका : निराला

30. अनामिका : सूर्यकांत त्रिपाठी निराला

31. आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास : बच्चन सिंह

32. यामा : महादेवी वर्मा

33. प्रसाद निराला अज्ञेय : रामस्वरूप चतुर्वेदी

34. प्रसाद का काव्य : प्रेमशंकर

35. प्रसाद की रचनाओं में संस्करणगत परिवर्तनों का अध्ययन : डा0अनूप कुमार

36. जयशंकर प्रसाद : रमेशचन्द्र शाह

37. प्रसाद का विकासात्मक अध्ययन : किशोरीलाल गुप्त

38. घनानंद ग्रंथावली : सम्पादक विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

39. कविता कौमुदी : रामनरेश त्रिपाठी

40. जयशंकर प्रसाद : श्री नंददुलारे वाजपेयी

41. कामायनी की आलोचना प्रक्रिया : गिरिजा राय

42. कामायनी मूल्याङ्कन और मूल्याङ्कन : सम्पादन-इन्द्रनाथ मदान

43. कामायनी : एक पुनर्विचार : गजानन माधव मुक्तिबोध

44. पंत, प्रसाद और मैथिलीशरण गुप्त : रामधारी सिंह दिनकर

45. गद्य पथ : सुमित्रानन्दन पंत

46. कामायनी का पुनर्मूल्याङ्कन : रामस्वरूप चतुर्वेदी

47. काव्यभाषा : डा0 सियाराम तिवारी

(ख) मूल ग्रंथ :

1. जगत सचाई सार : पं0 श्रीधर पाठक

2. अधखिला फूल : पं0 अयोध्यासिंह उपाध्याय

3. चोखे चौपदे : पं0 अयोध्यासिंह उपाध्याय

4. चुभते चौपदे : पं0 अयोध्यासिंह उपाध्याय

5. पद्य पुष्पाञ्जलि : पं0 लोचन प्रसाद पाण्डेय

6. पद्य प्रबन्ध : मैथिलीशरण गुप्त

7. पलासी का युद्ध : मैथिलीशरण गुप्त

8. जयद्रथ वध : मैथिलीशरण गुप्त

9. किसान : मैथिलीशरण गुप्त

10. विरहिणी ब्रजांगना : मैथिलीशरण गुप्त

11. वीरागंना : मैथिलीशरण गुप्त

12. वैतालिक : मैथिलीशरण गुप्त

13. शकुन्तला : मैथिलीशरण गुप्त

14. साकेत : मैथिलीशरण गुप्त

15. कानन कुसुम : जयशंकर प्रसाद

16. करुणालय : जयशंकर प्रसाद

17. महाराणा का महत्व : जयशंकर प्रसाद

18. प्रेम पथिक : जयशंकर प्रसाद

19. चित्राधार : जयशंकर प्रसाद

20. झरना : जयशंकर प्रसाद

21. लहर : जयशंकर प्रसाद

22. काव्य कला तथा अन्य निबन्ध : जयशंकर प्रसाद

23. वीणा : सुमित्रानन्दन पंत

24. ग्रंथि : सुमित्रानन्दन पंत

25. गुञ्जन : सुमित्रानन्दन पंत

26. ग्राम्या : सुमित्रानन्दन पंत

27. परिमल : निराला

28. तुलसीदास : निराला

29. अपरा : निराला

30. नीहार : महादेवी वर्मा

31. रश्मि : महादेवी वर्मा

32. नीरजा : महादेवी वर्मा

33. सान्ध्यगीत : महादेवी वर्मा

34. दीपशिखा : महादेवी वर्मा

(ग) अन्य सहायक ग्रंथ :

1. खड़ीबोली का आन्दोलन : डा0 शितिकंठ मिश्र

2. खड़ीबोली का आन्दोलन : अयोध्याप्रसाद खत्री

3. खड़ीबोली हिन्दी साहित्य का इतिहास : ब्रजरत्न दास

4. ब्रजभाषा बनाम खड़बोली : डा0 कपिलदेव सिंह

5. हिन्दी साहित्य की भूमिका : पं0 हजारी प्रसाद द्विवेदी

6. हिन्दी साहित्य का इतिहास : सम्पादक-डा0 नगेन्द्र

7. खड़ीबोली की कविता का संक्षिप्त परिचय : पं0 रामनरेश त्रिपाठी

8. खड़ीबोली काव्य में अभिव्यञ्जना : डा0 आशा गुप्ता

9. भारतेन्दु युग और हिन्दी भाषा की विकास परम्परा : रामविलास शर्मा

10. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और हिंदी : रामविलास शर्मा

11. भारतेन्दु-मंडल : ब्रजरत्न दास

12. भारतेन्दु युग : रामविलास शर्मा

13. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र : डा0 रामरतन भटनागर

14. कचहरी की भाषा और लिपि : चन्दबली पाण्डेय

15. महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग : उदयभानु सिंह

16. महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण : रामविलास शर्मा

17. आधुनिक काव्यधारा : डा0 केसरीनारायण शुक्ल

18. हिन्दी कविता में युगान्तर : डा0 सुधीन्द्र

19. श्रीधर पाठक तथा पूर्व स्वच्छन्दतावादी काव्य : डा0 रामचन्द्र मिश्र

20. महाकवि हरिऔध का प्रियप्रवास : डा0 धमेन्द्र ब्रह्मचारी

21. पूर्ण संग्रह: रायदेवी प्रसाद 'पूर्ण' : संग्रहकर्त्ता—लक्ष्मीकांत त्रिपाठी

22. महाकवि हरिऔध : पं0 गिरिजादत्त शुक्ल गिरीश

23. मैथिलीशरण गुप्त: एक अध्ययन : डा0 रामरतन भटनागर

24. साकेत: एक अध्ययन : डा0 नगेन्द्र

25. इतिहास और आलोचना : नामवर सिंह

26. छायावादी काव्यभाषा का विवेचनात्मक अनुशीलन : डा0 खगेन्द्र प्रसाद ठाकुर

9. भारतेन्दु युग और हिन्दी भाषा की विकास परम्परा : रामविलास शर्मा

10. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और हिंदी : रामविलास शर्मा

11. भारतेन्दु-मंडल : ब्रजरत्न दास

12. भारतेन्दु युग : रामविलास शर्मा

13. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र : डा0 रामरतन भटनागर

14. कचहरी की भाषा और लिपि : चन्दबली पाण्डेय

15. महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग : उदयभानु सिंह

16. महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण : रामविलास शर्मा

17. आधुनिक काव्यधारा : डा0 केसरीनारायण शुक्ल

18. हिन्दी कविता में युगान्तर : डा0 सुधीन्द्र

19. श्रीधर पाठक तथा पूर्व स्वच्छन्दतावादी काव्य : डा0 रामचन्द्र मिश्र

20. महाकवि हरिऔध का प्रियप्रवास : डा0 धमेन्द्र ब्रह्मचारी

21. पूर्ण संग्रह: रायदेवी प्रसाद 'पूर्ण' : संग्रहकर्त्ता—लक्ष्मीकांत त्रिपाठी

22. महाकवि हरिऔध : पं0 गिरिजादत्त शुक्ल गिरीश

23. मैथिलीशरण गुप्त: एक अध्ययन : डा0 रामरतन भटनागर

24. साकेत: एक अध्ययन : डा0 नगेन्द्र

25. इतिहास और आलोचना : नामवर सिंह

26. छायावादी काव्यभाषा का विवेचनात्मक अनुशीलन : डा0 खगेन्द्र प्रसाद ठाकुर

27. छायावाद युग : शम्भूनाथ सिंह

28. छायावाद की भाषा : डा० रमेशचन्द्र गुप्त

29. छायावादी काव्यभाषा का व्यावहारिक सौन्दर्य शास्त्र : सूर्यप्रसाद दीक्षित

30. छायावाद : डा० नामवर सिंह

31. छायावाद : डा० रामरतन भटनागर

32. कल्पना और छायावाद : केदारनाथ सिंह

33. छायावाद का सौन्दर्यशास्त्र : कुमार विकल

34. छायावाद पुनर्मूल्याङ्कन : सुमित्रानन्दन पंत

35. छायावाद की परिक्रमा : डा० श्यामकिशोर मिश्र

36. प्रसाद की कला : गुलाबराय

37. जयशंकर प्रसाद : वस्तु और कला : डा० रामेश्वर खण्डेलवाल

38. प्रसाद का साहित्य : डा० प्रभाकर श्रोत्रिय

39. कवि 'प्रसाद' : आँसू तथा अन्य कृतियाँ : आचार्य विनय मोहन शर्मा

40. कवि प्रसाद की काव्य साधना : श्री रमानाथ सुमन

41. प्रसाद काव्य विवेचन : डा० हरदेव बाहरी

42. प्रसाद की कविताएँ : श्री सुधाकर पाण्डेय

43. कामायनी-सौन्दर्य : डा० फतहसिंह

44. प्रसाद साहित्य कोश : डा० हरदेव बाहरी

45. कामायनी चिन्तन : विमल कुमार जैन

46. कामायनी: मिथक और स्वप्न : रमेश कुन्तल मेघ

47. कामायनी की टीका : विश्वम्भर 'मानव'

48. प्रसाद और उनकी कविता : विश्वम्भर 'मानव'

49. आधुनिक महाकाव्य : विश्वम्भर 'मानव'

50. कामायनी : एक परिचय : गंगा प्रसाद पाण्डेय

51. जयशंकर प्रसाद : जीवन और साहित्य : मत्स्येन्द्र शुक्ल

52. कामायनी के अध्ययन की समस्याएँ : डा0 नगेन्द्र

53. कामायनी : कला और दर्शन : डा0 राममूर्ति त्रिपाठी

54. काव्य बिम्ब : डा0 नगेन्द्र

55. प्रसाद काव्य में बिम्ब योजना : डा0 रामकृष्ण अग्रवाल

56. आधुनिक-हिन्दी-काव्य-भाषा : डा0 रामकुमार सिंह

57. पंत और पल्लव : निराला

58. सुमित्रानन्दन पंत : डा0 नगेन्द्र

59. पंत की काव्यभाषा : डा0 कान्ता पंत

60. निराला : आत्महंता आस्था : दूधनाथ सिंह

61. निराला की कविताएँ और काव्यभाषा : रेखा खरे

62. निराला : डा0 रामविलास शर्मा

63. राग विराग : निराला : सम्पादक-रामविलास शर्मा

64. महाप्राण निराला : गंगा प्रसाद पाण्डेय

65. क्रान्तिकारी कवि निराला : बच्चन सिंह

66. भाषा और संवेदना : रामस्वरूप चतुर्वेदी

67. महादेवी की रहस्य साधना : विश्वम्भर 'मानव'

68. महादेवी : कुमारी विकल

(घ) पत्र पत्रिकाएँ :

1. आलोचना
2. सरस्वती
3. द्विवेदी पत्रावली
4. श्री शारदा
5. मर्यादा
6. इंदु
7. संचारिणी
8. प्रतिभा
9. प्रभा
10. नागरी प्रचारिणी पत्रिका
11. सम्मेलन पत्रिका